वर्ष 39, अंक-2, मार्च-अप्रैल, 2016

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698	वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
महानिदेशक	:	23378103 23370471	भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23370633
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1 अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370391
प्रशासन अनुभाग	:	23370834	अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849	हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

गगनांचल

मार्च-अप्रैल, 2016

प्रकाशक

सी. राजशेखर
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

संपादक

नम्रता कुमार
उप-महानिदेशक

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002
ई-मेल : ddgnk.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि. नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से
बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की
गतिविधियों की एक झलक 4

लेख

खजुराहो के मूर्तिशिल्प में नारी 10
ऋषि जैन

भारतीय जनजाति की संस्कृति और साहित्य 14
डॉ. रामचन्द्र राय

सूरदास का भाषा-सौष्ठव 16
प्रोफेसर लालचन्द गुप्त 'मंगल'

समाजवादी-मानवतावादी कवि प्रदीप की सार्थकता 21
डॉ. ज्ञान प्रकाश

महादेवी वर्मा का परिचयात्मक साहित्यिक विमर्श 24
सीताराम पाण्डेय

मानवता के प्रेरणास्रोत : महामानव संत कबीर 30
डॉ. सुरेश उजाला

हिन्दी यात्रा वृत्तांत में मोहन राकेश 33
डॉ. पराक्रम सिंह

डॉ. भीमराव आम्बेडकर का मानववाद 36
राजेश हजेला

'हिन्दी भारती' के संवाहक : डॉ. बालशौरि रेड्डी 38
डॉ. किशोरीशरण शर्मा

हिन्दी बोलियों के शब्दकोशों की प्रासंगिकता 41
दानबहादुर सिंह

उपेक्षित प्रश्न—जनजातीय भाषा सर्वेक्षण, संरक्षण 46
प्रोफेसर हेमराज मीणा 'दिवाकर'

'छप्पर' उपन्यास में अभिव्यक्त दलित जीवन 48
कुमारी षिल्जा सी.

भूमण्डलीकरण के युग में हिन्दी 51
वीरेन्द्र कुमार यादव

मंचीय कवि बच्चन और उनकी मधुशाला 53
डॉ. सोनवाणे राजेन्द्र 'अक्षत'

दोहरा आतंक 56
ज्योति ठाकुर

समय के आईने में समांतर सिनेमा 57
डॉ. पूजा खिल्लन

साक्षात्कार

तकियाफोड़ आलोचक मत बनो (वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी से युवा आलोचक वेंकटेश कुमार की बातचीत) 60

यात्रा-वृतांत

नमामि देवि नर्मदे... 65
डॉ. राजेश कुमार व्यास

कहानी

द हीरो 68
इंदिरा दाँगी

बहुरूपिये 75
भगवती प्रसाद द्विवेदी

देगा साब 77
सुशील सरित

लघु कथाएँ

अकेला/प्यार का नशा 80
किशन लाल शर्मा

कविता/गीत/गज़ल/दोहे/नवगीत

गज़लें 81
रमन लाल अग्रवाल 'रम्मन'

कविता : होने न होने की जद्दोजहद 81
निर्भय कुमार

कविताएँ 82
शिव डोयले

गज़लें/कविताएँ 83
राकेश भ्रमर

कविताएँ 84
राजेन्द्र निशेश

गज़लें 85
ज़हीर कुरेशी

किताबें कभी दबकर नहीं मरती 85
वसंत सकरगाए

गज़लें 86
प्रो. रामदरश मिश्र

गज़ल 86
डॉ. कैलाश निगम

कविताएँ 87
ग्यारसीलाल सेन

गीत/गज़ल 88
डॉ. अशोक 'गुलशन'

पुस्तक-समीक्षा

नसीरूद्दीन शाह और सिनेमा 89
अविनाश कुमार

रुख : उनके विचारों का 91
डॉ. संतोष कुमार राय

ममता कालिया : शहर और सपने 93
प्रेमपाल शर्मा

संपादक की ओर से

साहित्य संवेदना का घर है तो संस्कृति उसका आँगन। हमारी 'गगनांचल' पत्रिका वर्षों से साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाती आ रही है। हमारा प्रयास मुख्य रूप से उन हिन्दी एवं हिन्दीतर क्षेत्रों तक पहुँचना है जहाँ अभी भी हमारे पारम्परिक संस्कार पल्लवित और पुष्पित हैं। भारतीय संस्कृति का पाचन तंत्र काफी मजबूत रहा है यही वजह है इस संस्कृति ने अनेकानेक संस्कृतियों को अपने अंदर समाहित किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हमारी संस्कृति को 'महामानव का समुद्र' बताया तो आचार्य नरेन्द्र देव ने 'चित्त की खेती' कहा। कुल मिलाकर संस्कृति, परम्परा एकवचन न होकर बहुवचनात्मक रूप में संस्कृतियाँ और परम्पराएँ कहलाती हैं।

भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं परम्पराओं से परिचय कराती 'गगनांचल' पत्रिका के इस अंक में कबीर, भारत रत्न डॉ. भीमराव आम्बेडकर, कवि प्रदीप, कवि हरिवंश राय बच्चन, नई कहानी आंदोलन के प्रणेता मोहन राकेश, आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी से बातचीत (साक्षात्कार), समांतर सिनेमा पर केन्द्रित लेख आदि को प्रमुखता दी गई है। उम्मीद है कि पाठकों को यह अंक पसंद आएगा। पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हमें शक्ति प्रदान करेंगी।

नम्रता

(नम्रता कुमार)
उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक

'भारत एवं अरब वर्ल्ड' विषय पर सेमिनार, फरवरी 15-20, 1965

मार्च, 1980 में राजस्थानी लोक वाद्य एवं नृत्य दल के सदस्य शुमारखान (सारंगी के साथ) एवं अलादीन लांगा द्वारा यू.एस.एस.आर., रोमानिया, बुल्गारिया और मंगोलिया का दौरा।

अप्रैल 1980 में भांगड़ा नृत्य, योगसुन्दर दल द्वारा ईराक, बहरीन, जॉर्डन, केन्या तथा तंजानिया का दौरा।

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्, आजाद भवन परिसर में 'भूटान नेशनल असेम्बली मेम्बर्स' का प्रतिनिधि मण्डल आई.सी.सी.आर. के सचिव से स्मारक चिह्न ग्रहण करते हुए। दिसम्बर, 1980

'भूटान नेशनल असेम्बली मेम्बर्स' के प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य महात्मा गाँधी की समाधि पर पुष्पांजलि अर्पित करते हुए। दिसम्बर, 1980

वर्ष 1979 के लिए 'मौलाना आजाद मैमोरियल लैक्चर' देते हुए डॉ. ए.एम. खुसरो।

'विस्टास-एशिया पैसिफिक प्रदर्शनी' के अवसर पर कॉमनवेल्थ देशों के महासचिव श्री रामफल उद्घाटन ज्योति प्रज्ज्वलित करते हुए।

खजुराहो के मूर्तिशिल्प में नारी

ऋषि जैन

कला, साहित्य, रंगमंच, लेखन में रुचि। कला शिक्षक के रूप में कार्यरत। राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय से शोध कार्य में संलग्न। विभिन्न कार्यशालाओं में सहभागिता एवं अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित 10-11वीं शताब्दी में निर्मित खजुराहो के विश्व प्रसिद्ध मंदिर नागर शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा को स्वयं में समेटे ये मंदिर भौतिक जगत से पराभौतिक जगत की ओर यात्रा कराते प्रतीत होते हैं। ये मंदिर अप्रतिम देहयष्टि के सौंदर्य एवं कला का अद्भुत उदाहरण है। खजुराहो के मंदिरों की स्थापना की नीव में छिपी एक नारी हेमवती एवं चन्द्र की प्रेमकथा भौतिक रूप में प्रत्येक मंदिर में दृष्टिगोचर होती है। जिसका वर्णन ''मध्यकाल के दरबारी कवि चन्द्रबरदायी ने पृथ्वीराजरासो के महोवाखण्ड में चन्देल की उत्पत्ति के संबंध में किया है।''[1] खजुराहो के मूर्तिशिल्प में नारी के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। ''आकुलता के आवेग में एक दूसरे में समाने को आतुर प्रसन्न बदन नारी प्रतिमाएँ देवी-देवताओं की भी हो सकती हैं, यक्ष-यक्षणियों अथवा प्रणय निवेदक सामान्य नायक-नायिकाओं की भी, देह के इस अनंत उल्लास में कालिदास से लेकर जयदेव-विद्यापति से होते हुए रीति सिद्ध कवि बिहारी तक सौंदर्य चेतना और शृंगार बोध देख सकते हैं।''[2] यहाँ के शिल्प नारी सौंदर्य की अद्भुत गाथा कहते हैं। नारी कहीं देवी रूप में है तो कभी अप्सरा रूप में, यक्षिणी, नागकन्या, नर्तकी, दासी, पत्नी, नायिका, योगिनी, भोग्या आदि विविध रूप एक स्थान पर मिलना अन्यत्र दुर्लभ है।

''खजुराहो के मंदिर शिल्पियों एवं मूर्तिकारों की आंखों में बसा सौंदर्य मंदिर के भूरे, बादामी बदन पर उत्कीर्ण मूर्तियों की शत्-शत् भंगिमाओं में अपरूप बनकर सदियों से अपनी छटा बिखेर रहे हैं, लोच, लास्य, लालित्य साकार है इन प्रतिमाओं में।''[3] यहां प्रचुर मात्रा में मिथुन मूर्तियों का भी अंकन है, ''विद्वानों का मत है जिस युग में ये मंदिर बने उस युग में एक समुदाय विशेष (तंत्र की विशेष वाम मार्गी शाखा) के क्रिया कलापों का चित्रण है, जो कि योग की तरह भोग को भी मोक्ष का एक मार्ग मानते हुए भोग की इस क्रिया को धार्मिक अनुष्ठान या पूजा की तरह सम्पन्न किया करते थे।''[4] 6वीं शताब्दी में बना चौसठ जोगिनी मंदिर खजुराहो का सबसे प्राचीन मंदिर है। इनमें चौसठ योगिनियों तथा अन्य देवियों की प्रतिमाएं स्थित थी, जिनकी पूजा तांत्रिकों द्वारा की जाती थी। पूर्णिमा की रात तांत्रिकों द्वारा होने वाले समारोह में सामुहिक संभोग के दृश्यों का अंकन लक्ष्मण मंदिर की जगती पर देखा जा सकता है। आराध्या के रूप में नारी (योगिनी) की उपासना व संभोग के दृश्यों में नारी का भोग... नारी के अस्तित्व के प्रति दो विरोधाभासी स्थितियों को दर्शाते हैं। बावजूद इसके खजुराहो के मैथुन शिल्प भी अद्भुत लय व सौंदर्य लिये हुए हैं। भाव भंगिमाओं एवं कलात्मक सौंदर्य ने पाषाण खण्ड को भी सौम्य बना दिया है शायद यही कारण है कि ''यहाँ देखने वालों को प्रेमियों की उत्कण्ठा

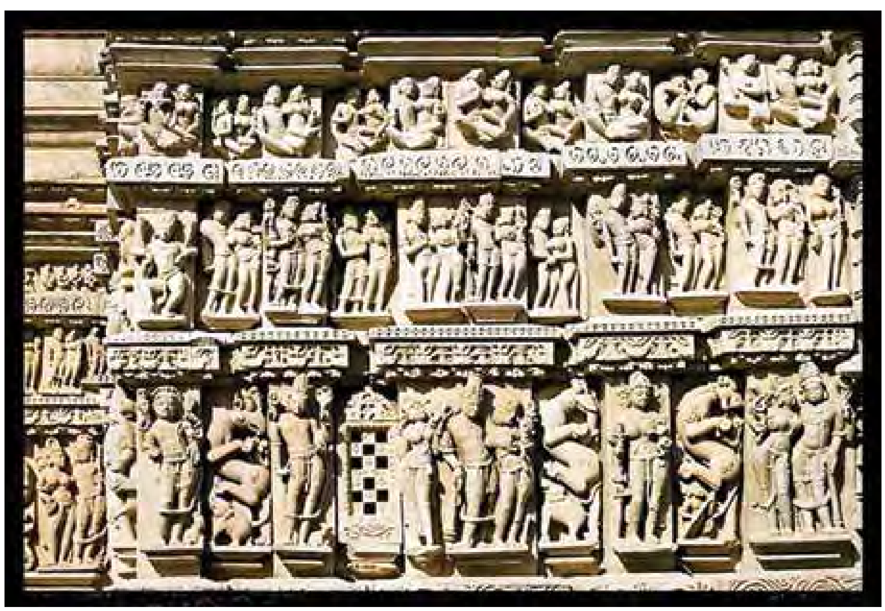

बुरी नहीं लगती है।''[5] नारी के मुख मण्डल पर वासना से अधिक प्रेम की आतुरता का भाव प्रदर्शित होता है। ''चौसठ जोगिनी मंदिर से मात्र तीन योगिनी मूर्तियां प्राप्त हो सकी हैं। जिसमें महिषासुर मर्दिनी, ब्राह्मणी और माहेश्वरी प्रमुख हैं। ये मूर्तियां भारी भरकम, बौनी और स्थूलकाय हैं।''[6]

खजुराहो के वराह मंदिर में भगवान विष्णु के वराहवतार को दिखाया गया है। वराहवतार प्रतिमा में नारी का अनगिनित देवियों के रूप मे प्रतिमांकन है, तथा वराह रूप में मुख के शीर्ष भाग पर पृथ्वी को एक स्त्री के रूप में दिखाया गया है। यहां पुनः नारी को दो रूपों देवी एवं पृथ्वी के प्रतीकात्मक रूप में अंकित है। लक्ष्मण मंदिर भी एक विष्णु मंदिर है जिसके दक्षिणी पूर्वी कोने के उपमंदिर में गजलक्ष्मी की प्रतिमा है, तथा इसके सामने के मंदिर में ब्राह्मणी की प्रतिमा है। मंदिर की जगती पर नृत्य-संगीत, मैथुन आदि के दृश्य जो उस युग की झाँकियां हैं, जिसमें भी नारी के बिम्ब दिखाई देते हैं। इन्हें देखकर उस समय के रहन-सहन, रीति-रिवाजों पर परम्पराओं को जाना जा सकता है। मंदिर में मध्य की लाइन में ''चतुर्भुजी देव प्रतिमाओं के दोनों ओर संसार प्रसिद्ध सुर-सुंदरियों, नाग कन्याओं इत्यादि की विभिन्न भाव-भंगिमाओं में प्रतिमायें हैं। इनमें विष्णु के दाहिने ओर की नायिका आलस्य मुद्रा में शिव के दाहिने ओर की नायिका स्नान के बाद बालों को निचोड़ते हुए तथा इसी के ऊपर की कतार के कोने पर प्रेम-पत्र लिखते हुए नायिका का सुंदर चित्रण विशेष उल्लेखनीय है।''[7] नायिका का यह अंकन कालिदास की नायिका शकुन्तला का चित्रण प्रतीत होता है, जो अपने बालों को निचोड़ रही है उवं उसके पैरों के पास हंसों का एक जोड़ा दिखलाया गया है, जो कि भ्रम में है कि शकुन्तला की सुंदर देह से पानी की बूंदें नहीं बल्कि मोती टपक रहे हैं, यह दृश्य स्त्री के अद्भुत सौंदर्य को दिखाने के लिए पर्याप्त है। ''गंधर्वों के बायीं ओर एक नायिका का चित्रण है जो एक उत्तरीय शरीर पर धारण किए है तथा उसके अतिरिक्त पूर्ण नग्न है। इनके हाथों में भिक्षा पात्र तथा एक दण्ड है, यह तांत्रिकों के एक कोला समूह की योगिनी है जो कि शरीर पर केवल एक छोटी उत्तरीय धारण कर विचरण किया करती थीं एवं भिक्षाटन द्वारा निर्वाह करती थीं।''[8] नारी की यह अवस्था उस युग में नारी के तंत्र की ओर बढ़ते कदमों की ओर इशारा करती है। भौतिकता के माध्यम से मोक्ष की कामना उसकी मर्यादा छिन्न-भिन्न कर रही थी। ''इसी मंदिर की दक्षिणी मध्य दीवार पर नीचे की लाइन में राजा रानी के आलिंगन दृश्य के बांये ओर एक नायिका अपनी बांह के नीचे पीठ पर नखचिह्न देख रही है, जो कि वात्सायन मुनि के कामसूत्र के सिद्धांतों की पुष्टि करती है।''[9] इस प्रतिमा के दाएं ओर

हाथ में तोता बैठाये हुए देवदासी का चित्रण है। उस काल में ''64 कलाओं में पारंगत इन देवदासियों का प्रतीक यही तोते हुआ करते थे।''[10] इसी पंक्ति में पैर में से कांटा निकालते हुए मां, नायक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए नायिका, गाना गाती हुई गणिका, आईने में मुख देखकर मांग भरते हुए आदि दिखाया गया है। जो स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं का सफल अंकन है, इनमें माँ, प्रेमिका, भोग्या, पत्नी, प्रेमिका आदि रूप देखने को मिलते हैं। मध्य में भगवान विष्णु के बायीं ओर नायिका है जो कि कपड़ों को धारण कर रही है, जिसे देखकर पता चलता है कि ''उस युग में बहुत ही अच्छे प्रकार के वस्त्र तो हुआ करते थे परन्तु उनकी सिलाई का कोई प्रावधान नहीं था, नायिकायें वक्ष स्थल को ढकने के लिए कंचुकी बांधा करती थीं। नीचे के वस्त्रों को चाँदी एवं सोने के बने हुए कटिबंधों द्वारा बांधा करती थीं।''[11] यहां नारी का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। इनके अतिरिक्त अपनी पीठ को स्पर्श करती नायिका, सुरा पान करते, नृत्य करते, दीवार की पुताई करते हुए व काम विह्ल नायिका अपने कपड़ों को अलग करते हुए दिखाई गई है। यहां चन्द्रमा व हेमवती का भी अंकन है। यहां एक दृश्य उल्लेखनीय होगा जिसमें नायक एक हाथ से नायिका का आलिंगन लिए हुए है व दूसरे हाथ में छड़ी लेकर बन्दर को भगा रहा है। इस दृश्य में स्त्री का भय तथा नायक के प्रति विश्वास दिखाई देता है। जो नारी के सहज गुणों का परिचायक है। नारी अंकन के इसी क्रम में एक दृश्य में तांत्रिक के साथ नायिका विशेष मैथुन मुद्रा में है तथा नायिका की पीठ पर काम बिन्दु की खोज करता प्रतीत हो रहा है और हाथी जैसे उसे देखकर हँस रहा है। लक्ष्मण मंदिर के प्रदक्षिणा पथ के कृष्ण लीला व पूतना वध के दृश्यों में भी नारी सजीव प्रतीत होती है। यहां पूतना (राक्षसी) के रूप में भी नारी का भेद मिलता है। ''ब्रह्मा मंदिर के प्रवेश द्वार पर गंगा-यमुना का अंकन है।''[12] चित्र बनाती, बांसुरी वादन करते, विवाह करते नारी के रूप शोभनीय हैं। नारी शक्ति का प्रतीक महिषासुर मर्दनी देवी दुर्गा की अभय मुद्रा में दस भुजी प्रतिमा, पार्वती मंदिर की भगवती पार्वती प्रतिमा, विश्वनाथ मंदिर की सप्त मातृकाओं चामुण्डा, इंद्राणी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, महेश्वरी व ब्राह्मणी की प्रतिमाएं उल्लेखनीय है। देव प्रतिमाओं के दोनों ओर नायिकाओं का विभिन्न मुद्राओं में अंकन हुआ है। चंवर डुलाने वाली दासियों का भी अंकन मिलता है। केश विन्यास की विभिन्नता एवं तरह-तरह के आभूषणों से सुसज्जित यह मूर्तियां बड़ी ही भाव प्रवण है। चित्रगुप्त मंदिर की शाल भंजिकाओं, अभिसारिकाओं की प्रतिमाएं एवं विभिन्न आलिंगनों में युगल इस मंदिर की विशेषता है।

कन्दरिया महादेव मंदिर में तथा जगदम्बा मंदिर में कुछ स्त्री प्रतिमाओं में स्त्री को कपड़े खोलते हुए तथा उसकी जंघा पर बिच्छु को काम के प्रतीक रूप में दिखा है तथा स्तम्भों के निचले भाग में आकर्षक एवं कमनीय नारी मूर्तियां है, जो नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में अंकित हैं।''[13] जैन मंदिर समूह के घंटाई मंदिर में जिन शासन देवियों का अंकन है, महामण्डप के प्रवेश द्वार पर चक्रेश्वरी की गुरुणारूढ़ प्रतिमाएं हैं। पार्श्वनाथ मंदिर में विष्णु-लक्ष्मी, कामदेव पत्नी रति की प्रसिद्ध प्रतिमाएं है। ''मंदिर के अंतराल में कमल और कलश के साथ अभय मुद्रा में चतुर्भुज शासन देवी तथा दायीं ओर चतुर्भुज वीणा वादिनी अंकित है।''[14] यहां कृष्णलीला में सीता व रेवती के रूप में पैरों में महावर लगाते, पायल अथवा घुंघरू बांधते, आखों में काजल लगाते नायिका का सुन्दर चित्रण है।

घण्टाई मंदिर के एक दृश्य में ''पूर्ण यौवना दक्षिणी के चरण से वामन दबकर झुक गया है। इसकी मुखाकृति विकृत हो गई है। यहां यक्षिणी वासना का प्रतीक है और वामनाकृति मुनष्य की दुर्बलता का।''[15] दुल्हादेव मंदिर में नारी शिव के अर्द्धभाग अर्थात अर्द्धनारीश्वर रूप में तथा नरसिंही रूप में उल्लेखनीय है। यहां ''गंगा की चतुर्भुज प्रतिमा भी अत्यंत सुंदर ढंग से अंकित की गई है। यह प्रतिमा इतनी प्रभावोत्पादक है कि लगता है कि यह अपने आधार से पृथक होकर आकाश में उड़ने का प्रयास कर रही है।''[16]

खजुराहो के शिल्प मैथुन तक सीमित नहीं, नारी के विविध रूप यहां है आवश्यकता है, संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर उसे देखने की। वह भोग की वस्तु नहीं, वह भी भाव पूर्ण है। वह माँ भी है, पत्नी भी, प्रेमिका भी, गायिका, वादिका, नृत्यांगना भी, देवी भी है, आदि शक्ति भी। ''खजुराहो के नारी शिल्प हमें तीनों लोकों में भ्रमण कराते हैं। यक्ष-यक्षिणी, नाग कन्या, पाताल लोक, नायिका व दैनिक जीवन के चित्र, देवदासियों आदि के शिल्प मृत्युलोक एवं अप्सरा, सुरसुंदरियां स्वर्ग का आभास कराती हैं।''[17] सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो खजुराहो शिल्प एक नारी के मनोभावों व उसके जीवन की कला यात्रा है, भले ही उस समय के तांत्रिक प्रभावों के फलस्वरूप मैथुन आकृतियां अधिक हों। लेकिन निःसंदेह नारी की कोमलता पाषाण खण्डों में उतर आयी है। नारी का महत्व उसके हर रूप में यथावत रहा है, तथा समसामयिक परिप्रेक्ष्य में भी इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। आवश्यकता है पूर्वग्रहों से मुक्त हो विवेक-पूर्ण आत्मिक दृष्टि से देखने की... शायद तभी इन महान शिल्पों तथा नारी का वास्तविक मूल्यांकन संभव हो सकेगा।

संदर्भ–

1. खजुराहो, मुक्त ज्ञान कोश विकिपीडिया से
2. अरविन्द चतुर्वेदी, खजुराहो की खासियत, ब्लाग वाणी।
3. खजुराहो, मुक्त ज्ञान कोश विकिपीडिया से
4. संजय सिंघानिया, खजुराहो दर्शन (2010), पृ. 24, मित्तल प्रकाशन, खजुराहो।
5. श्रीमती कुसुम दास, भारतीय कला परिचय (1977) प्रथम संस्करण, पृ. 108, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ।
6. अरविन्द कुमार सिंह, शिवाकांत द्विवेदी, भारतीय वास्तु तथा कला के मूल तत्त्व (2005), प्रथम संस्करण, पृ.95, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
7. संजय सिंघानिया, खजुराहो दर्शन (2010), पृ. 32, मित्तल प्रकाशन, खजुराहो।
8. वही, पृ. 33
9. वही, पृ. 33
10. वही, पृ. 33
11. वही, पृ. 33
12. अरविन्द कुमार सिंह, शिवाकांत द्विवेदी, भारतीय वास्तु तथा कला के मूल तत्व (2005), प्रथम संस्करण, पृ.96, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
13. डॉ. सच्चिदानंद सहाय, मंदिर स्थापत्य का इतिहास (1989) द्वितीय संस्करण, पृ. 51, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
14. पार्श्वनाथ मंदिर खजुराहो, मुक्त ज्ञान कोश विकिपीडिया से
15. डॉ सच्चिदानंद सहाय मंदिर स्थापत्य का इतिहास (1989) द्वितीय संस्करण, पृ. 56, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।
16. खजुराहो, मुक्त ज्ञान कोश विकिपीडिया से
17. Ritu, Feminine beauty in Khajuraho Temples, India (ISSN-2319-3565), International Research Journal of Social Sciences, Vol. 3(1), 35-37 Jan 2014.

श्री छतारे लाल दिगम्बर जैन मंदिर के सामने, मेन रोड़ गोटेगाँव, जिला–नरसिंहपुर-487118 (म.प्र.)

भारतीय जनजाति की संस्कृति और साहित्य

डॉ. रामचन्द्र राय

लेखक एवं अनुवादक, सीनियर फैलो, भारत सरकार, हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य। हिन्दी प्रचार सभा के संस्थापक सचिव के रूप में कार्यरत, अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। बँगला से हिन्दी में अनुवाद। मातृभूमि बिहार के मिथिलांचल के मधुबनी जिले में होने के कारण मधुबनी चित्र जिन गाँवों में पाए जाते हैं, उनका सर्वेक्षण एवं लेखन कार्य। कला लेखन के लिए ललित कला अकादमी से मान्यता।

भारत विविधता में एकता का देश है। यहाँ विविध प्रकार की जातियाँ निवास करती हैं एवं उनकी अपनी भाषा-बोली, रहन-सहन, खान-पान, वस्त्र-परिधान, उत्सव-अनुष्ठान आदि भिन्न रहते हुए भी इनमें एकरूपता दिखाई देती है जो भारतीय होने का परिचय देता है। यही किसी जाति एवं राष्ट्र की पहचान होती है जो उस जाति एवं राष्ट्र की संस्कृति कहलाती है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस एकता का अनुभव करते हुए, अपनी एक कविता में उदगार प्रकट किया है—

''हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य,
हेथाय द्राविड़ चीन,
शक हुण दल पठान मोगल
एक देहे होलो लीन।''

भारत विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति आदि का देश है। इनमें जन-जातियों का एक वृहद् समूह है, जो अपनी भाषा, संस्कृति आदि की संवाहिका है। डॉ. निर्मल कुमार बोस ने भारतीय आदिवासी जीवन पुस्तक में वर्ष 2011 तक 583 अधिसूचित जन-जातियों, 254 अपरिगणित जन-जातियों, 198 घुमन्तू आदिवासियों तथा 13 अर्द्धघुमन्तू आदिवासियों की सूची प्रस्तुत की है। भारत में कुल जन-जातियों की संख्या 8 करोड़ के लगभग है। इन जन-जातियों को मानव शास्त्रियों ने निम्न विभागों में विभाजित किया है--(1) पश्चिमोत्तर सीमांत की जन-जातियाँ, (2) उत्तर-पूर्व सीमांत की जन-जातियाँ और मध्य में स्थित जन-जातियाँ। प्रथम श्रेणी की जन-जातियाँ अफगानी, बलूची आदि हैं जो पाकिस्तान में वास करते हैं। दूसरी श्रेणी की जन-जातियों का मूल मंगोलीय है जो भारत के उत्तर-पूर्व सीमांत क्षेत्र में वास करती हैं एवं इनकी भाषा एवं बोलियाँ बर्मी-तिब्बती मूल की हैं। तीसरी श्रेणी की जन-जातियों की संख्या सबसे अधिक है, जिसे तीन भागों में विभक्त किया गया है—(1) कोल-भील समूह, (2) गोंड-कोया समूह और (3) मुण्डा समूह।

इन समूहों की भाषा-बोलियों को अग्निकुल (Austric) के आधार पर भारतीय-आर्य (Indo-Aryan), द्रविड़ (Dravidian) एवं अग्निकुल (Austric) परिवार की भाषाओं (Austro-Asiatic) के परिवार में विभक्त किया गया है।

साधारणतः आम धारणा यह है कि ये जन-जातियाँ जंगल-झाड़ी में निवास करने वाली जातियाँ हैं जिनकी आजीविका के मुख्य स्रोत कृषि-कार्य, आखेट करना, मछली पकड़ना, जंगलों से लकड़ी काटकर नगरों में बेचना आदि हैं। किंतु यह अवधारणा समय के साथ बदलती जा रही है। क्योंकि ये जातियाँ भी अब समाज के अन्य प्रजातियों से हिलमिल जाने के कारण, इनमें एक नई संस्कृति का शंखनाद हो रहा है। भारत के प्रगतिशील समाज की देखादेखी, पहले की भाँति आदमखोरी, आखेटी, शरीर पर गोदना गोदवाना, टोना-टोटका, भूत-प्रेत पर विश्वास, उत्सव-अनुष्ठान के अवसर पर मद्यपान करना, क्रमशः कम होता जा रहा है। यह सच है कि अभी भी भारतीय जन-जातियों की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि-कार्य पर ही निर्भर रहती है। किंतु समय के प्रवाह में इसमें भी परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तित आर्थिक वातावरण जनजातीय और पिछड़ी हुई जनता को नई परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए विवश कर रहा है। वर्तमान में औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था ने कृषि पोषित अकर्मण्यता एवं कृषि के प्रति पुराने रुझान को बदल दिया है। इसके बावजूद अधिकांश जन-जातियाँ अभी भी आर्थिक दृष्टि से विपन्न हैं एवं कृषि-कार्य पर ही निर्भर करती हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों की जन-जातियों की विपन्नता के क्रम में गुजरात की भील जनजाति की निर्धनता के संबंध में एक कथा बहुत ही लोक-प्रचलित है कि ये जाति पार्वती के भाई थे। शिव के पास दहेज माँगने के लिए गए। शिव ने कहा—मेरे पास नन्दी के सिवा कुछ नहीं है। भीलों को बताया गया कि इसमें अपार संपदा छिपी है। किंतु भीलों ने इसका अर्थ नहीं समझा। उन्होंने नन्दी को मार दिया। उसमें उन्हें कुछ नहीं मिला। इस मूर्खतापूर्ण कार्य के कारण, इस भील जाति को सर्वदा विपन्नता और निन्दनीय जीवन बिताने का दंड मिला हुआ है।

भारत में (Austro-Asiatic) भाषा बोलने वाली जन-जातियों की संख्या सर्वाधिक अधिक है। ये जन-जातियाँ संगठित एवं इनके निवास स्थान सुनिश्चित हैं। इनमें सन् 15 नवम्बर, 2000 ई. में बिहार से अलग हुए नवगठित झारखण्ड राज्य के छोटा नागपुर एवं संताल परगना क्षेत्र की जनजाति हैं। यह राज्य जन-जातीय बहुल प्रदेश है। वस्तुतः झारखण्ड विभिन्न ऊँचाई वाले पठारों का प्रदेश है जिन्हें

सम्मिलित रूप से छोटा नागपुर का पठार भी कहा जाता है।

झारखण्ड में संताल, उराँव, मुण्डा हो, विरहोर, असुर, विरजिया, सौरिया, पहाड़िया, माल पहाड़िया आदि जन-जातियाँ निवास करती हैं।

भारतीय जनजाति की संस्कृति में गीत-संगीत, कथा-कहानियों, लोकोक्तियों, पहेलियों के अकूत भण्डार हैं। इनके जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक नृत्य-गीत की ही प्रधानता रहती है। इनकी अवधारणा है कि आदिम मानव ने पशु-पक्षियों से ही नाचना-गाना सीखा है। जिस प्रकार मोर काले बादलों को देखकर आनन्द विभोर होकर झूम उठता है अथवा अपनी प्रेयसी को रिझाने के लिए अपने पंखों को फैलाकर भाव विह्वल हो उठता है उसी प्रकार मानव भी अपने हृदय से संवेग में नाच उठता है और जब भाषा उसके कंठ खोलती है तब वही संवेग गीतों के पंखों पर वायु में उड़ जाते हैं। जनजाति सभ्यता में सनातन मानव संस्कृति की सनातन प्रकृति सारी कोमलताओं के साथ सुरक्षित है।

जनजातीय संस्कृति में नृत्य-संगीत का इतना महत्व है कि दिनभर के कायिक परिश्रम के बाद अपनी कायिक थकान को दूर करने के लिए पुरुष-महिला सम्मिलित होकर, अपने अखाड़ों में नाचते-गाते हैं और अपनी कायिक थकान को दूर करते हैं। उनके गीत-नृत्य उनकी सुविधा के अनुसार रचे रहते हैं जिनमें उनके सरल एवं निश्चल भाव भरे हुए रहते हैं। गीतों की सीमा उनके नृत्यों के एक-एक ताल से मेल रखते हुए बनाए हुए रहते हैं। सभी जनजातीय गीत-संगीत मौसम के अनुसार होते हैं जिनके ताल, लय और वाद्य यन्त्र के बोल मौसम के अनुसार अलग-अलग होते हैं। प्रत्येक मौसम में कोई न कोई पर्व होता है और उनके गीत इन पर्वो से भी संबंधित होते हैं। जनजाति मौसम की मर्यादा का पालन बड़ी सतर्कता से करते हैं। वे एक मौसम का गीत दूसरे मौसम के समय नहीं गाते हैं।

बाउल गायक के साथ लेखक

इनकी संस्कृति में गीत-संगीत के बाद, कथाओं और पहेलियों का स्थान है। इनके पास लोककथाओं का विशाल भण्डार है। इन लोककथाओं में पृथ्वी, प्राणियों की उत्पत्ति, आधिदैविक शक्तियाँ और पशु-पक्षियों आदि के संबंध में इनके विचार प्रकट हुए होते हैं। अधिकांश कथा-कहानियाँ जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों पर ही आधारित होते हैं। यही नहीं इनकी प्रत्येक कथा-कहानियों में पशु-पक्षियों साथ इनके आत्मिक भाव प्रकट हुए रहते हैं। रात-दिन इनके साथ रहने वाली प्रकृति ने इनके रंगमंच पर अपने आँगन के पात्र भी भेजे हैं। अधिकांश कथाओं का संबंध बच्चों से है। इसलिए पूरे विश्व की लोक-कथाओं की तरह जनजातीय लोककथाओं में भी छोटे बच्चों को अपने बड़े भाई-बहनों की अपेक्षा चतुर दिखाया गया है और जीवन के रोमांचक संघर्ष में सबकी पराजय के बाद उन्हें विजयी बनाया जाता है।

किसी भी संस्कृति के उद्गम की जानकारी हमें वाचिक परम्परा की उस विधा से आधारभूत सहायता मिलती है जिसे लोककथा कहा जाता है। लोककथाएँ वे कथाएँ हैं जो सदियों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, दूसरी से तीसरी पीढ़ी के सतत् क्रम में प्रवाहित होती चली आ रही हैं। यह प्रवाह उस समय से प्रारम्भ होता है जिस समय से मानव ने अपने अनुभवों, कल्पनाओं एवं विचारों का परस्पर आदान-प्रदान करना प्रारम्भ किया। जनजातीय समुदायों में लोक-कथाओं का जो रूप आज भी विद्यमान है वह लोक-कथाओं के उस रूप के सर्वाधिक निकट है जो विचारों के संप्रेषण और ग्रहण की प्रक्रिया आरम्भ होने के समय रहा होगा। जनजातीय लोक-कथाओं में मनुष्य के जन्म, पृथ्वी के निर्माण, देवता के व्यवहार, भूत-प्रेत, राक्षस आदि से लेकर लोक व्यवहार से जुड़ी कथाएँ निहित रहती हैं। इनका साहित्य लोक-कथाओं-कहानियों से परिपूर्ण है। यही लोक-कथाएँ इनकी संस्कृति की संवाहिका हैं।

इनके साहित्य में लोक-कथाओं के अतिरिक्त पहेलियों और लोकोक्तियों की भी भरमार है जिनमें दैनिक सम्पर्क की साधारण बातों के अतिरिक्त जीवन के परम्परागत अनुभवों को भी बड़े ही सुन्दर प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किए गए हैं। इनकी कथाएँ और पहेलियाँ मनोरंजन के प्रधान साधन होते हैं।

इस प्रकार भारतीय जनजाति की संस्कृति और साहित्य से प्रेरणास्रोत हैं। यह साहित्य सृजन की भूमि है जहाँ से कवि, लेखक, नाटककार, चित्रकार, संगीतकार, अपनी रचनाओं के सृजन के लिए सामग्री का चयन करते हैं। जो कवि, लेखक, नाटककार, चित्रकार, संगीतकार आदि लोकजीवन से सामग्री एकत्र नहीं करते हैं वह सफल कवि, लेखक, नाटककार, चित्रकार, संगीतकार नहीं हो सकते हैं। आज तक जितने भी कवि, लेखक, नाटककार, चित्रकार, संगीतकार लोकप्रिय हुए हैं, उन्होंने अपनी रचनाओं की सामग्रियाँ लोकजीवन से ही संग्रह किया है। भारतीय जनजाति यहाँ के मूल निवासी हैं। इनकी संस्कृति ही भारत की संस्कृति है। इसी संस्कृति का प्रतिबिम्ब साहित्य पर प्रतिबिम्बित होता है।

सचिव, शान्तिनिकेतन हिन्दी प्रचार सभा,
रूपान्तर परिसर, रतनपल्ली नार्थ,
शान्तिनिकेतन-731235 (पश्चिम बंगाल)

सूरदास का भाषा-सौष्ठव

प्रोफेसर लालचन्द गुप्त 'मंगल'

सम्प्रति प्रोफेसर सह अधिष्ठाता, कला एवं भाषा संकाय, हिन्दी विभाग। पूर्व अध्यक्ष, आधुनिक यूरोपीय भाषा-विभाग, पत्रकारिता-विभाग, उर्दू-फारसी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय।

आरम्भिकी—भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है भाषा; और कलागत रमणीयता में इसी भाषा का स्थान होता है पहला। यदि भावों को काव्य का प्राण कहा जाए तो भाषा को काव्य का शरीर कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि एक-दूसरे की सशक्तता एवं सबलता के अभाव में काव्य का निष्प्राण हो जाना अवश्यम्भावी है। सूरदास अपनी भाव-योजना और भाषा-समर्थता, दोनों दृष्टियों से हिन्दी-साहित्य के सूर्य हैं। डॉ. प्रेमनारायण टण्डन के शब्दों में—''महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सूरदास को श्रीकृष्ण के लीलागान-मात्र के लिए उत्साहित किया था। उनकी आज्ञा का सर्वांशतः पालन करने के साथ-साथ सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाभूमि की भाषा को भी अमर कर दिया।... उनके इस अभिनंदनीय कार्य के सम्बन्ध में, संक्षेप में, यही कहना होगा कि ब्रजभाषा को पाकर कवि सूर कृतकृत्य हो गया और ब्रजभाषा उसको पाकर धन्य हो गयी।''

यद्यपि सूरदास की भाषा ब्रजभाषा है, तथापि उन्होंने इसे कहीं भी 'ब्रजभाषा' नहीं कहा है; बल्कि तुलसीदास की भाँति (भाषा भनित मोरि मति थोरी) इसे 'भाषा' ही कहा है—''सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाई।'' (सूरसागर, दशम स्कंध, पद 225)। हिन्दी साहित्य में इस 'भाषा' का सर्वप्रथम प्रवेश चंदबरदायी-कृत 'पृथ्वीराजरासो' से माना जाता है। तत्पश्चात् सन्तों की सधुक्कड़ी भाषा में ब्रज-प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है, लेकिन उत्कृष्ट कोटि की काव्य-रचना के लिए, डॉ. सावित्री सिन्हा के अनुसार, ''उसमें कला-सौष्ठव का कोई ठोस आधार नहीं मिलता।'' इस प्रकार, कहना न होगा कि, सूर ने ही सर्वप्रथम ब्रज को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया है और इसके लिये वह सदैव उनकी आभारी रहेगी। इस सम्बन्ध में महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की यह टिप्पणी अत्यंत सार्थक बन पड़ी है। आप लिखते हैं—''एक प्रान्त-विशेष की भाषा समुन्नत होकर यदि देशव्यापिनी हुई, तो वह ब्रजभाषा ही है और ब्रजभाषा को यह गौरव प्रदान करने वाले कविवर सूरदास हैं। उनके हाथों से यह भाषा जैसी मँजी, जितनी मनोहर बनी और जिस सरसता को उसने प्राप्त किया, वह हिन्दी-संसार के लिए गौरव की वस्तु है।''

शब्द-सम्पदा—अर्थ की दृष्टि से भाषा का प्रथम अवयव 'शब्द' होता है। जिस कवि का शब्दकोष जितना विशाल होगा, उसकी भाषा और शैली उतनी ही समृद्ध होगी इसीलिए अपनी सर्वोत्तम और सुन्दर भावाभिव्यक्ति के निमित्त कवि लोग, चारों ओर से शब्दों को ग्रहण करके, यथावश्यकता काट-छाँट करके, उनका प्रयोग किया करते हैं। चूँकि सूरदास का लक्ष्य ब्रजभाषा की व्यंजकता एवं अर्थ-वैभव में वृद्धि कर उसे सर्वमान्य साहित्यिक भाषा बनाना था, इसलिये उन्होंने तत्सम, तद्भव और ठेठ शब्दों के साथ-साथ विदेशी शब्दों को भी अपनाकर अपनी शब्द-योजना को सराहनीय बनाया है। वास्तव में, पात्र ओर परिस्थिति के अनुरूप उन्हें देशी-विदेशी, साहित्यिक-असाहित्यिक, शिष्ट-अशिष्ट, जैसा भी उपयुक्त शब्द मिला, उन्होंने उसको सहर्ष स्वीकार किया। तभी डॉ. प्रेमनारायण टण्डन ने कहा है कि ''सूरदास का शब्द-भण्डार बहुत विस्तृत और पूर्ण है, उनका शब्द-चयन बहुत उपयुक्त और विषयानुकूल है।'' आइए, अब सूर के शब्द-भण्डार की एक बानगी देख लें—

(क) **तत्सम शब्द**—सूरदास ने तत्सम शब्दावली का प्रयोग प्रायः सिद्धान्त-निरूपण और अप्रस्तुत-योजना के अवसरों पर किया है। इसका कारण यह है कि सिद्धान्त-कथन में जहाँ कवि ने संस्कृत के ग्रन्थों को आधार बनाया है, वहीं साहित्यिक अप्रस्तुत-योजना में संस्कृत काव्य-परम्परा को अवलम्ब लिया गया है। हाँ! लीला-गान में बाहरी आधार कम होने के कारण वहाँ तत्सम शब्दावली अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त हुई है। अपवाद, अहिपति, आच्छादित, आमिष, आयुद्ध, इंदीवर, कृत, कृपा, कलत्र, क्रीड़ा, कलेवर, खंजन, गृह, गयंद, घृत, चिबुक, जलत, डिंभ, तिष्ठति, दाहक, नृपति, पंक, भगिनी, मंडित, मुकुलित, रुचिर, राका, लता, वसुधा, संभ्रम व हाटक आदि असंख्य तत्सम शब्द सूर के यहाँ विराजमान हैं।

(ख) **अर्द्धतत्सम शब्द**—कहीं-कहीं सूरदास ने तत्सम शब्दों पर, अत्यल्प परिवर्तन द्वारा, बोली का रंग चढ़ाकर नवीन शब्द-निर्माण की अपनी रुचि का भी अच्छा प्रदर्शन किया है। ऐसे शब्दों को अर्द्धतत्सम कहना ही अधिक समीचीन रहेगा। उदाहरणार्थ अपजस, अनूपम, अलख, अविनासी, असुरहन, आतमाराम, गनिका, जोजन, तीरथ, दुरबासा, पोषना, तूनीर, मरकट, सूकर व हर्षना आदि शब्द अर्द्धतत्सम ही हैं।

(ग) **तद्‌भव शब्द**—व्यवहारिक भाषा को अधिक महत्व देने के कारण सूर ने तद्‌भव शब्दों का ही अधिकांश प्रयोग किया है। ऐसा करने से भाषा की आडम्बरहीनता और सहज-सुन्दरता में स्वाभाविक वृद्धि हुई है। संस्कृत के शब्दों को ऐसा कर्णप्रिय रूप प्रदान किया गया है कि वे ब्रजभाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल हो गए हैं और इससे ब्रजभाषा की ग्राम्यता भी जाती रही है। 'सूर की काव्य-कला' के लेखक डॉ. मनमोहन गौतम द्वारा प्रस्तुत सूची के कतिपय तद्‌भव शब्द इस प्रकार हैं—अंकवारि (अंकमाल), अंचयो (आचमन), अनत (अन्यत्र), अमराई (आम्रराजि), दही (दधि), लवनी (नवनीत), निसंक (निश्शंक), जुवा (द्यूत), नेम (नियम), पंखी (पक्षी), भौंह (भ्रू), हियरौ (हृदय) आदि-आदि। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे तद्‌भव शब्द भी हैं, जिनका प्रयोग केवल सूर की काव्य-भाषा में ही हुआ है। अकुचत, अठिलात, इंगुर, उपराजी, उरहत, ओठर, औधाई, कचपची, कनौड़े, खगवै, चपरि, चुरकुट, नेवाज, लुनिए, हीय आदि ऐसे ही शब्द हैं।

(घ) **देशज शब्द**—सूर के पदों में ऐसे देशज शब्दों की भी कमी नहीं है, जिनके न तो मूल उद्‌गम का पता है और न जिनकी व्युत्पत्ति करना ही संभव है। हाँ! इतना अवश्य स्पष्ट है कि अब ये ब्रजभाषा की सहज सम्पत्ति बन गए हैं। झगुली, झाम, ढबरी, घैया, ढूकी, बोहनी, टकटोरत, डहकावै, घमर, रुनकझुनक आदि देशज शब्द ही हैं।

सूर-साहित्य में **अन्य भारतीय भाषाओं और बोलियों** के भी कुछ शब्द मिल जाते हैं यथा—

खड़ी बोली—गाया, आया, लखाया, ओढ़ाया, बताया आदि।

अवधी—होइस, मोर, तोर, इहवाँ, जहवाँ, कीन, हमार, छोट, बड़, दुबार, बियारी आदि।

गुजराती—पेला, बियो आदि।

बुंदलेखण्डी—गहिबी, सहिबी, जानिबी, प्रगटबी आदि।

पंजाबी—प्यारी आदि।

कन्नौजी—हुतो, हुती आदि।

प्राकृत—सायर आदि।

घरेलू—लरिक-सलोरी, छाक, सथिया, चीतत, पतूखी, भूड़, पाखे, लँगरई आदि।

(ड) **विदेशी शब्द**—सूरदास जी ने विदेशी—अरबी और फारसी—शब्दों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। लेकिन ऐसे शब्दों को प्रयुक्त करने से पहले उन्होंने इनका संस्कार किया, उन्हें अर्द्धतत्सम रूप दिया, उनके विदेशीपन को दूर किया और उन पर ब्रजभाषा की कलई की। यही कारण है कि इन शब्दों का स्वरूप हिन्दी के इतना अनुरूप हो गया है कि उनका विदेशीपन दिखाई ही नहीं देता। यह तालिका देखिए—

फारसी—अन्देस, अवाज, अपसोच, कंगूरा, कुलही, गुनहगार, गुलामी, चुगली, जहाज, दस्तक, दरजी, नकली, निवाज, परदा, बरामदा, बेसरम, यारी, रुख, लश्कर, सरदार, साऊ, साफ, सिरपाव, सेहरो, सोर, हरामी आदि आदि।

अरबी—अकस, अमल, अरज, असल, आखिर, आदमी, उमर, कसम, कसाई, कागद, गरीब, खता, दगाबाज, नफा, निहाल, फौज, मसखरा, महल, मौज, राजी, लायक, साबित, सुलतान, हकीम, हजूर आदि आदि।

तुर्की—कुमैत (कुमेत) आदि।

(च) **मिश्रित शब्द**—सूर ने कुछ ऐसे शब्द भी अपनाए हैं, जो देशी एवं विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से अथवा देशी प्रत्यय एवं विदेशी शब्दों के योग से बनाए गए हैं। उदाहरणार्थ, 'अनलायक' और 'अनाहक' शब्दों में देशी प्रत्यय ('अन' तथा 'अ') और विदेशी शब्दों ('लायक' तथा 'नाहक') का मिश्रण हुआ है। ऐसे ही फौजपति, बेपीर, बेहाल, लौन, हरामी आदि शब्दों में देशी-विदेशी शब्दों का मिश्रण करके शब्द बनाए गए हैं।

इस प्रकार सूर ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करके ब्रजभाषा को समर्थ, सशक्त और समृद्ध बनाया है तथा उसे विविध राग-रागिनियों के अनुकूल ढालकर नाद-सौन्दर्य एवं सगीतात्मकता से ओत-प्रोत किया है। इस संदर्भ में डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा की यह टिप्पणी अत्यन्त सार्थक बन पड़ी है—''कवि के शब्द-प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है, उसकी व्यापक संग्रह-शक्ति। पात्र और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उसने उपयुक्त समझा, उनका प्रयोग करने में उसे इस बात का संकोच नहीं हुआ कि वे किस श्रेणी अथवा किस उद्‌गम के हैं। उसके काव्य में शब्द, अर्थ के अधीन होकर, प्रयुक्त हुए हैं।''

मुहावरे-लोकोक्तियाँ—भाषा में सजीवता, प्रभावोत्पादकता और चमत्कारपूर्ण मनोहरता लाने के लिए सूर ने प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का भी सार्थक प्रयोग किया है। ध्यातव्य है कि लक्षणा पर आधारित होने के कारण मुहावरों और लोकोक्तियों में अर्थ-चेतन की अपूर्व क्षमता होती है। जहाँ मुहावरे भाषा के सामान्य अर्थ में चमत्कार उत्पन्न करते हैं, वहाँ लोकोक्तियों में जीवन के महत्वपूर्ण अनुभवों का सार इस प्रकार

सन्निहित रहता है कि पाठक के सामने प्रसंग-विशेष का एक सांगोपांग चित्र-सा अंकित हो जाता है। सूर-साहित्य में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों की बानगी क्रमशः द्रष्टव्य है—

(1) जब तोसौं समुझाई कही नृप, तब तैं करी न कान।

(2) ताकौ केस खसै नहि सिर तैं जौ जग बैर परै।

(3) टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी, टेढ़े-टेढ़े धायौ।

(4) कबहुँकि फूलि सभा मैं बैठ्यो, मूँछनि ताव दिखायौ।

(5) हम कछु लेन न देन मैं, ये बीर तिहारे।

(6) तुम बाँधति आकास बात झूठी को सैहै।

(7) सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै।

(8) तुम जो कहति हो मेरौ कन्हैया गंगा कैसौ पानी।

(9) इक तैं एक गुननि हैं पूरे, मातु पिता अरु आपु।

(10) हाथ नचावति आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी।

× × ×

(1) अँगुरी गहत गह्यौ जिहिं पहुँचौ कैसैं दुरति दुराए।

(2) सूरदास प्रभु आक चचोरत, छाँड़ि ऊँख कौ मूढ़।

(3) भई रीति हठि उरग-छछूँदरि छाँड़े बनै न खात।

(4) कहौ मधुप, कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँड़े।

(5) सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं, ताकौ कहा करै काजी।

(6) सूरदास सुरपति रिस पाई, कीरी तनु ज्यों पंख उड़ाई।

(7) ज्यौं गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत।

(8) करियै कहा लाज मरियै जब अपनी जाँघ उघारी।

(9) दाई आगै पेट दुरावति, वाकी बुद्धि आजु मैं जानी।

(10) बीस बिरियाँ चोर की तौ कबहुँ मिलिहै साहु।

उपर्युक्त प्रयोगों से जहाँ सूर की भाषा-समृद्धि का परिचय मिलता है, वहाँ उनके सामाजिक अनुभव और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिज्ञान भी होता है। इस सम्बन्ध में डॉ. मनमोहन गौतम ने एक और अत्यन्त मनोरंजक तथ्य का उद्घाटन किया है। आप लिखते हैं—"मुहावरों और लोकोक्तियों के स्थल निश्चित हैं। इनकी सबसे अधिक संख्या 'भ्रमरगीत' में उद्धव और कुब्जा के प्रति कहे हुए गोपियों के वचनों में मिलती है। लगभग 90 प्रतिशत मुहावरे और लोकोक्तियाँ यहीं हैं।... सूर के शेष दस प्रतिशत मुहावरों और लोकोक्तियों के स्थल हैं—मुरली के प्रति गोपियों के वचन, मान-लीला तथा ऐसे स्थल, जहाँ किसी प्रकार की मानसिक आकुलता या विवशता की स्थिति है।" इस गणना से स्पष्ट है कि सूरदास ने मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा के सामान्य प्रवाह में, निष्प्रोजन नहीं किया है।

ब्रजभाषा की रूप-रचना में योगदान—सूरदास जी का ब्रजभाषा पर आधिपत्य निर्विवाद है, क्योंकि उन्होंने एक सर्वथा असाहित्यिक भाषा को साहित्यिक बनाया; उनके द्वारा किया गया भाषा-संस्कार अमिट हो गया और उनकी भाषा ही आरम्भ में ब्रजभाषा का आदर्श रूप बन गयी। ब्रजभाषा के स्वरूप निर्माण में सूरदास के अवदान को डॉ. मनमोहन गौतम ने इस प्रकार रेखांकित किया है—

- ब्रजभाषा को सर्वथा समृद्ध किया। उसका शब्दकोष व्यापक हो गया। उसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द, अनुकरणात्मक शब्द, देशज शब्द, ब्रज तथा अवधी, बुन्देली, कन्नौजी आदि के प्रचलित शब्द, विदेशी—अरबी और फारसी शब्द—सभी का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ। परिणाम यह हुआ कि सूर के हाथों ही ब्रजभाषा बड़ी लचीली हो गयी।
- मुहावरों और लोकोक्तियों का सम्यक् प्रयोग सूर ने किया। परिणाम यह हुआ कि भाषा की व्यंजकता बढ़ गयी और उसके प्रवाह में अपूर्व वृद्धि हुई।
- व्याकरण के रूपों में सूर ने साहित्यिक दृष्टिकोण रखा। बोली में प्राप्त विकल्पों में से अपेक्षाकृत काव्योचित रूपों को ही लिया, फिर भी उसे किसी प्रकार दृढ़ बंधन में नहीं जकड़ा, बुन्देली और अवधी तक को अवसर दिया। परिणाम यह हुआ कि ब्रजभाषा में स्थिरता के साथ-साथ व्यापकता भी आ गयी, जिससे भिन्न प्रांत-भाषा वाले कवियों ने भी सूर की भाषा को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं की।

चार विशिष्ट गुण—'सूरसागर' के अध्येताओं ने सूर की भाषा के प्रायः चार विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया है। ये हैं—भावानुकूलता, व्यंजनात्मकता, चित्रमयता और मधुरता। आइए, इन पर क्रमशः विचार करें—

(क) **भावानुकूलता**—सूर की भाषा का प्रधान गुण उसकी भावानुकूलता है। यही कारण है कि उनकी भाषा के मुख्यतः पाँच रूप उपलब्ध होते हैं—(1) विनय पदों की भाषा, (2) चौपाई-छन्दों की भाषा, (3) लीला पदों की भाषा, (4) दृष्टिकूट पदों की भाषा और (5) भ्रमरगीत की भाषा। जहाँ सूरदास ने भागवत के भावानुवाद-रूप में कथा-गायन किया है, वहाँ उनकी भाषा, लचर, गद्यात्मक, पंडिताऊ और निरलंकार है। इसके विपरीत कला-गीतों की भाषा संयत, सक्षम, मार्मिक और प्रसंगानुकूल है। कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली से वही ध्वनि निकलती है, जिसका

वर्णन करना उन्हें अभीष्ट है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं–

(1) अटपटाई कलबल करि बोलत।

(2) अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया।

(3) बरत बन-पात, भहरात, झहरात, अररात तरु महा धरनी गिरायौ।

(4) घहरात, गररात, दररात, हररात, तररात, झहरात माथ नाए।

(5) घटा घनघोर घहरात, अररात, तररात, थरथरात ब्रज लोग डरपे।

उपर्युक्त पंक्तियों की शब्द-योजना इस प्रकार की है कि प्रथम में बालक की बोली की 'अस्फुट' ध्वनि है और द्वितीय से बच्चे की चाल की डगमगाहट-सी ध्वनित होती है। इसी प्रकार अंतिम तीनों उदाहरणों की शब्द-योजना से वातावरण की भयानकता का सहज ही आभास मिल जाता है। उल्लेखनीय है कि भाषागत यह विविधता और विशिष्टता ब्रजभाषा के अन्य कवियों में दृष्टिगोचर नहीं होती। डॉ. मनमोहन गौतम के शब्दों में, ''साधारण बोलचाल की भाषा से लेकर अलंकृत और नाद-वैभव से सम्पन्न भाषा 'सूरसागर' में मिलती है। रास में जहाँ नृत्य की रुनझुन सुन पड़ती है, वहाँ दावानल में भीषणता भी साकार हो उठती है। संक्षेप में, भाषा सूर के हाथ की पुत्तलिका रही है। जैसा कवि ने चाहा है, वैसा रंग उसने दिखाया है।''

(ख) **व्यंजनात्मकता**–महान कवि की भाषा के उत्कर्ष की पहचान और परख के लिए हमें यह देखना चाहिए कि वह कितने कम शब्दों में, कितनी छोटी सीमा में बैठकर, किस असीम की ओर संकेत करने में सफल हुआ है। 'काव्य-प्रकाश' की शब्दावली में, उसके वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ कितना अतिशायी हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'सूरसागर' से एक पद लेकर सूरदास की इस शक्ति का कुछ इस प्रकार खुलासा किया है–

''श्रीकृष्ण ने किसी गोपी के घर माखन चुराकर खा लिया है, वह उलाहना देने यशोदा के घर आयी है। कहती है, यशोदा! तेरे लल्ला ने मेरा माखन खा लिया है। दोपहर को घर सूना जानकर ढूँढता-ढाँढता मेरे घर आया। किवाड़ खोलकर सींके के पास खाट पर चढ़ गया। कुछ खाया, कुछ ढरकाया, कुछ दोस्तों को खिलाया। यह तो अच्छी बात नहीं है। एक ही दिन की बात रहती तो कोई बात नहीं थी, रोज ही गोरस का नुकसान होता है। अद्‌भुत है तुम्हारा यह ढोटा! अनोखा पूत जनमा है तुमने! यशोदा री–

''तेरो लाल मेरो माखन खायौ।
दुपहर दिवस जानि घर सूनो
 ढूँढ़ि ढंढोरि आप ही आयौ।
खोलि किवार पैठि मंदिर में
 दूध दही सब सखनि खवायौ।
सींके काढ़ि खाट चढ़ि मोहन
 कछु खायौ कछु लै ढरकायौ।
दिन प्रति हानि होत गोरस की
 यह ढोटा कौनें ढंग ढायौ।
सूर स्याम कौं हटकि न राखै,
 तू ही पूत अनोखौ जायौ।।''

सारा पद सीधा-सा उलाहना है, पर यह प्रतिवेशिनी का द्वेषपूर्ण उलाहना नहीं है। यह प्रेम-परायणा का उलाहना है, जिसमें हृदय का स्पर्श है। उलाहना देते समय उलाहना देने वाली की आँखों की स्निग्ध हँसी का चित्र खिंच जाता है। वह अपना क्रोध प्रकट करने नहीं आयी है, अपना प्यार जताने आयी है। यह प्यार केवल एक शब्द से ध्वनित होता है–'पूत अनोखौ जायौ!' पद के सारे शब्द प्रेम की विपरीत दिशा की ओर संकेत करते हैं, पर यह एक शब्द उन सबके भाव को बदल देने की आश्चर्यजनक शक्ति रखता है। साधारण आदमी के उलाहने में अन्य शब्द नितान्त आवश्यक हैं, अनावश्यक है केवल यह 'अनोखौ' शब्द! पर सूरदास के लिए इस अनावश्यक शब्द में ही सब-कुछ है। इसी शब्द के आ जाने से गोपी के सारे कथन का अर्थ बदल जाता है। वह मानो कह रही है, ''कितना अच्छा है तुम्हारा लाल, जो रोज ही हमारे घर के दही को धन्य कर जाता है।''

(ग) **चित्रमयता**–सूरकाव्य की भाषा का तीसरा महत्वपूर्ण गुण है, उसकी चित्रमयता। साधाारण व्यक्ति जिस बात को नाना भाव-भंगिमाओं, व्याख्याओं और संकेतों का सहारा लेकर भी स्पष्ट नहीं कर पाता, अच्छा कवि उसे बड़ी आसानी से एक साधारण-सी भंगी में प्रकट कर देता है। भाषायी चित्रमयता के गुण में तो, बकौल आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, ''सूरदास की समता संसार के कुछ ही कवि कर सकते हैं... चित्रमय भाषा के लिए तो 'सूरसागर' की एक-एक पंक्ति उदाहरण है।'' प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्–

''बिहरत हैं जमुना जल स्याम।
राजत हैं दोउ बाँहाजोरी
 दंपति अरु ब्रज-बाम।।
 × × ×
नटवर वेष धरे ब्रज आवत।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल कुटिल
 अलक मुख पर छबि छावत।।
 × × ×
आनन अरु उरजनि के अन्तर
 जलधारा बाढ़ी तेहिं काल।
मनु जुग जलज सुमेरु-सृंग तैं
 जाइ मिले सम ससिहिं सनाल।।
 × × ×
अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि-स्रमजल अंतर-तनु भीजे,
 ता लालच न धुआवति सारी।।
अधोमुख रहति उरधा नहिं चितवति,

ज्यों गथ हारे थकति जुआरी।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने,
ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।।
हरि संदेस सुनि सहज मृतक भईं,
इक बिरहिनि दूजे अति जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवति हैं,
ब्रजबनिता सब स्याम दुलारी।।''

(घ) **मधुरता**—ब्रजभाषा के माधुर्य नामक जिस गुण की चर्चा विशेष रूप से होती है, उसका प्रधान अवलम्ब सूरदास का ही कवि-कर्म है। उल्लेख है कि कालिय दमन, गोवर्धन लीला, कंसवध और दावानल आदि गिने-चुने प्रसंगों में ही ओज गुण का समावेश हुआ है, अन्यथा सर्वत्र ही माधुर्य एवं प्रसाद गुणों की बहुलता है। सूरदास ने कर्णकटु, परुषावृत्ति एवं द्वित्ववर्णी शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर किया है। डॉ. गोपीनाथ तिवारी के शब्दों में, ''ब्रजभाषा अपनी मधुरता एवं सरसता के लिए वैसे ही प्रसिद्ध है। फिर सूर ने तो उसमें चार चाँद लगा दिए हैं, उन्होंने भाषा को सभी साधनों से सरस बनाया है।'' देखिए यह पद, यहाँ माधुर्य कैसे छलका पड़ रहा है—

''बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी तू बेटी,
देखी नहिं कबहूँ ब्रज-खोरी।।
काहे को हम ब्रजतन आवति,
खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति स्रवननि, नंद ढोटा
करत रहत माखन दधि चोरी।।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं,
खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि,
बातनि-भुरइ राधिका भोरी।।''

निष्कर्ष तुला पर—उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आलोक में, निष्कर्ष स्वरूप, यह कहा जा सकता है कि सूरदास ने अपने काव्य के लिए अपने इष्टदेव की विहार-भूमि ब्रज की भाषा को अपनाया। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के अनुसार, ''जो कोमलकान्त पदावली, शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता और सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्वप्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया।'' वस्तुतः, ब्रजभाषा को साहित्यिक, परिनिष्ठित और एकरूप बनाने में सूर ने जो स्वाभाविक परिश्रम किया है, हिन्दी-जगत् उसके लिए उनकी ऋणी रहेगा। डॉ. मुंशीराम शर्मा के शब्दों में, ''सूर ने ब्रजभाषा को उत्तराखण्ड की ही नहीं, समस्त भारतवर्ष की भाषा बना दिया। वैष्णव धर्म की सन्देशवाहिनी बनकर वह एक ओर तो बंग, गुजरात और महाराष्ट्र में समादृत हुई और दूसरी ओर, अपनी कोमलता के कारण, वह अवध, बिहार, पंजाब तथा दक्षिणापथ के कवियों का कंठहार बनी। इस देश में लगभग चार सौ वर्षों तक उसने कवियों की जिह्वा पर शासन किया है।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास की भाषायी क्षमता का विश्लेषण करते हुए अपना निष्कर्ष यों प्रस्तुत किया—''...चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है, जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है। पहली साहित्यिक रचना और इतनी प्रचुर, प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण कि अगले कवियों की शृंगार और वात्सल्य उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती हैं।''

मंगल भवन, 1218/13, शहरी सम्पदा,
कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

समाजवादी-मानवतावादी कवि प्रदीप की सार्थकता

डॉ. ज्ञान प्रकाश

डॉ. ज्ञान प्रकाश युवा आलोचक एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के विवेकानन्द महाविद्यालय में प्रवक्ता (हिन्दी) हैं। उनकी लिखी काव्य-आलोचना और आलेख कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

कवि प्रदीप का नाम आते ही प्रायः हमें 'ऐ मेरे वतन के लोगों' नामक प्रसिद्ध गीत का ध्यान आता है। इस गीत को सुनकर शायद ही कोई हिन्दुस्तानी हो जिसकी आँखें नम न होती हों, जिसके भीतर सिंहरन न उत्पन्न हो। अपने देशभक्ति गीतों के कारण कवि प्रदीप को गाहे-बगाहे याद किया जाता रहा है परंतु साहित्य की मुख्यधारा में उन्हें एक कवि के तौर पर वह पहचान नहीं मिल पाई जिसके वे वास्तविक हकदार हैं। रामचन्द्र नारायण द्विवेदी से कवि प्रदीप बनने की प्रक्रिया में उनकी रचनाओं का साहित्यिक-सांस्कृतिक मूल्यांकन अधूरा रह गया है और इसकी एकमात्र वजह रही है फिल्मी दुनिया से उनका रिश्ता। दावे के साथ कहा जा सकता हे कि अगर वे फिल्मों के लिए न लिखते तो आज हिन्दी साहित्य में उनकी एक खास पहचान होती। इस महान कवि-गीतकार के लिए पहचान का कोई संकट नहीं है। उनके लिखे गीतों के बोल साधारण जनता के जुबान पर काबिज हैं जो किसी भी साहित्यिक पुरस्कार और पहचान से बड़ी वस्तु है। साहित्यिक दुनिया ने भले ही 'कवि प्रदीप' के साथ अन्याय किया हो, आलोचना जगत ने भले ही उनके गीतों की अंतर्वस्तु में कविता-तत्व का अभाव पाया हो, जनता ने

हमेशा उनके गीतों को सर आँखों पर बिठाया है और आश्चर्यजनक रूप से उनके गीत बिना किसी प्रचार-तंत्र का सहारा लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे हैं।

'आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिन्दुस्तान की', 'ऐ मेरे वतन के लोगों', 'दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल' आदि देशप्रेम से जुड़े गीतों की प्रसिद्धि ने कवि प्रदीप को राष्ट्रीय चेतना संपन्न गीतकार के रूप में स्थापित किया है। देशभक्ति गीतों के अलावा कवि प्रदीप ने बड़े पैमाने पर साधारण जीवन यथार्थ से जुड़े गीत लिखे जिनकी ओर हमारी दृष्टि न के बराबर जाती है। उनके इन गीतों में साधारण मनुष्य की आशा-आकांक्षा, हर्ष-विषाद व्यक्त है, स्वच्छन्द प्रकृति सौंदर्य चित्रित है, मानवतावादी संवेदना और संघर्षशील मध्यवर्ग का दर्द रूपायित है। सरकारी समारोहों और अवसर-विशेष पर अनिवार्य रूप से गाये और सुने जाने वाले देशभक्ति गीतों से अलग कवि प्रदीप के गीतों का एक बड़ा संसार है जिसका सीधा सरोकार संघर्षशील जनता से है, जिसमें प्रदीप का मानवतावादी और समाजवादी कवि रूप प्रकट होता है।

कवि प्रदीप का रचना संसार व्यापक है। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के समय से लेकर आजादी के बाद 1980 तक लगभग सत्रह सौ गीतों की रचना की है। स्वाभाविक तौर पर आजादी के पूर्व के गीतों में जागृति, जागरण, हुंकार और शंखनाद का स्वर प्रमुख है वहीं आजादी के बाद के गीतों में बदलती परिस्थितियों के बीच युगीन यथार्थ चित्रित है।

फिल्म 'बंधन' (1940) कवि प्रदीप के लिहाज से बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसके कई कारण गिनाये जा सकते हैं—मसलन यह पहली फिल्म थी जिसके सारे गाने प्रदीप ने लिखे; इसमें पहली बार उन्होंने एकल गीत गाये आदि। परंतु मेरे हिसाब से इससे ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि पहली बार फिल्म जैसे घोर व्यावसायिक विधा में मजदूरों के लिए गीत फिल्माया गया। मजदूर वर्ग के प्रति कवि प्रदीप की संवेदना इन पंक्तियों में महसूस की जा सकती है—

''हम तो अलबेले मजदूर
    गजब हमारी जादूगरी।
कहो तो फौरन महल बना दें
    पास में बढ़ियाँ बाग लगा दें

जहाँ पे छम-छम नाचे
सलोनी कोई छबीली परी।
राम हो जादूगरी।
हम पत्थर में प्राण जगा दें
हम मिट्टी में जीवन ला दें
नखरेवाली डलिया मोरी
बड़ी गुमान भरी।
राम हो जादूगरी।''

वास्तव में प्रदीप पहले कवि-गीतकार हैं जिन्होंने सिनेमा जैसे घोर व्यावसायिक, गैर-लचीले और प्रायः अंधविश्वास के शिकार माध्यम में अपने विचारों, अपनी भावनाओं और विश्वासों के लिए गुंजाईश पैदा की। यही कारण है कि एक भी ऐसा गीत आप उनके रचना-संसार में नहीं पाएंगे जिसे फूहड़ अथवा गैर-साहित्यिक कहा जा सके। उनके गीतों में मानव और मानवता के प्रति सच्ची संवेदना प्रकट है। द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी, भारत-पाक विभाजन और विभाजन से उपजे दर्द ने पूरी मानवता को भीषण आघात पहुँचाया। यह वह समय था जब पूरे विश्व में मानव मात्र और मानवता पर प्रहार हो रहे थे। कवि प्रदीप का मानवतावादी मन दुःखी हो कराह उठा—

''देख तेरे संसार की हालत
क्या हो गयी भगवान।
कितना बदल गया इंसान,
कितना बदल गया इंसान।
××× ××× ×××
आया समय बड़ा बेढंगा,
आज आदमी बना लफंगा
कहीं पे झगड़ा, कहीं पे दंगा,
नाच रहा नर होकर नंगा
छल और कपट के हाथों
अपना बेच रहा ईमान।
कितना बदल गया इंसान,
कितना बदल गया इंसान।''
—(फिल्म : नास्तिक, 1954)

विभाजन के साथ फैले देशव्यापी दंगों ने प्रदीप को भीतर तक हिला दिया। 'सीता' और 'सलमा' दोनों की आबरू लूटी जा रही थी, पड़ोसी-पड़ोसी का हत्यारा बन रहा था। इन दंगों की व्यथा को कवि प्रदीप ने अपने प्रसिद्ध गीत 'आज के इंसान को क्या हो गया' मैं कुछ इस तरह बयाँ किया—

''चारों ओर दगा ही दगा है,
हर छूरे पर खून लगा है।
आज दुःखी है जनता सारी,
रोते हैं लाखों नर-नारी।
रोते हैं आँगन गलियारे,
रोते आज मुहल्ले सारे।
रोती सलमा, रोती है सीता,
रोते हैं कुर-आन औ गीता...।''
—(फिल्म : अमर रहे ये प्यार, 1961)

इसी फिल्म के एक दूसरे गीत में उन्होंने आजादी प्राप्त होने के बाद की राजनैतिक फिरकापरस्ती और आम आदमी के सपनों के टूटने का दर्द व्यक्त किया है—

''ये सारे इंसान लूटे हैं,
इनके सब अरमान लूटे हैं
इनके सपने टूट गये हैं,
साथी पीछे छूट गये हैं
ऐसे हाल हुए हैं इनके,
जैसे हों तूफान में तिनके
हाय! सियासत कितनी गन्दी,
बुरी है कितनी फिरकाबंदी।।''
—(फिल्म : अमर रहे ये प्यार, 1961)

साठ के दशक में उपजे राष्ट्रव्यापी मोहभंग का इससे बेहतर अंकन और क्या हो सकता है! मानवता की रक्षा हो, इंसान-इंसान में भाईचारा बने, सभी को बराबरी का हक मिले यही कवि प्रदीप की मूल आकांक्षा है। इसके लिए वे सूर्य तक को आदेश देने में नहीं हिचकिचाते—

''जगत भर की रोशनी के लिए
करोड़ों की जिन्दगी के लिए
सूरज रे जलते रहना।''
—(फिल्मः हरिश्चन्द्र तारामती, 1963)

अपने भक्ति-भजनों एवं गीतों में भी प्रदीप ने हमेशा मानवता के कल्याण और इंसानियत की रक्षा की बात की है। अपने लिए नहीं हमेशा दूसरों के लिए प्रभु से याचना की है—

''मैं अपने लिए कुछ न माँगू रे मितवा,
मैं तो माँगू इन दुखियों के लिए
आ बादल बनके बरस जा रे बन्धु
इन उदास अँखियों के लिए।''
—(फिल्म : कृष्ण-सुदामा, 1979)

मानवता के पक्ष में खड़े कवि में समाजवादी चेतना का होना स्वाभाविक है क्योंकि मानवता की केन्द्रीय धुरी है बराबरी अथवा समानता का भाव। समानता का भाव ही वास्तव में समाजवादी चेतना है—इस अर्थ में कवि प्रदीप के गीतों का एक बड़ा भाग समाजवादी चेतना से संचालित है। आर्थिक गैर-बराबरी से देश में उपजे अमीर गरीब की खाई उन्हें खटकती है। एक गीत में वे लिखते हैं—

''मिलते हैं किसी को बिन माँगे ही मोती।
कोई माँगे लेकिन भीख नसीब नहीं होती।।
××× ××× ×××
कुछ किस्मत वाले सुख में अमरित पीते।
कुछ दिल पर रखकर पत्थर जीवन जीते।।''
—(फिल्म : सम्बंध, 1969)

इन पंक्तियों से गुजरते हुए हमें अनायास दिनकर की पंक्तियाँ याद आ जाती हैं—

''श्वानों को मिलता दूध भात,
भूखे बच्चे चिल्लाते हैं।
माँ की छाती से चिपक-चिपक
जाड़े की रात बिताते हैं।।''

क्या इस स्तर पर दिनकर और प्रदीप एक समान भूमि पर खड़े नजर नहीं आते?

कवि प्रदीप यहीं नहीं रुकते। वे मजदूरों की एकता और मजदूर श्रम की महत्ता को भी अपना स्वर देते हैं और कवि नागार्जुन की तरह घोषणा करते हैं–

''जग में कभी मजदूर ने बाजी नहीं हारी।
हरगिज न रुकेगी, अब हड़ताल हमारी।।''
–(फिल्मः पैगाम, 1969)

किसान और भगवान दोनों को एक धरातल पर लाकर खड़ा कर उन्होंने समाजवादी भाव-चेतना को एक नई भंगिमा दी है। किसान का पक्ष लेने वाले मूर्धन्य कवियों, आलोचकों और नीति-निर्माताओं को इन पंक्तियों को गौर से पढ़ने और सुनने की जरूरत है–

''क्या किसान और क्या भगवान,
अपनी जगह दोनों है महान
इन दोनों पर टिका जहान,
अपनी जगह दोनों हैं महान
खेतपती और जगतपती का
बड़ा अनोखा नाता
एक अन्नदाता धरती का
और एक है निर्माता
एक भक्ति एक है शक्ति,
दोनों ही बलवान रे भाई
क्या किसान और क्या भगवान।
–(फिल्मः किसान और भगवान, 1974)

सामाजिक आर्थिक विषमता से उत्पन्न समस्याओं का जिक्र उनके कई गीतों में मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त है। भक्ति-फिल्म 'शंकर-सीता-अनसूया' में उन्होंने तत्कालीन समाज का चित्रण करते हुए लिखा है–

''हमने जग की अजब तस्वीर देखी,
एक हँसता है दस रोते हैं।
गगग गगग गगग
हमें हँसते मुखड़े चार मिले,
दुखियारे चेहरे हजार मिले।
××× ××× ×××
यहाँ सुख से सौ-गुनी पीर देखी,
एक हँसता है, दस रोते हैं।
हमने जग की अजब तस्वीर देखी,
एक हँसता है दस रोते हैं।''
–(फिल्मः शंकर-सीता-अनसूया, 1965)

कहा जा सकता है कि देशभक्ति के गीतों के गीतकार के रूप में प्रसिद्ध कवि प्रदीप मूलतः मानवतावादी और समाजवादी चेतना से संचालित रचनाकार हैं। समाजवादी प्रगतिशीलता के कारण दिनकर, मुक्तिबोध, अज्ञेय, नागार्जुन आदि कवियों के समान ही इनके गीतों में साधारण मनुष्य की आशा, आकांक्षा, संघर्ष और मानवीय संवेदनाएँ साँस ले रही हैं।

तब क्यों न इनके गीतों का पुनर्पाठ और पुनर्मूल्यांकन किया जाए? क्यों न इनके गीतों का संकलन कर उन्हें साहित्यिक कृति के रूप में स्वीकृति मिले? क्या उनके लिखे इन पंक्तियों में वर्तमान समस्याओं का समाधान नहीं मिलता? पढ़ें, सोचें फिर प्रदीप के शब्दों में साथ कहें–

''आओ बहन-भाई, आज घड़ी आई
हटा दो हर बुराई, करो करो भलाई
हर बुरई मुर्दाबाद, मुर्दाबाद, मुर्दाबाद
हर भलाई जिन्दाबाद।''
–(फिल्मः स्कूल मास्टर, 1959)

बी-64, द्वितीय तल, गली नं. 1, मजलिस पार्क,
आदर्श नगर, दिल्ली-110033

महादेवी वर्मा का परिचयात्मक साहित्यिक विमर्श

सीताराम पाण्डेय

साहित्याचार्य, एम.ए. (संस्कृत), अवकाश प्राप्त अध्यापक, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड। कवि, कथाकार, समालोचक।

रहस्यवाद की उपासिका, वेदना की गायिका, पीर की पुजारिन, करुणा की देवी महादेवी ने अपने जीवन के संबंध में स्वयं कहा है—

''मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।''

आधुनिक मीरा के नाम से विख्यात महीयसी महादेवी वर्मा के बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व में संगीत, काव्य और चित्रकला की त्रिवेणी का संगम है। छायावाद के प्रतिष्ठापक और वर्तमान युग के कवि-आलोचकों में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है। महादेवी बीसवीं सदी के हिन्दी काव्य-साहित्य की संवेदनशील साहित्यकार हैं तथा छायावादी काव्य के प्रमुख स्तम्भों (पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला) में एक हैं।

छायावादी-युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। पारिवेशिक-स्थिति परिवर्तित हुई। जीवन में सूनापन अनुभव हुआ। छायावादी रहस्यमयी कवि स्वयं को पाने के लिए अपने अन्तर्मन में गहरे गोते लगाते रहे। अनुभूत लक्षणों की प्रतीकात्मक तथा लाक्षणिक शैली में अभिव्यक्त की जाने वाली छायावादी काव्यधारा अप्रतिहत रूप में चल पड़ी।

छायावाद, हिन्दी काव्य की वह पद्धति है, जो प्रथम विश्व युद्ध से लेकर द्वितीय विश्व महायुद्ध के पहले तक हिन्दी कविता में कायम रही। 'द्विवेदी युग' के बाद का युग ही हिन्दी-काव्य में छायावाद के नाम से पुकारा जाता है।

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में होता है—''एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद का पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य-क्षेत्र में चलने वाली भी महादेवी वर्मा हैं। पंत, प्रसाद, निराला आदि सब कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए।''

नामवर सिंह के अनुसार 'छायावाद' संबंधी सभी आलोचनाओं का उत्तर महादेवी जी को देना पड़ा, इसलिए उन्होंने बड़े विस्तार से छायावाद में प्रकृति, नारी-भावना, कल्पना, दुखवाद, स्थानुभूतिमयी अभिव्यक्ति, राष्ट्रीयता आदि का सोदाहरण विवेचन किया। कहना न होगा कि छायावाद संबंधी सभी का उच्छेद करने में महादेवी ने सभी छायावादी कवियों से अधिक काम किया।

मानवी के रूप में महादेवी वर्मा का इस धरा-धाम पर प्रथम पदार्पण उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में होली के पावन पर्व के अवसर पर मार्च, 1907 ई., तदनुसार संवत् 1864 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम 'गोविन्द प्रसाद वर्मा' तथा माता 'श्रीमती हेमन्ती देवी' थी। श्री वर्मा बिहार में ही प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। बाद में लखनऊ के महिला महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। महादेवी वर्मा के पति डॉ. रूपनारायण वर्मा पेशे से चिकित्सक थे।

महादेवी की प्रारंभिक शिक्षा अपने पारिवारिक वातावरण में ही प्राप्त हुई। माता जी के द्वारा सुनायी गयी रामायण और महाभारत की कहानियों ने इनमें साहित्यिक संस्कार का श्रीगणेश किया। इनमें बचपन से ही विलक्षण काव्य-प्रतिभा दृश्यमान थी।

इनका विद्यार्थी जीवन बड़ा ही उज्ज्वल रहा है। सन् 1921 में 'मिडिल' की परीक्षा पूरे प्रान्त में प्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण सरकार के द्वारा इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की गयी। मैट्रिक से लेकर एम.ए. तक की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करती रहीं। तभी तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम.ए. की परीक्षा में सर्वोच्च अंक के साथ उत्तीर्णता प्राप्त कर लीं।

महात्मा गाँधी के सुझाव पर 1954 ई. में महादेवी के द्वारा प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की गयी और उसके समुचित संचालन के लिए प्राचार्य पद पर श्री वर्मा को ही नियुक्त किया गया। 1960 ई. में महादेवी वर्मा उस पावन प्रतिष्ठान प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति चुनी गयी। तब से लगातार उस पद पर बनी रहीं।

उनमें काव्य के प्रति सहज-रुचि बाल्यावस्था से ही थी, उन्हें एक सरस हृदय मिला। यही कारण है कि काव्य-कला में उन्होंने जितनी कुशलता दिखाई, उतनी ही कुशलता चित्र-कला में भी। कभी-कभी तो लोगों के हृदय में द्वन्द्व पैदा हो जाता था कि इन्हें श्रेष्ठ कवयित्री कहूँ या चित्रकर्मी।

लगभग अट्ठारह-उन्नीस साल की छोटी उम्र से ही महादेवी काव्य-सर्जना में समाहित हो गयीं और कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। प्रयाग से निकलने वाली महिलोपयोगी पत्रिका 'चाँद' का संपादन बड़े मनोयोग और गहरी रुचि के साथ करती रहीं। हालांकि आजकल उस पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया है।

उनकी काव्य-रचनाएँ कालक्रमानुसार इस प्रकार हैं—'नीहार' (1930 ई.), 'रश्मि' (1932 ई.), 'नीरजा' (1935 ई.), 'सांध्य-गीत' (1936 ई.), 'यात्रा' (1940 ई.), 'दीपशिखा' (1942 ई.), 'सप्तपर्णा' (1949 ई.), 'हिमालय' (1952 ई.), 'परिक्रमा' (1954 ई.), 'संगिनी' (1965 ई.), 'नीलाम्बरा' (1973 ई.), 'प्रथम आयाम' (1974 ई.)।

'यात्रा' में उन्होंने विस्तृत भूमिका तथा कुछ चित्र भी दिये हैं, जो अमूल्य निधि हैं। 'यात्रा' की भूमिका उनके जीवन-दर्शन एवं काव्य को समझने में बहुत बड़ा आधार है।

रेखा चित्र—'अतीत के चलचित्र' (1941 ई.), 'स्मृति की रेखाएँ एवं श्रृंखला की कड़ियाँ' (1942 ई.), 'हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य' (1944 ई.), 'पथ के साथी' (1946 ई.), 'क्षणदा' (1956 ई.), 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' (1962 ई.), 'मेरा परिवार' (1972 ई.)।

निहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत, इन चारों पुस्तकों को एकत्र करके 'यामा' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। 'यामा' पुस्तक पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिल चुका है।

'सप्तपर्णा' संकलन में महाकवि कालिदास, भवभूति, अश्वघोष आदि संस्कृत महाकवियों की रचनाओं का हिन्दी में छायावाद और भावानुवाद भी प्रस्तुत किया है।

सन् 1954 ई. में महादेवी ने दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की सदस्या बनीं। उन्होंने प्रयाग में एक नाट्य-संस्था, रंग-वाणी की स्थापना भी की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या भी चुनी गयीं।

अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के कारण वे समय-समय पर साहित्यिक संस्थाओं एवं सरकार द्वारा अनेक पुरस्कारों-सम्मानों से सम्मानित होती रहीं। 'नीरजा' काव्य संग्रह पर 'सक्सेरिया' पुरस्कार, 'स्मृति की रेखाएँ' के लिए 'द्विवेदी पदक' और 'यात्रा' के लिए 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' से विभूषित किया गया। सन् 1956 ई. में महादेवी जी को सरकार के द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया। 1964 ई. में 'भारती-परिषद्' प्रयाग द्वारा 'भारत-भारती' पुरस्कार और भारत के सर्वोच्च ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

प्रत्येक मनुष्य इस धरा-धाम पर अवतीर्णोपरान्त आत्मीयता, सरसता और आनन्द का अनुभव करना चाहता है। स्नेह, प्रेम, अपनत्व आदि के स्पर्श से मानव फूला नहीं समाता। किन्तु, दुर्भाग्यवश महादेवी के शारीरिक-सौंदर्य के अभाव में इनके दाम्पत्य जीवन में दरार पड़ गयी और प्रियतम की विरह-वेदना ने उनके काव्य में करुणा उत्पन्न कर दी। वही आगे चलकर आध्यात्मिक-वेदना में परिणत हो गयी।

महादेवी जी को भगवान बुद्ध की पीड़ा तथा विचारों की प्रवाहित होती हुई एक ऐसी धारा मिल गयी, जिसमें अवगाहन करके जीवन की गति बदल गयी। इस विषय में उनका स्वयं का कहना है—''बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्त का अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुखात्मक समझने वाली दार्शनिक सोच से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।''

महादेवी का सम्पूर्ण काव्य प्रणय काव्य के रूप में परिदृश्य है। महादेवी का प्रियतम सगुन-साकार नहीं, वह तो निर्गुण-निराकार है। किन्तु, साधना और भावना के सामंजस्य से वह अनुभूति का विषय बन गया है। उन्होंने परा विद्या की अपार्थिवत्ता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की। लौकिक-प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँकर एक निराले स्नेह की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को अवलम्बन दे सका। उसे पार्थिव-प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कय बना सका।

महादेवी वर्मा छायावादी पद्धति पर आधुनिक रहस्यवाद की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं। उन्हें विरह में ही सुख मिलता है। महादेवी चाहती हैं उनके जीवन में मिलन न हो। मिलन में तो स्वार्थ है। यह सुख क्षणिक है और क्षण में समाप्त हो जाने वाला है। विरह का अन्त इतनी शीघ्रता से नहीं होता। मनोविज्ञान का कहना है कि विरह में सुख की प्राप्ति असामान्य है। यद्यपि पीड़ा को ही आनन्द जानना सामान्य नहीं है—इस बात को स्वीकार करने में हमें भी यह मानना पड़ेगा कि महादेवी असमान्य हैं।

महादेवी ने यात्रा की भूमिका में लिखा है कि ''दुख जीवन का ऐसा महाकाव्य है, जो हमें एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।'' मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, लेकिन दुख को बाँटकर, ''किसी प्रकार का दुख क्यों नहीं, उस समय हमारा हृदय दूसरों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।''

दुखवाद, छायावाद की प्रमुख विशेषता है। ''संसार में कोई सुख नहीं है।'' यह कथन अक्षरशः सत्य है। दुख के संबंध में महादेवी जी ने स्वयं कहा है—''हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की सीढ़ी तक न पहुँचा सकें किन्तु, हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।''

दुख महादेवी के काव्य में आकाश-सा छाया हुआ है। प्रसाद के काव्य में आँसू के साथ आनन्द की भी कल्पना है। लेकिन महादेवी के काव्य में आँसू, आँसू और केवल आँसू हैं।

रहस्यवाद की परिभाषा बड़ी जटिल है और उसे दो-चार पंक्तियों में बाँधना और भी कठिन है। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार—''रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रकृति का प्रकरण है, जिसमें दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहता है और वह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता...? ''वस्तुतः रहस्यवाद आत्मा की परमात्मा के लिए साहित्यिक अभिव्यक्ति है।''

आरम्भ में आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही थे। बाद में परमात्मा ने अपने ही से आत्मा की सृष्टि की। ऐसी रहस्यवादियों की कल्पना है। शरीर धारण करने के बाद जीव परमात्मा को भुला देता है। बाद में किसी गुरु की कृपा से फिर परमात्मा के लिए विरह उत्पन्न होता है। सूक्ष्मी मतवाले ऐसा मानते हैं। रहस्यवादियों में प्रमुख कबीर ने बार-बार इसी कारण अपने गुरु को महत्व दिया है—

''गुरु गोबिन्द दोउ खड़े,
काको लागू पाँव।
धन्य है रे गुरु आपनो,
जिन गोबिंद दियो बताए।''

इसी प्रकार सूक्ष्मी कवि जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में गुरु को काफी महत्व दिया है। 'पद्मावती' ही वहाँ ईश्वर का प्रतीक है और 'रतन सेन' को पद्मावती के सौन्दर्य से अवगत कराता है। जिसे प्राप्त करने के लिए 'रतन सेन' सिंहलद्वीप की यात्रा प्रारम्भ करता है। 'नागमणी' माया है, जो गुरु रूपी 'तोता' को मार डालना चाहती है, जिससे जीवन रूपी रतन सेन को 'पद्मावती' रूपी ईश्वर का पता ही न चल सके।

महादेवी रहस्यवादी हैं या नहीं, उसके संबंध में सभी आलोचक एक मत नहीं हैं। रामचन्द्र शुक्ल, विश्वम्भर 'मानव', लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' जैसे आलोचक इन्हें रहस्यवादी मानते हैं तो रामविलास शर्मा, 'प्रभाकर' जैसे आलोचक रहस्यवादी मानने से इनकार करते हैं। डॉ. नगेन्द्र की स्थिति बीच की है।

विचारणीय यह है कि इस विरोधी आलोक में कवयित्री को किस श्रेणी में रखा जाए।

कबीर रहस्यवादी थे। इस बात पर सभी आलोचक एक मत इसलिए हैं कि कबीर वास्तव में घूम-घूम कर पूरे भारतवर्ष में अपने मत की प्रतिष्ठा करते थे। महादेवी को रहस्यवादी स्वीकार करने में हिचकिचाहट इसलिए होती है कि वे गार्हस्थ जीवन से अलग नहीं हुई हैं। मगर यह कारण भी उचित नहीं, क्योंकि कबीर या जायसी ने भी तो पूर्ण रूप से गार्हस्थ धर्म का परित्याग नहीं किया था।

कहा जाता है कि महादेवी रहस्यवाद का एक आवरण है। इनका जो असफल प्रेम है, वहाँ रहस्यवाद की चादर ओढ़कर आता है। क्योंकि भारतीय रमणियाँ अपने प्रेम को खुलकर व्यक्त नहीं कर सकती? अतः महादेवी भी लाज, संस्कृति, संस्कृति, परम्परा और मर्यादा के महल में रहकर अपने प्रियतम के प्रेम को परवान चढ़ाना चाहती हैं। एक कवयित्री तो और भी खुल नहीं सकती...? तभी तो अपने आराध्य प्रियतम को लोक-लाज के भय से अंधकार में आने का आमंत्रण देती हैं—

''ये नभ की दीपावलियाँ,
क्षण भर को बुझ जाना।
मेरे प्रियतम को भाता है,
अंधकार में आना।।''

परन्तु, आत्मा को हर तरह से परमात्मा के प्रति प्रेम, जिज्ञासा आदि प्रकट करने की छूट है। महादेवी जी ने ऐसा ही किया है और पग-पग पर उन्होंने परमात्मा का संकेत किया है।

''क्या पूजा, क्या अर्चन रे
उस असीम का सुन्दर मन्दिर,
मेरा लघुतम जीवन रे।
गगग गगग गगग
प्रिय चिरन्तन है सजनी,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं
वह रहे अराध्य चिन्मय,
तृणमयी अनुरागिनी मैं।''

जिज्ञासा और कौतूहल रहस्यवाद का पहला चरण है। इस स्थिति में जीवन को एक अलय का संकेत मिलता है। इसी समय सर्वात्वाही-भावना का जन्म होता है। कबीर ने भी कहा है—

''लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।''

प्रसाद की 'कामायिनी' की प्रारंभिक पंक्तियाँ ही हैं—

''ऊपर हिम था नीचे जल था,
एक तरल था एक सघन
एकतत्त्व की ही प्रधानता,
कहो इसे जड़ या चेतन।''

निहार में संकलित रचनाओं में इसका संकेत मिलता है। अलौकिक का संजीत-स्वर उन्हें सुनाई पड़ता है—

''जब कपोल गुलाल पर शिशुपालके
सुखते नक्षत्र के जल बिन्दु से
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हंसते मोतियों का अर्ध्य दें।''

महादेवी ने कहा भी है कि—'' 'निहार' के रचनाकार में मेरी अनुभूतियों में बड़ी ही कौतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी। जैसे बालक के मन में दूर दिखाई पड़ने वाला अप्राप्य सुनहला उषा और स्पर्श से सुदूर-सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।''

महादेवी की प्रेम पिपासु आत्मा अपने प्रियतम के आने की प्रतीक्षा में पलक-पाँवरे बिछाए अपलक दृष्टि से आगमन पथ पर निहार रही है। किन्तु, वह निष्ठुर-नासक अपनी प्रेयसि को विरह में तरपते देख आने में विलम्ब कर उसके मन में बेचैनी पैदा कर रहा है—

''प्रियतम तुम आ जाते एक बार,
कितनी करुणा, कितना संदेश
पथ पर बिछ जाते बन पराग,
यदि तुम आ जाते गर एक बार।''

इस प्रकार की जिज्ञासा, कौतूहल उत्पन्न होने के बाद आत्मा-परमात्मा के साथ कोई न कोई संबंध अवश्य बना लेती है। ब्रह्म के लिए जीव को जो तरपनें होती हैं, उसका एक आध्यात्मिक पक्ष है। महादेवी मानती हैं कि जीवन ग्रहण करने के बाद से ही वह वियोग और तरपन प्रारम्भ हो जाते हैं—

''विरह का जलजात जीवन,
    विरह का जलजात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात
जीवन-विरह का जलजात।''

कवयित्री घोर निराशा के क्षणों में रहस्यवाद की ओर उन्मुख हो उठती हैं। विरह-व्यथिता कवयित्री को प्रकाश से अधिक अंधकार अच्छा लगता है। एकान्त, शान्त जीवन उन्हें अत्यधिक पसंद है। उनकी आत्मा सूनेपन में समाविष्ट होना चाहती है। चाहे वह सूनेपन व्यष्टिगत हो या समष्टिगत—

''अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों के दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।''

'नीरजा' से उद्धृत महादेवी जी की सर्वाधिक चर्चित कविताओं में 'दीपक' का विशिष्ट स्थान है। यह प्रतीकात्मक कविता है। इस कविता में कवयित्री ने ईश्वरावतरण अथवा प्रभु मिलन के लिए उनकी उत्कट विरहानुभूति को परमावश्यक बताया है। देहाभिमान और आत्माभिमान के विसर्जन से ही आत्मा का उन्नयन होता है। जिस गति से वह विसर्जित किया जाता है, उसी गति से परमात्मा जीवों के समीप से समीपतर आते-जाते हैं—

''मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण-प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल।''

दीपक को अपनी आत्मा की प्रतीक मानकर कवयित्री इस कविता मे अपनी साधनारत आत्मा को समझा रही हैं। वे कहती हैं कि—हे मेरे आत्मा रूपी दीपक, तू प्रेममय होकर ईश्वर की विरहानुभूति कर। तेरा यह जलना सांसारिक दीपकों के जलने और बुझने की तरह अल्पकालिक नहीं है।

प्रभु के विरह में जलने की यह क्रिया युग-युग तक प्रतिक्षण चलती रहती है। इस विरहानुभूति में तुझे अपने सब प्रकार के अभिमानों की आहूति दे देनी होगी। तेरी यह विरहानुभूति और उससे उत्पन्न तेरे रूप की दिव्यता तेरे लिए ही नहीं, अपितु सारे संसार के लिए मंगलमय होगी। इसलिए तू प्रसन्न मन से निरन्तर जलता जा। महादेवी की इस विरह वेदना में प्रभु-मिलन की आकुलता अन्तर्बद्ध है।

'मेरा जीवन' शीर्षक कविता कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन के अनुभूत क्षणों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। जिसमें महादेवी ने जीवन की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला तथा निम्नलिखित कविताओं में इसकी पुष्टि भी की है—

''ये मुस्काते फूल नहीं,
    जिनको आता है मुरझाना
ये तारों के दीप नहीं,
    जिनको आता है बुझ जाना
वे नीलम के मेघ नहीं,
    जिसकी है धुल जाने की चाह
वे अनन्त ऋतुराज नहीं,
    जिसने देखी जाने की राह।

The Human life is more buble The moment it is the nest moment it is not.

कवयित्री कहती है कि यह संसार माया और मोह का है और मानवों की संगति क्षण-भंगुर है। यहाँ काँटों में बन्धुत्व है और फूलों में वैमनसत्व। अतः मिलन को बिछुड़न में संयोग को वियोग में परिणत कर देना, सृष्टि का व्यतिक्रम है।

Sweet day so cool
    so elem so bright
The nidden of the earth and sky
The dew shall weep
    thy foll to night
for thou most die — herbert

''विकसते मुरझाने को फूल,
    उदय होता छिपने को चंद

शून्य होने को भरते मेघ,
दीप जलता होने को मंद
यहाँ किसका अनन्त यौवन,
अरे! अस्थिर छोटे जीवन।''

भाव प्रणवत्ता तथा अन्तःस्फूर्ति महादेवी की विशेषता है—

''मोम-सा तन धुल चुका
अब दीप-सा मन जल चुका है।''

वह खुद भी नहीं जानती कि जिस अपरिचित अदृश्य बिंब के विरह में तड़पती है, वह कौन है? प्यारी आँखों में कौन समा गया है तथा कौन उनके हृदय में निवास कर गया है? वह अपनी कसक को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देती हैं—

''कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़-घिर झड़ता अपरिचित।
स्वर्ण सपनों का चितेरा
नींद के सूने विलय में
कौन तुम मेरे हृदय में?''

'नीहार' को अद्योपान्त पढ़ जाने पर ऐसा अनुभव होता है कि कवयित्री की आत्मा को अपने प्रियतम से प्रभूत वियोग हुआ है। अपने आँसू के माध्यम से करुण-कथा को उजागर करते हुए महादेवी कहती हैं—

''तब बुझते तारों में नीरव
नयनों का यह हाहाकार
आँसू से लिख-लिख देता है
कितना अस्थिर है संसार।''

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है—''उनकी वेदना प्राकृतिक झरने की तरह अविरल है जिसमें जल-स्रोत की तरह अखण्ड गति है। उसमें भाषा की सजीवता तथा कोमलकान्त पदावलि की प्रांजलता आदि सभी कुछ भावपूर्ण सुगेय काव्य की गरिमा के अनुरूप है।''

गीत-विधा में भी महादेवी जी का स्थान सर्वोपरि है। उनका सम्पूर्ण काव्य गेय है। इनकी कविता में प्रेम की पीर और भावों की तीव्रता होने के कारण भाव, भाषा, संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। महादेवी के गीतों की वेदना प्रणयानुभूति, करुणा और रहस्यवाद काव्यानुभूतियों को आकर्षित करती है।

डॉ. नगेन्द्र ने इनके गीतों की प्रशंसा करते हुए लिखा है—''प्रचलित लोकगीतों की ध्वनि, गति, लय में अमूल्य काव्य-सामग्री भरकर महादेवी जी ने खड़ी बोली की कविता को 'गीत' के माध्यम से अमर कर दिया है। उनका गीति-काव्य स्वतः स्फूर्त है। वह उनकी गहन अनुभूतियों का निर्झर है जो मोहक है। वेदना, करुणा, आशा, निराशा की सच्ची अनुभूतियों की निश्चल रूप से 'गीतों' में की गयी अभिव्यक्ति से पाठक भाव-विभोर हुए बिना नहीं रहता है।

महादेवी जी ने कहीं प्रेम की, विरह की, कहीं सौंदर्य की और कहीं करुणा की अनुभूतियों को गीति-काव्य के रूप में व्यक्त किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी वेदना और अनुभूतियों की सच्चाई पर प्रश्नचिन्ह लगाया है, तो दूसरी ओर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके सम्पूर्ण काव्य को समष्टिपरक माना है।

महादेवी एक कवयित्री होने के साथ-साथ एक गंभीर समालोचक एवं गद्य लेखिका भी हैं। सच तो यह है कि गद्य के क्षेत्र में महादेवी जी की देन न्यून नहीं कही जा सकती, वरन् जिस तन्मयता से उन्होंने कविता की सर्जना की है, उससे भी अधिक सामर्थ्य के साथ गद्य लिखने में सफलता प्राप्त की है। इनकी विशेषता यह है कि उन्होंने गद्य में भी अपने जीवन के कड़वे तथा मीठे अनुभवों की अभिव्यक्ति बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ की है। परिणामतः इनकी गद्य कृतियाँ संस्मरण और रेखाचित्र तो हैं ही, किन्तु वे किसी भी कहानी तथा उपन्यास से कम रोचक तथा आकर्षक नहीं हैं।

गद्य-साहित्य पर उनके जैसा स्वामित्व किसी कवि या कवयित्री का नहीं दिखाई पड़ता। अंग्रेजी के महाकवि 'मिल्टन' को गद्यकार के रूप में और 'टॉमस हार्डी' को कवि के रूप में बहुत कम लोग जानते हैं। ठीक उसी प्रकार हिन्दी-साहित्य में महादेवी वर्मा को कवि के रूप में जितने लोग जानते हैं, उतने उन्हें गद्यकार के रूप में नहीं जानते।

महादेवी जी का गद्य अपनी कोटि आप बनाता है। उनका गद्य उनके काव्य का पूरक है। गद्य में उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से हुई है और काव्य में परोक्ष रूप से। गद्य में ये प्रखर हैं और काव्य में प्रच्छन्न तथा अस्पष्ट। इस अस्पष्टता का परिणाम यह हुआ कि इनके काव्य पर रहस्य का वातावरण पड़ गया और इनके मूल में सामाजिक चेतना की उपेक्षा की गयी है।

महादेवी के काव्य को समझने के लिए उनके गद्य साहित्य को भी पढ़ना आवश्यक होगा। इनके काव्य में जिस प्रतीक पद्धति का उपयोग हुआ है, उसे स्पष्ट करने के लिए उनका गद्य साहित्य सहायक हो सकता है।

'शृंखला की कड़ियाँ' महादेवी जी के विवेचना प्रधान निबन्धों का संग्रह है। शीर्षक के नीचे एक उप-शीर्षक देकर लेखिका ने स्पष्टीकरण के रूप में कहा है कि इस पुस्तक में भारतीय नारी की समस्याओं का विशद् विवेचन किया गया है।

आज के समाज में नारी की दशा क्या है, इसका मार्मिक विवेचन इस पुस्तक में परिदृश्य है और यह पुस्तक 'जन्म से अभिशप्त', जीवन में संतप्त, किन्तु अक्षय वात्सल्य-वरदानमयी भारतीय नारी को भेंट की गयी है। क्योंकि इस

पुस्तक में जो कुछ है, सब उसी से संबंधित है।

महादेवी ने नारी समाज का जो चित्रण किया है, वह आज के परिवेश में बिल्कुल सत्य साबित होता है। उन्होंने वकील बनकर नारी-समाज की कोई वकालत नहीं की है। उसकी समस्याओं को उभारने का एक ही उद्देश्य है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों को समझें और प्रेम से मिल-जुलकर इस देश के उत्थान में हाथ बढ़ाएं।

महादेवी के गद्य साहित्य में उनकी कविता की तरह स्थान-स्थान पर इनकी चिन्तनशीलता, देशानुराग, व्यापक मानवीयता अनुभूति और मार्मिकता के दर्शन होते हैं। उनका सहज, संवेदनशील, संघर्षमय जीवन इनके गद्य साहित्य में वाणी का वर्चस्व लेकर प्रतिध्वनित होता है।

वस्तुतः महादेवी का गद्य, कविता की तरह सौन्दर्य के भुलावे में डालकर हमें जीवन से दूर नहीं ले जाता। वह तो हमारी शिराओं में चेतना भरकर हमें यथार्थ जीवन में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्रदान करता है। यह साधना और व्यामोह नहीं है। जीवन के परस्पर पूरक चित्र है। आत्मा का सत्य, शब्द-शब्द, पंक्ति-पंक्ति में सजीव होकर हमारे सन्मुख उपस्थित हो जाता है। यह विस्मयकारी तथ्य है कि रहस्यवादी महादेवी के गद्य साहित्य में इतनी सामाजिकता और इतनी यथार्थपरकता है। इनके गद्य में करुणा, संगीत, चित्रात्मकता, प्रवाह, भावना, चिन्तन, तर्क आदि सभी चीजों का समावेश है।

महादेवी के प्रेम-भाव में मांसलता या वासना का स्पर्श नहीं है। उनका प्रेम विशुद्ध आत्मा का संगीत है। उनका भाव-सौंदर्य अनुपम है। योगी जिसे योग से, भक्त जिसे भक्ति से और दार्शनिक जिसे दर्शन से प्राप्त करता है, महादेवी ने उसे भाव-समर्पण से प्राप्त किया है।

हिन्दी साहित्याकाश की ज्योतिर्मय नक्षत्र, व्यक्तित्व एवं कवित्व की सारस्वत प्रतिमान कवयित्री महादेवी वर्मा का 11 सितम्बर, 1987 ई. में महाप्रयाण हो गया।

रामबाग चौरी, पो.-रमणा,
जिला-मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)

मानवता के प्रेरणास्रोत : महामानव संत कबीर

डॉ. सुरेश उजाला

'उत्तर प्रदेश' मासिक और 'उत्तर प्रदेश संदेश' के संपादक, सम्प्रति उपनिदेशक सूचना-विभाग (फैजाबाद), विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। दूरदर्शन (फैजाबाद और लखनऊ) केन्द्रों से रचनाएँ प्रसारित। कवि सम्मेलनों में भागीदारी। अंग्रेजी, उर्दू, तमिल एवं पंजाबी भाषा में कविताएँ अनूदित। इन पर दो लघु-शोध-प्रबंध भी लिखे गए हैं।

भारतीय इतिहास में पंद्रहवीं शताब्दी का विशेष महत्व है। इस काल में वर्ण, समाज और धर्म-भेद की पृथक-पृथक परम्पराएं चल रही थीं। अन्धविश्वास, कुप्रथाएं, ढोंग-पाखण्ड, मत-मतान्तर और छुआछूत ने समाज का वातावरण बिलकुल पंगु बना दिया था। ऐसे वक्त में महामानव कबीर का जन्म काशी नगरी (वाराणसी) में हुआ। संत कबीर की प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं है। कबीरपंथियों में प्रचलित दोहे के आधार पर यह सिद्ध किया गया है—''चौदह सौ पचपन साल गिरा, चन्दु एक ठाठ गए। जेठ सुदी बई सायत को पूरनवासी तिथि भए।''

संत कबीर अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने भारतीय साहित्य समाज को पूर्णरूपेण नया और मौलिक चिन्तन दिया। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संत कबीर की उच्चता को विनम्रता कहा है। सन्त कबीर हिन्दू-मुस्लिम एकता के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव जाति के प्रेरणास्रोत थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में संत कबीर जागरण युग के महामानव माने जाते हैं। संत कबीर ने संप्रदाय, जाति-धर्म जैसी विषमताओं को महत्व नहीं दिया अपितु उन्होंने मानवता को सर्वोत्तम माना। उनकी आवाज शोषण, गरीबी तथा असमानता से त्रस्त मानव की आवाज थी। उन्होंने हिंसा को घोर पाप बताया हिंसक व्यक्ति कभी भी पापमुक्त नहीं हो सकता चाहे वह करोड़ हीरे दान क्यों न करे। पुराणों का श्रवण क्यों ना करे? सन्त कबीर कथनी-करनी को एकाकार करते हुए, हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, जैन, ईसाई, और बौद्ध समाज को भाईचारे की शिक्षा देता है। संत कबीर का बाल्यकाल एक साधारण परिवार जुलाहे के घर में बीता था। अतएव समकालीन असामाजिक विचारधारा अर्थात् जाति अभिमान रखने वाले लोगों ने उन्हें समाज में अच्छा स्थान प्राप्त नहीं करने दिया। उन्हें अछूत की संज्ञा देकर अपमानित और तिरस्कृत किया। यही कारण था कि संत कबीर ने बाल्यकाल से ही इन शक्तियों से लोहा लेना प्रारम्भ कर दिया तथा मानव जाति को सही मार्ग पर लाने का संकल्प लिया। तत्कालीन उन सामाजिक परिस्थितियों में ऐसे कार्य को करना मामूली खेल नहीं था, लेकिन संत कबीर ने निडर होकर संघर्ष किया और अपनी बातों को मनवाया। उन्होंने कहा कि ''सूरा सो पहिचानी ऐ जु, लरै दीन के हेत। पूरजा-पुरजा कटि मरै, कबहू न छाड़ै खेतु।'' संत कबीर ने मानवतावाद की नींव को मजबूत करने के लिए अनेक सफल प्रयास किये। उन्होंने मानव-उत्पत्ति के वैज्ञानिक आधार को एक सूत्र में पिरोने का शुभारम्भ किया—इतना ही नहीं इसी विषयक उन्होंने कहा है कि—''कबीरा कुआँ एक है, पानी भरे अनेक। भांडे ही में भेद है, पानी सब में एक।''

संत कबीर की उग्रता कटुसत्य पर आधारित थी, जिसे सुनकर लोग तिलमिला जाते थे। छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, छुआछूत का विधान किस धर्म ने बनाया, इसे उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। स्वर्ग-नरक, काशी-मगहर की मृत्यु भावना उनकी समझ से बाहर थी। वे न तो इस्लाम से प्रभावित थे और न ही किसी अन्य धर्म का विरोध करते थे। वे सदैव असत्य के विरोधी रहे। यही वजह थी कि सन्त कबीर ने स्वर्ग और नरक की महिमामंडित कल्पना को तोड़ने के लिए वृद्धावस्था में मगहर का आश्रय लिया और कहा कि—''अनजाने को स्वर्ग-नरक है, हरि जाने को नाहीं।'' ''जो काशी तन तजै शरीरा, रामहि कौन निहोरा।'' ''आत्मज्ञान बिना नर भटकै, क्या मथुरा क्या काशी।'' संत कबीर का मानना था कि मानव स्वयं को जान लेता है, यह जान लेता है तो उसे दैविक, दैहिक एवं भौतिक तीनों प्रकार के दुःख भी दुःखी नहीं कर सकते क्योंकि ये कष्ट तन के हैं। इस विषय में संत कबीर ने कहा है कि—''आपा जानि उलटि ले आप, तो नहीं व्यापै तिन्यू ताप। अब मन उलटि सनातन हूवा तब हम जाना जीवत भूवा।

कहै कबीर सुख सहज समाऊँ, आप न डरौ न और डराऊँ।'' संत कबीर ने पुरोहितवादी रीति-रिवाजों को असत्य साबित करते हुए इस प्रकार कहा है कि—''निरधनु सरधनु दोनऊ भाई, प्रभु की कला न मेरी जाई, कह कबीर निरधन है सोई, जाके हिददै नामु न होई।'' कबीर का कहना था कि पूर्वजों के जीवन को केवल स्मरण करना पाखण्ड मात्र है। हमें अपने पूर्वजों की अच्छी बातों का अनुसरण और अनुहार करना चाहिए। जिससे आने वाली पीढ़ियाँ लाभान्वित हो सके। यही भावना पूर्वजों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मानव के लिए ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है, जिससे संसार के सभी कष्ट दूर होते हैं। इन्हीं बातों, इन्हीं रचनाओं के माध्यम से संत कबीर ने मानव को मानवता के प्रति समर्पित एवं दृढ़ करने की कोशिश की है। यथा—''कबीर जहाँ गिआनु तह धरमु है, जहाँ झूठ तह पाप। जहाँ लोभु तह कालु है, जहाँ खिमा तहा आपि।''

इस प्रकार भगवान बुद्ध के बाद भारत के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नयी चेतना का संचार करने वाले सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम संत कबीर हैं। संत कबीर व्यक्ति नहीं अपितु प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने जन साधारण की भाषा में जीवन जीने के लिए सूत्र सहज रूप में समझा दिये। मानव-मन को प्रत्येक प्रकार की संकीर्णता एवं भेदभाव से मुक्त किया। वे सच के खोजी तथा स्वतंत्र चिंतक थे। वे हिन्दू-मुस्लिक विचारधाराओं से अपने को मुक्त मानते थे। उनका कहना था—''पंडित मुल्ला जो लिख दिया, छाँड़ि चले हम कुछ न लिया।'' सामाजिक असमानता के शिकार निर्धनों-दलितों को आत्मिक शक्ति प्राप्त करने का मार्ग भी संत कबीर ने कर्म सिद्धान्त के दर्शन द्वारा समझाया। उन्होंने कहा कि जातियाँ केवल मानव द्वारा मानव के लिए बनाई गई हैं। यह जाति अभिमान रखने वाली शक्तियों का अमानवीय तंत्र है। जो हमारे राष्ट्र तथा मानव संसार को समय-समय पर नुकसान पहुँचता रहा है। संत कबीर ने समाज में फैले ऊँच-नीच जाति और धर्म भेद, असत्य भाषण, दंभ, कर्मकाण्ड, अनीति तथा अंधविश्वास को सद्विवेक से लड़ने का मार्ग प्रशस्त किया, कागज की लेखी से आँखन की देखी को अधिक महत्व दिया। उनका व्यक्तित्व क्रान्तिकारी था। उन्हें अपने सांसारिक अनुभव और ज्ञान पर पूरा विश्वास था। इसलिए उन्होंने पंडितों को ललकारते हुए कहा कि—''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।''

संत कबीर ने तीर्थाटन, मूर्ति पूजा, व्रत आदि रखने वालों को भी लताड़ा—''पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार, तातै तो चाकी भली, पीस खाय संसार।'' उन्होंने हिन्दुओं को ही नहीं मुसलमानों को भी दुतकारा—''काकर पाथर जौड़ि कै मस्जिद ली चिनवाय, जा चढ़ी मुल्ला बाग दे क्या बहरा भया खुदाय।'' माला जपना भी संत कबीर की दृष्टि में आडम्बर था। वे कहते हैं कि—''माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहि, मनुवा तो दुहूँ दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।'' संत कबीर एक सच्चे साधक थे। उन्होंने दुनिया के संघर्ष से पलायन का उपदेश कभी नहीं दिया। वे सदैव दुनिया में रहकर संघर्ष करने के पक्षधर थे। सच्चे कर्मयोगी होने के कारण वे युग-युग के गुरु थे। उन्होंने बुद्ध के सन्देश—''अपने दीपक आप बनो'' को जीवन में अंगीकार किया। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में नव-निर्माण का कार्य किया। युगदृष्टा होने के कारण उन्होंने अपने समय की समस्त गतिविधियों-कार्यकलापों पर पैनी दृष्टि रखी। वे आधुनिक युग के द्रष्टा और नियामक थे। वे विषमताओं का सम्पूर्ण जीवन खण्डन करते रहे और मानवता का प्रचार-प्रसार करते रहे। उन्होंने मानव समाज को सही मार्ग दिखाया—''एक पवन, एक पानी, एक जाति संसारा। एक ही खाक घड़े सब भाँडे, एक ही सिरजन हारा।''

संत कबीर का मूल सारत्व सामाजिक कुरीतियों, प्रथाओं, मान्यताओं, दुर्व्यवस्था के प्रति असंतोष की अभिव्यक्ति है। संत कबीर ने सभी धर्मों में व्याप्त कर्मकांडों और आडम्बरों की खुलकर भर्त्सना की है। वे धर्म में प्रचलित जप, तप, माला, तिलक, बाह्य वेश-भूषा इत्यादि को मात्र दिखावा मानते थे। उनका मानना था कि केश मुंडाने से कुछ नहीं होगा। आवश्यकता मन में व्याप्त विकारों को दूर करने की है। इस पर संत कबीर कहते हैं कि—''कैसो कहा बिगाड़िया, जो मुंडे सौ बार। मन को काहे न मुंडिए, जामै विषै विकार।''

संत कबीर का उद्देश्य मानव जाति का कल्याण था। वे हर वर्ग में व्याप्त कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे। कबीर की दृष्टि में हिन्दू-मुस्लिम-ब्राह्मण-शूद्र किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं था। उन्होंने प्रत्येक धर्म में फैली बुराइयों का खुलकर विरोध किया। कबीर के कड़े रुख के पीछे उनके मन में व्याप्त वेदना थी। वे सभी धर्मों में एकता की बात करते थे, जो उनका मानवतावादी दृष्टिकोण था। वे जानते थे कि मानव-जीवन सब का एक समान है। वे ऐसे भविष्य की कल्पना करते थे जो सभी प्रकार की विषमताओं से दूर हो। जिसका आधार उनका विश्वास और व्यक्तिगत अनुभव था। संत कबीर ने बहुत ही तर्कसंगत तरीके से मानवता के सही व सच्चे मार्ग को प्रशस्त किया, संत कबीर ने दलितों-पिछड़ों-उपेक्षितों को स्वयं की शांति, निष्ठा धैर्य के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक समृद्धि पुनः प्राप्त कराई। इस मार्ग को प्रशस्त करने में महर्षि वाल्मीकि, एकलव्य, सावित्रीबाई, रमाबाई, डॉ. भीमराव

अम्बेडकर, अहिल्याबाई होलकर, महाराजा बिजली पासी, संत गाडगे महाराज व कर्पूरी ठाकुर, डॉ. अँगने लाल आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संत कबीर ने मानव विकास के लिए मानव कल्याणकारी समन्वयवादी दृष्टि अपनाई। परम्परागत रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए उन्होंने भाईचारे को महत्व दिया। उनकी सम्पूर्ण साधना के मूल में मानवतावादी दृष्टिकोण था। उन्होंने मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा, व्यक्ति की गरिमा और बन्धुत्व पर बल दिया है। उन्होंने ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच की गहरी खाई को पाटकर, मानवतावादी दृष्टिकोण दिया। संत कबीर की भाषा के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि–''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है–बन गया है तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नहीं कर सके और अकही कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।

अत्यन्त सीधी भाषाओं से वे ऐसी गहरी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर देने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं पाता।''

इस आलेख को समाप्त करने से पूर्व बताना चाहूँगा कि भारतवर्ष में अनेकता में एकता का सूत्र महामानव संत कबीर के मार्ग पर ही निडर होकर संघर्ष कर रहा है। क्योंकि मानवतावाद वह नजरिया है, जिसमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा, व्यक्ति की गरिमा और बन्धुत्व का भाव केन्द्रित होता है। इसमें समाज सुधार के प्रति गहरी संवेदना, मानवेतर प्राणियों के प्रति कठोरता के निराकरण की चेष्टा और उनके परोपकार की भावना निहित होती है। संत कबीर का चिन्तन अच्छाइयों का गट्ठर है। संत कबीर ने आजीवन मानव-कल्याण के लिए कार्य किया। उनका महापरिनिर्वाण सम्वत् 1575 मगहर जनपद-संत कबीर नगर में हुआ। उनके अप्रतिम योगदान के लिए मानव समाज सदैव उनका ऋणी रहेगा।

108, तकरोही, पं. दीनदयालपुरम मार्ग,
इन्दिरा नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

हिन्दी यात्रा वृत्तांत में मोहन राकेश

डॉ. पराक्रम सिंह

एम.फिल., पीएच.डी. (हिन्दी), विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख (विशेषकर लोक साहित्य पर) प्रकाशित। अक्षर वार्ता (उज्जैन, उत्तर प्रदेश) का सह संपादन। सम्प्रति अतिथि प्रवक्ता के तौर पर अध्यापन।

सुप्रसिद्ध कथाकार, नाटककार, आलोचक, चिंतक और यायावर बचपन के राकेश बजरिए (मोहन राकेश) का जन्म वैष्णव परिवार में 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर में हुआ था। पिता जो पेशे से वकील होते हुए भी सिद्धांतप्रिय, अनुशासित, साहित्य-प्रेमी और सुरूचि सम्पन्न व्यक्ति थे। माता कुशल गृहिणी थी, जिसे वे अम्मा कहकर बुलाते थे। माँ के प्रति अत्यधिक स्नेह कहीं भी जाने-आने पर पाँव छूकर बाहर जाना और माँ द्वारा सदैव ही मदन नाम से पुकारे जाते थे तो राकेश साहित्य के प्रति अधिक आकर्षित होते गये। पढ़ने के लिए लाहौर जाकर जहाँ एक लड़की से प्रेम करने लगे वहीं दूसरी तरफ उसके कहने पर मांसाहारी भी बन गये। चटपटे, मसालेदार खाने के शौकीन राकेश मद्धम आँच पर पका खाना खाते थे। मनमौजी, चुनौतियों का डटकर सामना करने वाले राकेश के लिए यायावरी एक शौक था। दुनिया से लड़कर अपनी शर्तों पर जिंदगी जीने वाले राकेश साहित्यिक जगत् के लिए निरंतर चर्चा का विषय बनते रहे। जीवन भर शहर, नौकरियाँ, मकान, मोहल्ले और बीवियाँ बदलने वाले राकेश सिगरेट पीने के भी शौकीन रहे। उनके जीवन में तीन बीवियाँ आई, जिसमें नवनीत पहला पुत्र था, अनीता जो जीवन के अंतिम समय तक पत्नी के रूप में रही उससे पूर्वा और शैली दो बच्चे हुए। निजी जीवन में विभिन्न रूढ़ियों, मान्यताओं को न मानने वाले राकेश परम्पराओं को निभाने के बजाए बनाने में अधिक विश्वास करते थे। वे पहले नम्बर पर लेखन, दूसरे पर दोस्त और तीसरे पर अनीता को रखते थे, औपचारिकताओं से दूर रहने वाले राकेश अपने मरने के बाद श्राद्ध कर्म न करने के पक्षधर थे।

मोहन राकेश द्वारा लिखित आखिरी चट्टान तक यात्रा-वृत्तांत स्वातंत्र्योत्तर वृत्तांतों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक नई दृष्टि को लेकर लिखा गया इनका यह वृत्तांत गोवा से कन्याकुमारी तक पर आधारित है। यात्रा के दौरान राकेश अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रम को अधिक महत्व नहीं देते हैं, वे जहाँ उनका मन जितने समय के लिए रुकना चाहता है, वे रुकते हैं। नाट्य विधा के लेखक होने के नाते उनके वृत्तांत में अनेक निम्न मध्यवर्गीय पात्र यात्रा-वृत्तांत में जगह पाते जाते हैं। जिसमें जाति, धर्म, व्यवसाय का कोई भी बंधन उन्हें नहीं बांधता।

मोहन राकेश प्रकृति को बहुत रम्य तरीके से देखते हैं—''पीली रेत दूर-दूर तक फैली हुई नारियलों के घने झुण्ड और नंगी रेत इतनी आकर्षक लग रही थी कि मन हुआ उसे पास से देखने के लिए क्यों न वहीं कहीं उतर पडूँ? क्या पता आगे कहीं रेत उतनी पीली, उतनी चिकनी और उतनी एकांत मिलेगी या नहीं। जब गाड़ी तेल्लीचेरी स्टेशन पर रुकी तो मैंने बिना ज्यादा सोचे समझे अपना सामान गाड़ी से उतार लिया।''[1]

उपर्युक्त कथन से जहाँ उनके यात्रा के दौरान कहीं भी रुकने की जानकारी सामने आती है वहीं दूसरी तरफ प्रकृति की सुन्दरता देखने को मिलता है। राकेश अपने यात्रा-वृत्तांत में सर्जनात्मकता देने का प्रयास करते हैं। कल्पना और भौगोलिक प्रकृति का मनोरम चित्र उनके यात्रा-वृत्तांत में मिलता है। रेल से यात्रा कर रहे होते हैं उसका वर्णन दृष्टव्य है—''खिड़की के शीशे के उस तरफ से नारियलों के घने-घने झुरमुट निकलते जा रहे थे। जिधर मैं बैठा था, उधर नीचे घाटी थी। घाटी में उगे नारियलों के शिखर उस ऊँचाई तक उठे थे। जिस पर गाड़ी चल रही थी। लगता था जैसे गाड़ी जमीन

पर न चलकर उन शिखरों के ऊपर-ऊपर से गुजर रही हो। जहाँ घाटी कम गहरी होती वहाँ गाड़ी तनों के बराबर से गुजरती। फिर सहसा ऊँची जमीन आ जाने से शिखर आकाश में उठ जाते और गाड़ी उनकी जड़ों से भी नीचे चलती नजर आती।''[2]

राकेश महानगरों के उस जीवन चरित्र को उभारते हैं जहाँ केवल उदासी बेहद जल्दबाजी मानो ऊबते हुए जीवन से फिर भी उसे न छोड़ पाने की हताशा और प्रतिदिन खोज के लिए निकलते लोगों की खत्म होती सामाजिक मानवीय संवेदना को औपचारिकता से निभाने वाले जीवन को बम्बई में रह रहे उनके मित्र के माध्यम से देखते हैं—''मैं उसके दफ्तर में पहुँचा तो मुझे देखकर उसके चेहरे पर वैसा ही भाव आया जैसा रोज दिखाई देने वाले किसी चेहरे को देखकर आ सकता है। उसने सरसरी तौर पर मुझसे बैठने को कहा, बिना यह पूछे कि मैं कुछ पियूँगा या नहीं, नौकर से चाय लाने को कह दिया, और टेलीफोन पर सट्टा बाजार के भाव पूछता रहा।''[3]

राकेश के यात्रा-वृत्तांतों में यात्रा-स्थलों का सांस्कृतिक परिदृश्य उभरकर सामने आता है। मालाबार या मलमाली भाषा (केरल) क्षेत्र में रहते हुए वहाँ के प्रसिद्ध पर्व ओणम् विशु के बारे में बताते हैं। ओणम् राजा बली से संबंधित कथा, भगवान विष्णु के बामन अवतार दैत्यों के अधिपति और केरल के निवासियों में पाताल से वर्ष में एक बार आकर अपने प्रजा को समृद्ध करने के लिए आशीर्वाद से जुड़े पर्व के द्वारा संस्कृति और धर्म एक साथ देखने को मिलता है—'वैसे ओणम् फसल कटने का त्यौहार है, इस अवसर पर लोग नौ दिन तक घरों के आगे फूलों से तरह-तरह की सजवाट करते हैं। ओणम् के दिन घर के आँगन में महाबली की मिट्टी की मूर्ति स्थापित करके उसकी पूजा की जाती है। पप्पड़म् (पापड़) और केले से बनाए गए खाद्य पदार्थ ओणम् के दिन के विशेष पकवान हैं, विशु दूसरा त्यौहार है, अप्रैल-मई में पड़ता है। यह मलयालम संवत्सर के आरम्भ के दिन भेदम मास की पहली तारीख को मनाया जाता है। उससे पहले की रात को घर के बड़े कमरे में खनी (विभिन्न व्यंजन, जिनमें अलग हुआ चावल नहीं रहता) रखकर दिये जला दिये जाते हैं। सबेरे उठते ही घर के लोग खनी के दर्शन कर पूजा आदि करते हैं। उत्तर भारत के त्यौहारों में से है। दीवाली एक सीमित वर्ग में ही मनायी जाती है। होली और वसन्त वहाँ नहीं मनाये जाते हैं।''[4] इस प्रकार जहाँ राकेश ने यात्रा-वृत्तांतों के द्वारा दक्षिण भारत और उत्तर भारत के बीच धर्म और त्यौहारों के बताते हैं, वहीं दूसरी तरफ पुराने गोआ के एक गिरिजाघर के सामने उपेक्षित पड़ी मूर्तियों पर भी ध्यान दिलाते हैं—''एक गिरिजाघर के बाहर बहुत-सी हिन्दु देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बिखरी थीं। शायद उन्हें बेघर करके ही वह गिरिजाघर खड़ा किया गया था। मूर्ति या खानाबदोशों की तरह यहाँ-वहाँ पड़ी आसमान को ताक रही थीं। मैंने दो-एक उल्टी मूर्तियों को सीधा कर दिया और वहाँ से आगे बढ़ लिया।''[5] स्पष्ट है कि राकेश किसी भी धर्म को खत्म कर उसके स्थान पर दूसरे धर्म को खड़ा करने के पक्षधर नहीं हैं। सभी धर्मो के प्रति विश्वास समाज, संस्कृति और सभ्यता का जीवित परिचायक होता है।

मोहन राकेश अपने यात्रा-वृत्तांत को कम शब्दों में परिस्थितियों का विस्तृत परिचय करा देने की क्षमता रखते हैं। इस संदर्भ में दक्षिण भारत के एक मजदूर परिवार के हृदयस्पर्शी चित्रण द्वारा सामाजिक और आर्थिक स्थिति दृष्टव्य है—''पास ही तीन-चार अस्थिशेष बच्चे, जिनके सिर उनके शरीरों की अपेक्षा आनुपातिक रूप से बहुत बड़े थे, एक-दूसरे की ओर रोड़े फेंक रहे थे। कुछ हटकर एक स्त्री अपना सूखा स्तन एक शिशु के मुँह में दिए बैठी थी और बार-बार उसके गाल की सूखी त्वचा को चूम रही थी। यह उस परिवार की अपनी दोपहर थी—राष्ट्र की एक और सांस्कृतिक इकाई।''[6]

इसी प्रकार मोहन राकेश ने कोवलम (त्रिवेन्द्रपुरम) के पास यात्रा के दौरान बढ़ती महंगाई के कारण कई घरों के परिवार आधे पेट खाना खाते हैं, देश की आजादी का उनके लिए कोई महत्व नहीं है। राकेश ने वहाँ के बड़े-बड़े लोगों द्वारा छोटे तबके की लड़कियों का किस प्रकार उपयोग होता परिवार के यह सब जानते हुए भी मानवीय संवेदना इज्जत तब शून्य हो जाता है। जब प्रश्न भूख का हो—''गरीबी और बेकारी इतनी है कि कई घरों की लड़कियों को मजबूर होकर पेशा करना पड़ता है।'' मेरा साथी कर रहा था। ''दो वक्त खाने के लिए मर्चिनी तो किसी तरह मिलनी चाहिए। सरकारी तौर पर वेश्यावृत्ति पर प्रतिबंध है, पर सरकारी हल्के में ही उन लड़कियों की माँग सबसे ज्यादा है। वे रात को त्रिवेन्द्रम के होटलों में ले जायी जाती हैं। हम लोग आँखों से देखते हुए भी नहीं कह सकते। कहें तो उन्हें खाना-दाना कहाँ से लाकर दें?''[7] राकेश के लिए यह एक पल दक्षिण भारत नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के लिए यह समस्या हो सकता है।

मोहन राकेश के यात्रा-वृत्तांत में व्यंग्य का भाव कहीं-कहीं उनके भाषा में देखने को मिल जाता। अर्णाकुलम् से आम्बलम को जाते हैं तो मंदिर के बाहर मिले भिखारी का वर्णन जो अच्छा खासा पढ़ा लिखा, उसका यह कहना—''मैं बेकार हूँ और भूखा हूँ।'' वह वितृष्णा और कड़ुवाहट के साथ बोला फिर भी पढ़ा-लिखा आदमी कुछ न कुछ काम तो...। वह सहसा तिरस्कारपूर्ण स्वर में हँसा और आगे चल

दिया। उस स्वर से मुझे लगा जैसे चलते-चलते उसने मेरे गाल पर थप्पड़ मार दिया हो।"[8] मोहन राकेश के इस कथन से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार बेकारी, बेरोजगारी देश में है कि एक पढ़ा-लिखा युवक भी माँगना अपना काम मान रहा है।

मोहन राकेश यात्रा-वृत्तांत के द्वारा किस प्रकार एक देश के अंदर अनेक भाषा-बोली के प्रयोग का अर्थ ग्रहण करते हैं, वहीं दूसरी तरफ भाषा-बोली की विभिन्नता के आधार पर सम्प्रेषण का अभाव में शुभदायक नहीं हो सकता—"उसने जवाब में जो इशारे किए उनसे मुझे लगा कि वह कह रहा है मैं लौटकर वहीं आ जाऊँ वह वहाँ रुककर मेरा इंतजार करेगा। आखिर जब उसे लगा कि हम दोनों बिना एक-दूसरे की बात की समझे यूँ ही फिजूल हाथ हिला रहे हैं, तो वह रिक्शा एक तरफ छोड़कर चला आया और इशारे से मुझे पीछे जाने को कहकर पगडण्डी पर आगे-आगे चलने लगा।"[9] उपर्युक्त कथन से मोहन राकेश स्पष्ट कर देते हैं कि किसी भी यायावर को जाने वाले स्थान की भाषा जानना आवश्यक है।

इस प्रकार मोहन राकेश के यात्रा-वृत्तांत में प्रकृति, संस्कृति, मानवीय संवेदना, भाषा, धर्म और आर्थिक स्थिति जैसे बिन्दु प्रमुख रूप से उभरकर सामने आते हैं। निश्चित सारणी से हटकर जहाँ इच्छा हुई रास्ते में उतरकर स्थान को देखना और अधिकतर चरित्र-चित्रण का वर्णन करने से उनकी सहृदयता, सहजता को बल मिलता है। वर्णनामक और कथनात्मक शैली के कारण सर्जनात्मक भी देखने को मिल जाता है। मोहन राकेश की प्रथम रचना होने के बावजूद भी इसमें बिखरे छोटे-छोटे स्थान और घटनाओं का कलात्मक ढंग से प्रयोग है।

सन्दर्भ सूची–

1. मोहन राकेश, आखिरी चट्टान, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1968, पृ. 76
2. वही, पृ. 25
3. वही, पृ. 15-16
4. वही, पृ. 75
5. वही, पृ. 29
6. अनिल कुमार, स्वातंत्र्योत्तर का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. 28-29

द्वारा डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgnk.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

125वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में विशेष लेख

डॉ. भीमराव आम्बेडकर का मानववाद

राजेश हजेला

सुपरिचित कवि एवं लेखक। देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, लेख एवं शोध लेख प्रकाशित। विभिन्न विधाओं में लेखन। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से कविताएँ एवं वार्ताएँ प्रसारित। प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा सम्मानित। उच्च स्तरीय सरकारी समितियों के सदस्य। संप्रति सलाहकार (राजभाषा), भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण।

मानववादी विचारधारा अत्यन्त प्राचीन है परन्तु इसमें देश विभाजन, काल वर्गीकरण और विचारधाराओं को लेकर आधुनिक काल में ही इसकी विभिन्न परिभाषाएँ गढ़ी गयीं। आज के विद्वान इस विचारधारा को पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व का भले ही मानें किन्तु वेदों एवं एतद् सम्बन्धी अन्य शास्त्रों में यह कहीं न कहीं बीज रूप में विद्यमान है। डॉ. भीमराव आम्बेडकर जिस मानववाद की बात कहते हैं उस चिन्तन का बहुलांश अनादिकाल से ही दशरथनन्दन कर्मवीर भरत के चरित्र में पाया जाता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इसे एकात्म मानववाद की संज्ञा दी है। यदि हम स्वस्थ मन से विचार करें तो मानववाद उनका स्वयं का महत्वपूर्ण चिन्तन है और यह वास्तव में महात्मा गौतम बुद्ध के चिन्तन से प्रभावित प्रतीत होता है।

यही नहीं उनके चिन्तन का आधार भारतीय सभ्यता और संस्कृति है तभी तो कोई भी चिन्तन तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक सदस्यों की व्यथा-कथा पर आधारित होकर सार्वभौमक रूप ग्रहण

करता है क्योंकि विश्व के सभी मनुष्यों की मूल इच्छाएँ समान होती हैं। इसी आधार पर विश्व के अनेक चिन्तकों ने मानववाद पर अपने-अपने ढँग से विचार किया और उन वैचारिक अवधारणाओं को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया परन्तु इनमें से बहुत कम चिन्तक ऐसे थे जिनकी विचारधाराओं को व्यवहारिक रूप देने का प्रयास किया गया। डॉ. भीमराव आम्बेडकर ऐसे मौलिक चिन्तकों में से एक हैं जिन्होंने अपने मानववादी चिन्तन को व्यवहारिक रूप देने का सफल प्रयास किया, जिसका स्वरूप भारतीय संविधान में निहित है। बोलने का अधिकार, आचरण की स्वतंत्रता तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि संवैधानिक अधिकार डॉ. भीमराव आम्बेडकर की मानववादी सोच के फल के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत हैं।

यदि हम गहन दृष्टि से चिन्तन करें तो पाएँगे कि उनका यह मानववाद उनकी अपनी ही अनुभूतियों की देन है। समाज के अकिंचन वर्ग के एक सदस्य के रूप में उन्होंने जो कुछ भोगा; कब, कहाँ, कैसे शोषण और उत्पीड़न के शिकार हुए; इन सबसे जो प्रत्यक्ष उभर कर आया वह था उनका मानववादी चिन्तन। पहले स्वयं को लेकर सब कुछ अनुभव किया फिर उस अनुभव को विश्व स्तर पर लागू करके देखा तब उन्होंने पाया कि रूप भले ही अलग-अलग हों परन्तु विश्व के सभी मनुष्यों की मूलभूत समस्याएँ एक जैसी ही हैं।

डॉ. भीमराव आम्बेडकर का मानववाद गौतम बुद्ध से प्रभावित होते हुए भी एक मौलिक चिन्तन कहा जा सकता है क्योंकि मानववादी चिन्तक मनुष्य को एक केन्द्र-बिन्दु मान कर उसकी सम्पूर्ण समस्याओं पर गहनता से विचार करता है जैसे मानव के विकास के लिए सभी आवश्यक उपादानों की सम्पूर्ति, उसको स्वतंत्रतापूर्वक अध्ययन तथा कार्यों में संलग्न होने का समय तथा किस प्रकार से आचरण करके वह समाज के एक उपयोगी सदस्य के रूप में अपने विकास के साथ-साथ अन्य सदस्यों के विकास की राह को सुनिश्चित करे, यह सारे के सारे पहलू उनके मानववादी चिन्तन में निहित हैं। डॉ. भीमराव आम्बेडकर के सम्पूर्ण मानववाद का सम्यक् अध्ययन करने से यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उनका यह चिन्तन कोरी कल्पना नहीं है बल्कि इसमें मानव को स्वतंत्रता, समानता और निर्भीकता के साथ जीवन जीने की कला कूट-कूट कर भरी है जो इसके व्यवहारिक रूप को प्रत्यक्ष उजागर करती है।

इस मानववादी चिन्तन में जहाँ एक ओर दया, ममता, करुणा और सौहार्द को स्थान मिला है वहीं अनुशासित जीवन जीना, अपनी स्वतंत्रता के साथ दूसरों की स्वतंत्रता का भी ध्यान रखना तथा सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की परिकल्पना का व्यवहार-योग्य स्वरूप उनके इस चिन्तन में देखा जा सकता है। मानववादी चिन्तन की विविध धाराएँ हैं। डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने जो मानववादी चिन्तन किया है उसके आधार पर उनके चिन्तन को वर्गीकृत करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। डॉ. आम्बेडकर के मानववाद के प्रमुख तीन आधार (1) स्वतंत्रता (2) समता (3) भ्रातृत्व हैं। मानव समाज की दृढ़ता एवं एकता के लिए ये मूल्य आवश्यक हैं। उनके चिन्तन का महत्व प्रत्येक व्यक्ति के लिए है मुख्यतः उन लोगों के लिए जो सदियों से कुचले गये हों और जिनका शोषण होता रहा हो। अधिकांशतः यह भी देखा गया है कि बहुत से लोग स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृत्व के नाम पर अशिक्षित एवं निर्धन जनता को पथभ्रष्ट करते हैं। डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने इन मूल्यों को वास्तविक रूप में समझा और उनके आधार पर मानव सेवा की। उन्होंने कभी अपना व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाया, अपने जीवन को इन मूल्यों के अनुसार ढालने का प्रयास किया तथा इन मूल्यों को भारत के संविधान में समाहित कराया।

डॉ. आम्बेडकर के मानववाद का सम्यक् अध्ययन करने पर जो बातें उभर कर सामने आती हैं उनसे यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि यह चिन्तन कल्पना के धरातल पर स्थापित नहीं है। इसके पीछे दलितों, दीन-हीनों तथा असहायों की सेवा जैसी पुष्ट भावनाएँ हैं। वास्तविकता तो यह है कि डॉ. आम्बेडकर ने समाज में जो कुछ देखा, सुना और परखा उन सबसे निष्कर्ष निकाल कर इस मानववादी चिन्तन को नये आयाम दिए। उन्होंने दलितों, दीन-हीनों के साथ रह कर जो कुछ सीखा और पढ़ा उसे अपने चिन्तन में गढ़ कर एक सुदृढ़ भित्ति प्रदान की।

डॉ. आम्बेडकर के युग में भारत परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। ऐसे में उन्होंने भारत के लोगों की समस्याओं को विश्व मानवता की समस्याओं के साथ जोड़कर उन्हें विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान किया और अपने इस मानववादी चिन्तन के आधार पर उनके समाधान के लिए सक्रिय प्रयास किए। आज हमारे देश में जो राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग गठित है यह डॉ. आम्बेडकर की ही तपस्या का फल कहा जाना चाहिए।

इस विषय में दो राय नहीं कि यह चिन्तन सार्वभौम और बहुआयामी है जिसमें विश्व की सनातन समस्याओं का समाधान खोजते हुए जनमानस को सही दिशा देना तथा उसे दीनता, दासता और लाचारी की कैद से आजाद कराना ही मन्तव्य है। इस चिन्तन में जातिवादी जटिलता नहीं है, न किसी एक वर्ण की तानाशाही है अपितु सभी मनुष्यों को एक मान कर उनको अपने देश और राष्ट्र के हित के लिए तैयार करना है। जहाँ तक मानवीय संवेदनाओं का प्रश्न है इस चिन्तन में इस पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके अनुसार सभी मानव भाई-भाई हैं, उनमें कहीं किसी प्रकार का भेदभाव अथवा दुराग्रह नहीं है। मानव को किस प्रकार चेतन होकर अपने कार्य में संलग्न होना चाहिए यह इस चिन्तन की सबसे महत्वपूर्ण नैतिक शिक्षा है। महात्मा गाँधी का चिन्तन भले ही स्वप्नलोक की सैर कहा जाये लेकिन मानववाद नामक यह चिन्तन आदर्श होते हुए भी पूर्णतः व्यवहार में लाने योग्य है। समाज में इस चिन्तन की कोई भी बात अथवा सिद्धांत कभी भी सरलता के साथ लागू किया जा सकता है और उसका अपेक्षित परिणाम हमारे सामने आ सकता है। इतना ही नहीं विश्व के अनेक चिन्तकों के समक्ष भी यह चिन्तन अपने में कहीं से शिथिल नहीं है। इसमें मानव शारीरिक और मानसिक रूप से शक्ति सम्पन्न होकर अपने अन्य असमर्थ भाइयों की सहायता करने में सक्षम होता है जैसाकि डॉ. आम्बेडकर ने अपने जीवन में दीन-हीनों के साथ कर दिखाया। यह चिन्तन वास्तव में एक ऐसा चिन्तन है जो विश्व मानवता के लिए अमृत-तुल्य है।

आज के इस वैज्ञानिक युग में भी मानव की समस्याएँ ज्यों की त्यों हैं। प्रायः सर्वत्र संवैधानिक प्रावधान होते हुए भी समूचे विश्व का मानव आज भी शोषण, उत्पीड़न और दोहन का शिकार है। जाति, वर्ण और वर्ग का भेदभाव हर जगह हावी है ऐसे में मानववाद एक ऐसा चिन्तन है जो जनमानस को इन सभी समस्याओं से मुक्ति दिला सकता है। आज 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त चल रहा है, मानववाद के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है और यह भी ध्रुव सत्य है कि इस चुनौती को स्वीकार करने की क्षमता केवल डॉ. भीमराव आम्बेडकर के मानववादी चिन्तन के द्वारा सम्भव है।

सलाहकार (राजभाषा), भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण
मोहल्ला-हाता करम खाँ, फर्रुखाबाद-209625 (उ.प्र.)

'हिन्दी भारती' के संवाहक : डॉ. बालशौरि रेड्डी

डॉ. किशोरीशरण शर्मा

लेखक 1994 से सेवा मुक्त राज्य कार्यक्रम अधिकारी (सूचना शिक्षा संचार) हैं। तभी से पूर्ण साहित्य सेवा में संलग्न। कविता, कहानी, निबन्ध, समीक्षा, साक्षात्कार, संस्मरण आदि विधाओं में लेखन। 18 कम्पन्न, माँ, उद्बोधन, प्रणय-दीप, शरण-दोहावली, टूटा हुआ आदमी, भोर अंजोर नहाइल इत्यादि 12 काव्य रास्ते और भी हैं आदि प्रकाशित कृतियाँ हैं। विभिन्न पुरस्कार एवं सम्मान।

हिन्दी वाङ्मय के यशस्वी पुत्र डॉ. सी. बालशौरि रेड्डी का ध्यान आते ही अहिंसा और सत्य के पुजारी राष्ट्रपिता महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधी का स्मरण स्वाभाविक रूप में हो आता है और ध्यान जाता है उनके उस काल-खण्ड पर जब उन्होंने बीस वर्ष तक अफ्रीका में रहकर अंग्रेजी शासन द्वारा वहाँ के निवासियों पर ढाये जा रहे अमानुषिक अत्याचारों और व्यवहारों के विरुद्ध सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और उपवास को अपने हथियार बनाकर युद्ध लड़ा, और वहाँ की कमजोर, असहाय और नींदग्रस्त जनता को उनके अधिकार के प्रति जागृत किया। स्वयं भी उन्होंने अंग्रेजों की क्रूर यातनाओं का सामना किया। किन्तु अपने सिद्धान्त और मार्ग का परित्याग नहीं किया। भारत वापस आने पर यहाँ के प्रबुद्ध नेताओं ने उनका हार्दिक स्वागत किया तथा भारत में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जंग छेड़ने का प्रस्ताव भी गाँधी जी के सामने रखा।

गाँधी जी इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त करने से लेकर भारत और अफ्रीका में वकालत करने

की अवधि में अंग्रेजों के दबदबे का अनुभव कर चुके थे। अंग्रेजों के विशाल साम्राज्य और ताकत की उनको भलीभाँति समझ थी। वह जानते थे कि अंग्रेजों से मुट्ठी भर लोग लोहा नहीं ले सकते। इसलिए जंग छेड़ने के तत्कालीन प्रस्ताव को नकारते हुए उन्होंने सुझाव दिया–''अंग्रेजी हुकूमत सम्पूर्ण विश्व पर अपना प्रभुत्व और वर्चस्व बना रखी है। उसमें मानवता का अभाव है। जो सिर उठाने का प्रयास करता है, उसको कुचल देती है। उसको भारत से भगाने के लिए बड़ी ताकत की जरूरत है। मुट्ठी भर लोगों से वे नहीं भागने वाले हैं। पहले हमें अपनी शक्ति को बढ़ाना होगा। ऐसी स्थिति में पहले हमें गाँव-गाँव जाना होगा। उनसे मिलकर, सभा करके उन्हें गुलामी और स्वतंत्रता के अर्थ को बताना होगा। उनको शांतिपूर्ण आन्दोलन के लिए तैयार करना होगा। जब पूरे भारतवासी जागृत होंगे और एक स्वर में भारत की स्वतंत्रता का आह्वान करेंगे तथा निरन्तर करते रहेंगे तब मुझे विश्वास है, हम सब स्वतंत्रता प्राप्ति के अपने लक्ष्य में सफल होंगे।''

आगे चलकर गाँधी जी का राष्ट्रजागरण अभियान उत्कर्ष पर तब पहुँचा जब 9 अगस्त, 1942 ई. को मुम्बई की एक महती विशाल जन-सभा को संबोधित करते हुए 'करो या मरो' का उन्होंने नारा दिया। कोटि-कोटि भारतवासी जाग उठे। फिर कविवर सोहन लाल द्विवेदी ने 'बापू' के प्रति लिखा–

''चल पड़े जिधर दो डग मग में
    चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि,
    पड़ गए कोटि दृग उसी ओर।''

ऐसे विश्वव्यापी महात्मा गाँधी जी के दर्शन डॉ. बालशौरि रेड्डी जी ने 21 जनवरी, 1946 को दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा की रजत जयंती के पावन अवसर पर किए और उनका व्याख्यान सुना–''बहुत जल्दी हिंदुस्तान आजाद होने जा रहा है। आजाद भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होगी, इसलिए मैं महिलाओं और युवकों से अपील करता हूँ कि आप लोग अभी से हिन्दी सीखें ताकि हिंदुस्तान आजाद होते ही जनता की भाषा हिन्दी में प्रशासन का काम हो।'' गाँधी जी के इस भाषण का प्रभाव बालशौरि जी के किशोर मन-मानस पर इतना पड़ा कि वे हिन्दी भारती को समृद्ध करने, उसे भारत तथा विश्व-पटल पर आच्छादित करने हेतु संकल्पित हो गए। तब डॉ. रेड्डी जी मात्र 16 वर्ष के थे।

1 जुलाई, 1928 को गोल्लल गूडूर, जिला-कडपा, आंध्र प्रदेश में जन्मे डॉ. बालशौरि रेड्डी ने गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर अपने छात्र जीवन का दायरा बढ़ा दिया। उन्होंने बेल्लूर और कडपा के साथ उत्तर भारत के ऐतिहासिक शिक्षा केन्द्र इलाहाबाद और वाराणसी को भी अपनी शिक्षा व अध्ययन का केन्द्र बनाया। फादर कामिल बुल्के की भाँति बेल्जियम के निवासी होकर भारत में बिहार-राँची में अध्ययन-अध्यापन के लिए आए और यहाँ आकर भारतीय संस्कृति तथा हिन्दी भाषा-साहित्य में रम गए। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में 'रामकथा' नामक ऐसा अमूल्य शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जो हिन्दी वाङ्मय में आज भी अद्वितीय है। डॉ. बालशौरि रेड्डी जी ने साहित्य की अपनी सीमायें तेलुगु के साथ हिन्दी अंग्रेजी और तमिल के अध्ययन तक बढ़ा दी।

डॉ. रेड्डी जी ने हिन्दी भाषा, उसका सहज उच्चारण, व्याकरण और उसकी उपलब्धियों का गहन अध्ययन किया तथा उसको राष्ट्रभाषा के रूप में संवैधानिक तथा व्यवहारिक रूप से अपरिहार्य माना। उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निम्नांकित दोहे को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया–

''निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को सूल।।''

इसके अतिरिक्त मैं ऐसा मानता हूँ कि बांगला भाषा के प्रख्यात मनीषी साहित्यकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा तमिलभाषी वरेण्य राष्ट्रकवि श्री सुब्रह्मण्यम भारती-रचित 'बन्देमातरम्' से भी वे किसी न किसी बिन्दु पर प्रभावित हुए और उन्होंने माना कि हिन्दी वाङ्मय ही सम्पूर्ण राष्ट्र को जोड़े रखने में सक्षम हो सकता है। उन्होंने भारतीय संविधान का अध्ययन किया। किसी स्वतंत्र राष्ट्र की पहचान के लिए विभिन्न शर्तों के साथ उसके निम्नांकित चार स्तम्भ अनिवार्य हैं–अपना संविधान, झंडा, राष्ट्रगीत तथा राष्ट्रभाषा। किन्तु भारत के स्वतंत्र होने के बाद जब इन चारों बिन्दु पर देश के रहनुमाओं ने विचार किया तो वे प्रथम तीन स्तम्भों पर तो सहमत हो गए किन्तु राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' हो इस पर मतैक्य नहीं हुए। फलस्वरूप अनेक प्रयासों के बाद भी हिन्दी को राजभाषा के रूप में ही स्वीकारोक्ति मिली, उसमें भी अंग्रेजी को लेकर हिन्दी को पूर्णरूप में राष्ट्रभाषा होने में अनेक उप अनुच्छेद भी जोड़े गए जिसमें यह बात तो कही गई कि संविधान लागू होने से अगले 15 साल तक ही अंग्रेजी रहेगी। इस मध्य हिन्दी पूर्ण स्वावलम्बी हो जाएगी किन्तु उसके साथ यह शर्त भी रखी गई कि संसद की पुनः स्वीकृति आवश्यक होगी। उसका प्रतिफल यह हुआ कि जैसे-जैसे भारत की स्वतंत्रता की आयु बढ़ती गई राजनीति भी अपने रंग बदलती गई। राष्ट्रहित गौण होता गया तथा निजी तथा दलगत स्वार्थ का वर्चस्व बढ़ता गया। क्षेत्रीय नेताओं को बार-बार, लोकसभा और राज्यसभा में पहुँचने की लालसा तथा वहाँ की प्राप्त भौतिक एवं पदेन सुविधाओं को बनाये रखने की पिपासा बढ़ती गयी। क्षेत्रीय जन-समुदाय में भी अपनी भाषा-बोली के प्रति अधिक जिज्ञासा बलवती हुई, निष्कर्ष में हिन्दी की प्रतिष्ठा दिनोंदिन घटती गई। वैश्वीकरण के प्रभाव ने भी हिन्दी को दबाया। अनेक विद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होती गई और हिन्दी एक स्वैच्छिक विषय की भाँति पढ़ाई जाने लगी। यह स्थिति आज भी अग्रसर है जबकि अनेक सर्वेक्षण-रिपोर्टों के अनुसार दुनिया भर में, हिन्दी भाषा में बात करने व पढ़ने वाले विश्व में सर्वाधिक लोग हैं। इन सभी तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए डॉ. शौरि जी ने अपनी सोच समष्टिमय बनायी। उनका मानना है–भारत एक विशाल सार्वभौमिक राष्ट्र है। इसकी मानवतावादी संस्कृति हजारों वर्ष से अक्षुण्ण है। अनेक बाह्य आक्रमणों से आयातित संस्कृतियों को स्वयं में आत्मसात् करते हुए भारत आज भी अपनी मूल पहचान और 'सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे संतु निरामयाः' को बनाए हुए है। इस पवित्र सांस्कृतिक दृष्टिकोण को बनाए रखने के लिए डॉ. रेड्डी जी विगत लगभग 6 दशक से मन, वचन व कर्म से हिन्दी वाङ्मय जो सभी गुणों एवं विधाओं से सम्पन्न है को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने में शांतिमय तरीके से प्रयासरत रहे। इससे उनके धर्म और कर्म-पक्ष की प्रबलता परिलक्षित होती है।

एक सम्पूर्ण साहित्यकार के रूप में जब किसी साहित्यकार का मूल्यांकन किया जाता है तो मेरे विचारों से साहित्य के चार उपांगों पर ध्यान जाता है–प्रथम–मौलिक रचना, द्वितीय–शोध एवं समीक्षा सम्बन्धी साहित्य, तृतीय–अनुवादित साहित्य और चतुर्थ–प्रेरणात्मक एवं आर्थिक सहयोग। यदि इन बिन्दुओं पर डॉ. रेड्डी जी के अवदानों का आँकलन किया जाए तो वे एक सार्वभौमिक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। किशोर वय में उनकी लेखनी उठी तो फिर कभी अवरोधित नहीं हुयी। उन्होंने हिन्दी के उपन्यास विधा को समृद्ध किया। शबरी, जिंदगी की राह, यह बस्तीः ये लोग, भग्न सीमाएँ, स्वप्न और सत्य, धरती मेरी माँ, प्रोफेसर तथा कालचक्र जैसे सामाजिक उपन्यास लिखे, वहीं प्रकाश और परिछाईं, लकुमा, वीर केसरी, दावानल तथा शंखनाद जैसे लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की। रेड्डी जी की बैसाखी तथा उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ भी चर्चित हुई। बाल साहित्य जगत में उनका योगदान विशेष स्तुत्य है कारण कि आज का बालक आने वाले कल के राष्ट्र का, समाज और परिवार का संबल होता है। जैसा उसको मार्ग दिखाया जाएगा, आगे चलकर वह उसी को अपने

जीवन का लक्ष्य बनाता है। बाल साहित्य की संरचना भी कठिन होती है। बालक के कोमल तंतुओं और विचारों के अनुकूल विषय-वस्तु का अन्वेषण करने के साथ शब्द विन्यास को भी गढ़ना होता है। डॉ. बालशौरि रेड्डी जी के पास अपनी सूझ-बूझ, सोच-विचार तथा कल्पना शक्ति का अपार भण्डार था। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की उनमें दिव्य अवधारणा भी थी। फलस्वरूप उन्होंने बालकों के लिए उपयुक्त साहित्य का अम्बार दिया—तेलुगु की लोक-कथाएँ, आंध्र के महापुरुष, सत्य की खोज, तेनाली राम के लतीफे, तेनाली राम के नये लतीफे, बुद्धू से बुद्धिमान, न्याय की कहानियाँ, आदर्श जीवनियाँ, आयुक्त माल्यदा (बाल उपन्यास), आंध्र की लोक कथायें, दक्षिण की लोक कथायें तथा तेनाली राम की कहानियाँ, उनकी चर्चित लोकप्रिय बाल पुस्तकें हैं। संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित 9 पुस्तकें भी उनकी प्रकाशित हैं। उन्होंने तेलुगु भाषा में सृजित 19 कृतियों का हिन्दी में तथा हिन्दी की 10 पुस्तकों का तेलुगु में अनुवाद किया।

राजभाषा हिन्दी की अनवरत सेवा करते हुए डॉ. रेड्डी जी ने अपनी जन्मदात्री वाणी की भी सेवा की। जीवनसूत्रम्, दूरपुटंचुलु, उपन्यासों की रचना तेलुगु में की। इस प्रकार मौलिक तथा अनूदित उन्होंने 60 पुस्तकों का प्रणयन करके एक पूर्ण साहित्य तपस्वी के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित किया। आप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के अध्यक्ष भी रहे।

आपने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए भारत का तो भ्रमण किया ही विश्व हिन्दी सम्मेलनों तथा अन्य सांस्कृतिक आयोजनों में इंग्लैंड, अमरीका, मारिशस, सूरीनाम, श्रीलंका, नॉर्वे, डेनमार्क, सिंगापुर की यात्रा की तथा भारत का प्रतिनिधित्व किया। आप भारत से लेकर विदेशों तक अनेक साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं के प्रेरणास्रोत, सलाहकार तथा सदस्य रहे तथा 'विश्व हिन्दी गौरव ग्रंथ', प्रकाशक कर्मण्य तपोभूमि सेवान्यास, ग्वालियर (म.प्र.) के परामर्शदाता भी रहे।

डॉ. रेड्डी जी की यशस्वी सेवाओं से आप्लावित होकर अनेक राजकीय तथा स्वैच्छिक साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्थाओं ने उनको वरेण्य सम्मान तथा अलंकरण प्रदान कर स्वयं को गौरवान्वित किया। उनमें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ का महात्मा गाँधी पुरस्कार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना का साहित्य गौरव सम्मान, साहित्य वाचस्पति, आंध्र हिन्दी अकादमी का हिन्दी रत्न, द्विवागीश सम्मान, शिखर सम्मान, नागरीय लिपि परिषद् सम्मान इत्यादि प्रमुख हैं। काशी विद्यापीठ ने आपको डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की। आपके 'व्यक्तित्व-कृतित्व' पर देश के अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा 18 पी-एच.डी. तथा 9 एम.फिल. की उपाधि के लिए शोध प्रबन्ध समपन्न हो चुके हैं जिनमें अधिकतर प्रकाशित भी हैं।

आप 87 वर्ष की आयु में साहित्य, संस्कृति और राष्ट्र के उन्नयन में तत्पर थे। विगत दिनांक 10-12 सितम्बर, 2015 को भोपाल (मध्य प्रदेश) में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन में आपने अपनी भागीदारी प्रस्तुत की। सम्मेलन की समाप्ति पश्चात् घर वापस जाते समय आपका आकस्मिक निधन हो गया। यह हिन्दी जगत के लिए अपूर्णीय क्षति है। 'विद्या ददाति विनयम्' के आप प्रतीक थे। सरल, सहज, प्रेरक, मिलनसार तो थे ही दायित्व और संकल्प के प्रति समर्पित भी थे। आप द्वारा हिन्दी भारती को दिए गए अमूल्य अवदान ही अब हिन्दी सेवियों का पाथेय हैं।

संदर्भ–

1. हिन्दी लेखक संदर्भिका, 2010, हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. विश्व हिन्दी गौरव ग्रंथ (प्रथम खण्ड), पृष्ठ 4, 30, प्रकाशन वर्ष, 2011, कर्मण्य तपोनिष्ठ सेवा न्यास, ग्वालियर (म.प्र.)।
3. विश्व हिन्दी काव्यांजलि (प्रथम खण्ड), प्रकाशन वर्ष, 2011।
4. विश्व हिन्दी काव्यांजलि (द्वितीय खण्ड), पृष्ठ 63, प्रकाशक कर्मण्य तपोनिष्ठ सेवा न्यास, ग्वालियर (म.प्र.)।
5. दूरभाष पर आप से हुई वार्त्ताएं।
6. अन्य विविध पत्र-पत्रिकाएँ।
7. स्वयं का अध्ययन व चिंतन।

13, रेवती विहार, सेक्टर-14, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 (उ.प्र.)

हिन्दी बोलियों के शब्दकोशों की प्रासंगिकता

दानबहादुर सिंह

देश की स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में अनेक आलोचनात्मक आलेख, कविताएँ एवं कहानियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से सम्बद्ध।

हिन्दी बोलियों के शब्दकोशों के निर्माण में मिर्जाखान का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने Dictionary of Brajbhakha ब्रजभाखा शब्दकोश तैयार किया था। इसमें कुल तीन हजार शब्द सम्मिलित थे। डॉ. एस.के. चटर्जी का विचार है कि Tuhfatul-Hind तुहफ्तुल-हिन्द के लेखक मिर्जाखान ने 1675 ई. के आसपास इस प्रकार के सुरुचिपूर्ण और महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित किया। वास्तव में मिर्जाखान का ब्रजभाखा शब्दकोश Dictionary of Brajbhakha तुहफ्तुल-हिन्द का एक भाग है जिसका अर्थ है भारत से एक भेंट। A present from India इसकी पाण्डुलिपि शुद्ध नस्तालीक में लिखी गई है। Nastaliq एक प्रकार की प्राचीन लिपि है। मिर्जाखान ब्रजभाखा शब्दकोश के माध्यम से हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच समन्वय स्थापित करना चाहते थे। ध्यातव्य है कि शब्दकोश में शब्दों की स्पेलिंग में लेखक हमेशा आखिरी अक्षर को बिना वर्तनी के ही छोड़ देता है। प्रस्तावना में लेखक कहता है कि हिन्दी के अधिकांश शब्दों की तरह आखिरी अक्षर किसी स्वर द्वारा स्थिर कर दिया जाता है। उसे जैसा का तैसा छोड़ दिया है। इस भूल-चूक का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि शब्दावली को आरम्भिक और अंतिम अक्षरों के अनुसार बाँट दिया जाता है। आरम्भिक अक्षर BAB बाब का शीर्ष बताते हुए और अन्ततः उसे FASL फास्ल का रूप दे दिया जाता है। इस प्रकार वास्तविकता तो यह थी कि शब्दों की स्पेलिंग में विशेषतः आखिरी अक्षर के उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। किन्तु यदि किसी अक्षर को अन्ततः इधर से उधर घुमाया जाता है तो उसकी पूरी स्पेलिंग बरकरार रखी जाती है।

Zillah Dictionary जिला शब्दकोश में चेरीज फिलिप ब्राउन ने भारत में बिजनेश में प्रयुक्त नाना शब्दों के बारे में व्याख्या की थी। पूरा कार्य रोमन अक्षरों में है और उसे 1822 ई. में मद्रास कॉलेज प्रेस से प्रकाशित कराया गया था। गवर्नमेंट ऑफ ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाना विभागों के प्रयोग के लिए एच.एम. इलियट के भारतीय शब्दों की शब्दावली A Glossary of Indian Terms को तैयार कराया गया था। 1842 ई. में एच.एम. विल्सन ने Glossary of Indian Terms भारतीय शब्दों की शब्दावली तैयार की। उपयुक्त सुझावों और संकलनों के लिए प्रत्येक पेज पर रिक्त स्तंभ छोड़ दिया और कालान्तर में उसे वृहत् सरकारी शब्दावली के लिए भारत में प्रसारित किया गया था। उक्त प्रसार का महत्वपूर्ण परिणाम एक 'Supplement' 'पूरक' के रूप में Glossary of Indian TErms प्रकाश में आया। इस महत्वपूर्ण कार्य को संशोधित किया गया, उसे व्यवस्थित किया गया और उसका पुनः सम्पादन भी किया गया। इसके अलावा, उसका पुनः संकलन भी किया गया। उसे 1845 ई. में आगरा से छपवाया गया था। 1848 ई. में डंकन फोर्बस ने A dictionary of HIndustani Language भारतीय भाषा का शब्दकोश सम्पादित किया। उसका 1866 ई. में संशोधनों और वृहत्तर शक्ल में दूसरा संस्करण प्रकाश में आया। Hindustani English Dictionary हिन्दुस्तानी अंग्रेजी शब्दकोश के पहले भाग में कुल 802 पेज थे और उसके दूसरे भाग English Hindustani Dictionary में कुल 342 पेज थे। उसका प्रस्तुतीकरण फारसी वर्णों के अनुसार था। इस शब्दकोश का पहला भाग निम्नलिखित शब्दकोशों और पुस्तकों के आधार पर था—

1. Hunter, William: Dictionary Hindustani and English, 2 Volumes, 1808, हंटर, विलियमः हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी शब्दकोश, 2 खण्डों में, 1808।

2. Gilchrist, Dr.: Hindo-Emoral Preceptor, 8 Volums, गिलक्राइस्ट, डॉ.: हिन्दी नैतिक शिक्षक, 8 खण्डों में।

3. Gladwin: A Dictionary of Mohomedan Law and Bengal Revenue Terms, Calcutta, 1797. ग्लेडविनः इस्लामिक कानून और बंगाल राजस्व शब्दों का शब्दकोश, कोलकाता, 1797।

4. Elliot, H.M.: A Glossary of Indian Terms, 8 Volums, Agra, 1845. इलियट, एच.एम.: भारतीय शब्दों की शब्दावली, 8 खण्डों में, आगरा, 1845।

5. Prof. Johnson F.: A Dictionary of Persian, Arabic and English, प्रो. जॉनसरन एफः फारसी, अरबी और अंग्रेजी शब्दकोश।

6. Adam, Dr. Mathew Thompson: Dictionary, English and Hindi, Calcutta, 1829. एडम, डॉ. मैथ्यू थाम्पसनः शब्दकोश, अंग्रेजी और हिन्दी, कोलकाता, 1829।

7. लल्लू लालः प्रेम सागर।

8. Thompson, J.T.: A Dictionary in Hindi and English, Calcutta, 1846. थाम्पसन, जे.टी.: हिन्दी और अंग्रेजी में शब्दकोश, कोलकाता, 1846।

9. Herklots, Dr.: Quanoon-E-Islam, 1824. हर्कलाट, डॉ.: कानून-ए-इस्लाम, 1824।

10. Dukhnee Unwari Soheelee, 1832. दुखनी उनवरी सोहली, 1832।

11. Wilson, H.H., A Glossary of Indian Terms, 1842. विल्सन, एच.एच.: भारतीय शब्दों की शब्दावली, 1842।

फोर्बस के शब्दकोश का दूसरा भाग डॉ. गिलक्राइस्ट के शब्दकोश अंग्रेजी और हिन्दोस्तानी दो खण्डों में मूलतः उसी पर आधारित है जोकि कोलकाता में 1798 ई. में पहली बार प्रकाशित हुआ था। उसका दूसरा संस्करण इडिनवर्ग में 1810 ई. में प्रकाश में आया।

एक दूसरा शब्दकोश पैट्रिक गारनीज का है। उसका नाम कुटचेरी टेक्निकल्टीज अथवा शब्दों की शब्दावली है। ग्राम्य, सरकारी और जर्नल, विधि न्यायालय में दैनिक इस्तेमाल के लिए और कार्यकाल के दृष्टान्त में, सीमा शुल्क, कला और मैन्यूफैक्चरस ऑफ हिन्दुस्तान उसे पहली बार Presbyterian Mission Press of Allahabad से छपवाया गया था। उसका हिन्दी भाषान्तर भारतीय साहित्य (खण्ड नं. 2-3 जुलाई, 1957) में देखा जा सकता है। कारनीजी ने सच्चाई का उल्लेख किया था कि 1850 ई. के दौरान उन्होंने आँकड़े एकत्र करना आरम्भ कर दिया था। उसका प्रस्तुतीकरण रोमन, नागरी और फारसी वर्णो में था और उसकी व्याख्या अंग्रेजी में दी गई है। उसका संशोधित दूसरा वृहत् संस्करण 1877 ई. में प्रकाशित किया गया था।

वर्ष 1879 ई. मे विलियम क्रुक के ग्राम्य और कृषि शब्दों का एक डाइजेस्ट अथवा उत्तर पश्चिम प्रान्तों और अवध के ग्राम्य और कृषि शब्दावली को प्रकाशित किया था। यह कुल पन्द्रह हजार शब्दों का संग्रह है। प्रकाशन के पहले उस संग्रह को सुझावों और संशोधनों के लिए सिविल और शैक्षणिक संस्थानों के पास भेज दिया गया था। यह तथ्य उल्लेखनीय है क्योंकि उसका पहला संस्करण विषयों के आधार पर व्यवस्थित था, किन्तु उसका संशोधित संस्करण वर्णनात्मक रूप में था। इस शबदकोश की दूसरी विशेषता शब्दों के विपथगामी उच्चारणों का संग्रह है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि क्रुक ने निम्नलिखित शब्दकोशों का भी प्रयोग किया था।

1. किलट एच.एम.: ईस्ट इण्डिया कम्पनी 1845 ई. के नाना सरकारी विभागों में प्रयोग के लिए भारतीय शब्दों की शब्दावली।

2. रीड्स, जे.आर.: आजमगढ़ शब्दावली।

3. विल्सन, एच.एच.: न्यायिक और राजस्व शब्दों की शब्दावली और ब्रिटिश भारत 1855 ई. के प्रशासन से सम्बन्धित सरकारी दस्तावेजों में आने वाले शब्दों के उपयोगी शब्द।

एस. डब्ल्यू. फालेन ने हिन्दुस्तानी साहित्य और लोकवार्ता से चित्रों के साथ हिन्दुस्तानी अंग्रेजी शब्दकोश का प्रकाशन किया। यह शब्दकोश भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उतने महत्व का नहीं है। इसका महत्व केवल इतना ही है कि वह भारत के हिन्दी भाषा भाषी लोगों की टूटी-फूटी बोली जाने वाली जुबान है। इसीलिए उसे इतनी महत्ता दी जाती है। पहली बार इस शब्दकोश में आदमियों और औरतों द्वारा बोली जाने वाली विशुद्ध हिन्दी शब्दावली दी गई है। शब्दों के साथ-साथ चित्र भी प्रदर्शित किए गए हैं। शब्दों के साथ-साथ उदाहरणस्वरूप वाक्य भी दिए गए हैं। इसमें रोजमर्रा की बोली जाने वाली कहावतें, गीत, संगीत के शब्द भी दिए गए हैं। संकलनकर्त्ता ने कई वर्षों तक दिल्ली और बिहार में रहने का फायदा उठाया। वहाँ पर उर्दू और हिन्दी की मिली-जुली जुबान बोली जाती है। दोनों भाषाओं का प्रतिनिधित्व लगभग एक जैसा है। उसे हम हिन्दुस्तानी कह सकते हैं। वह मथुरा में भी निवास किए। वहाँ की प्रमुख बोली ब्रज है साथ ही साथ आगरा और काशी में भी लगभग एक जैसी बोली बोली जाती है। अयोध्या, बीकानेर और जोधपुर में भी कुछ अन्तर से एक जैसी जुबान बोली जाती है। इस शब्दकोश में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो उपर्युक्त स्थानों के नजदीकी हैं और जिन शब्दों की धातुएँ बहुत कुछ परस्पर मिलती जुलती हैं। हिन्दी बोलियों के शब्दकोशों का पहला दौर यही समाप्त हो जाता है। उपर्युक्त कार्य बड़े महत्व का है क्योंकि उनमें तकनीकी शब्दावली सम्मिलित है। यह शब्दावली कालान्तर में बोली जाती थी और प्रयोग में थी।

अदालतों और सरकारी कार्यालयों में रोजमर्रा के कामकाज में उनका प्रयोग होता था। शब्दावलियों के इन संग्रहों ने सरकारी और

गैर सरकारी मुलाजिमों को अपनी ओर आकर्षित किया। एक के बाद दूसरी बोलियों के शब्दकोश देखने को मिले। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस तथ्य का प्रमुख श्रेय विदेशियों को दिया जा सकता है जिन्होंने शब्दों का चयन किया, उनका विश्लेषण किया और उन्हें समय पर प्रकाशित किया। इन शब्दकोशों का प्रमुख उद्देश्य था अदालतों और भारतीय ग्राम्य संस्कृतियों से सम्पर्क स्थापित करना और शब्दावली तैयार करना। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये शब्दकोश न तो भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तैयार किए गए थे और न ही कोशविज्ञान के दृष्टिकोण से ही। हम यहाँ डॉ. ग्रियर्सन की बातों से सहमत हैं कि–''Each Writer Copied his predecessor according to his capacity, corrected a few mistakes or not, introduced a few more or not, and proclaimed a new gospel which was not new'' अर्थात् प्रत्येक लेखक ने अपनी क्षमतानुसार अपने पूर्वजों की नकल की, कुछ भूलों को सुधारा अथवा नहीं, कुछ नई शुरुआत की अथवा नहीं और एक नई शुभवार्ता की घोषणा की जिसे नया नहीं कहा जा सकता।

1885 ई. में डॉ. ग्रियर्सन ने अपना Bihar Peasant Life बिहार कृषक जीवन प्रकाशित कराया जिसे हम 'सम्बन्धित प्रान्त के लोगों के चतुर्दिक का एक विवादास्पद सूचीपत्र कह सकते हैं'। इसे हम बोली शब्दकोशों के विकास के दूसरे दौर की शुरुआत कह सकते हैं। यह संभव है कि डॉ. ग्रियर्सन लाल बिहारी डेज के गोविन्द सामन्त से अवश्य प्रभावित हुए होंगे। कालान्तर में उसका संशोधित संस्करण 1878 ई. में प्रकाशित हुआ था जिसे बंगाल कृषक जीवन कहा जाता है। बिहार कृषक जीवन लगभग दस हजार शब्दों का एक बृहत् संग्रह है। जिसे लोगों के अभिभाषणों, वार्तालापों वगैरह से संग्रह किया गया था। इसे उसी वजह से लिख लिया गया था जहाँ लेखक स्वयं अथवा उसके सहायकों द्वारा बोली जाती थी। उसे सावधानीपूर्वक प्रत्येक उपलब्ध सम्पर्क ग्रन्थों के साथ तुलना की गई थी और जहाँ खामियाँ नजर आईं उन्हें या तो समाहित कर लिया गया अथवा उनकी विधिवत् व्याख्या कर दी गई थी। अन्ततः प्रूफ शीट को पूरे बिहार के जिलों में घुमाया गया था। उनकी एक बार पुनः उसी स्थान पर जाँच-पड़ताल की गई थी। जाँचकर्त्ता सक्षम प्रेक्षक थे और जो शुरुआती तौर पर सामग्री एकत्र कर लाए थे। डॉ. ग्रियर्सन ने दावा किया था कि पुस्तक पूर्णरूपेण मूल है और कुछ सीमा तक सही है। बोली शब्दकोशों के क्षेत्र में बिहार कृषक जीवन एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगी। चाहे वे हिन्दी की हों अथवा अन्य बोलियों की भारतीय भाषा वैज्ञानिकों के लिए प्रमुखतः प्रेरणास्रोत साबित होगी। हिन्दी बोलियों के शब्दकोशों के इतिहास का दूसरा चरण इस महत्वपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही समाप्त हो जाता है।

20वीं शताब्दी के पहले पाँचवें दशकों के दौरान एक भी शब्दकोश प्रकाश में नहीं आया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मार्ग-दर्शन में और डॉ. ग्रियर्सन के पदचिह्नों पर हरिहर प्रसाद गुप्ता ने ग्रामीण उद्योगों की शब्दावली के लिए सामग्री एकत्र किया। गुप्ता के ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली (Glossary of Rural Industries). हिन्दी बोलियों के शब्दकोशों के विकास में तीसरे दौर की शुरुआत होती है। डॉ. हरिहर प्रसाद गुप्ता के अनुसन्धान कार्य ने डी.फिल. डिग्री, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के लिए शोध कार्य के रूप में प्रस्तुत किया। यह कार्य एक सीमित दायरे तक ही सीमित रहा।

अनुक्रमणिका के रूप में भी यह संक्षिप्त ही कहा जा सकता है। इसमें केवल 2500 ही शब्द हैं। इसके बावजूद हिन्दी के क्षेत्र में उन्होंने पहले पहल बोली कोशकार होने की प्रतिष्ठा प्राप्त की। डॉ. गुप्ता का क्षेत्र परगना अहिरौला, तहसील फूलपुर और जिला आजमगढ़ था। डॉ. गुप्ता के मतानुसार डॉ. ग्रियर्सन का शोधकार्य न तो वैज्ञानिक है और न ही प्रामाणिक। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण बिहार का क्षेत्र आता है उन्होंने यह कार्य अपने बलबूते पर पूरा नहीं किया है। इसमें अनेक लोगों का सहयोग सम्मिलित है। इस प्रकार उन्होंने एक छोटे क्षेत्र का चुनाव किया और व्यक्तिगत रूप से सामग्री एकत्र की। उन्होंने अपने शोधकार्य को अधिक वैज्ञानिक और प्रामाणिक बनाने के उद्देश्य से ही पूरा किया। उनके शोध-कार्य का पहला भाग उद्योगों के अनुसार ही व्यवस्थित किया गया था। शोध-कार्य का दूसरा भाग वर्णनात्मक रूप में पूरा किया गया था। वर्णनात्मक रूप से व्यवस्थित शब्दों को व्याकरण और व्युत्पत्ति विज्ञान को दृष्टि में रख कर पूरा किया गया था। इन सब विशेषताओं के अलावा, डॉ. गुप्ता ने रेखाकृतियों और आँकड़ों साथ में शब्दों की व्याख्या नहीं की। यदि डॉ. गुप्ता ने रेखाकृतियों और आँकड़ों को दृष्टि में रख कर कार्य किया होता तो उनका कार्य अधिक महत्वपूर्ण और बहुमूल्य होता।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित प्रयाग गर्ग द्वारा लिखी गई कृषि कोश पुस्तिका (कृषि शब्दावली) के बारे में भी यहाँ उल्लेख कर देना समीचीन प्रतीत होता है। यह केवल 33 पृष्ठों का छोटा कार्य है। इसमें केवल कृषि से सम्बन्धित शब्दावली ही दी गई है। यह इन लोगों के लिए भी उपयोगी नहीं है जो इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। 1955 ई. में उत्तर प्रदेश हिन्दुस्तानी अकादमी ने अवधी कोश प्रकाशित किया। उसमें 15000 से भी ऊपर शब्द थे। उसके लेखक रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' थे। उन्होंने यह कार्य 1931 ई. में आरम्भ किया। उन्हें इस कार्य में अपने प्राध्यापक डॉ. आर.एल. हर्नर से प्रेरणा मिली

थी। उन्हीं के मार्गदर्शन में नेपाली शब्दकोश भी प्रकाशित कराया। उन्होंने अवधी में उपलब्ध ध्वन्यात्मक विभिन्नताओं के बारे में विशेष सावधानी रखी है। इसके अलावा, उपबोलियों, और सम्बन्धित शब्दों पर भी ध्यान दिया गया है। व्याकरण, व्युत्पत्ति विज्ञान, मुहावरों मुहावरेदार शब्दावलियों और कहावतों पर भी बारीकी से कार्य किया गया है। उसमें अवधी के शीर्षस्थ रचनाकार जायसी, तुलसी और प्रमुख रचनाकारों के शब्दचित्र दिए गए हैं। अवधी कोश का प्रस्तुतीकरण वर्णनात्मक है। इस मूल्यवान महत्वपूर्ण कार्य में आँकड़े शब्द चित्र वगैरह की विद्यमानता कोई अर्थ नहीं रखती। डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन ने 1956 ई. में अपने पी.एच.डी. शोधकार्य के लिए 'ब्रजभाषा की कृषक जीवन सम्बन्धी शब्दावली' (Agricultural Glossary of Brajabhasha) प्रकाशित कराया। डॉ. ग्रियर्सन (बिहार कृषक जीवन) और डॉ. एच.पी. गुप्ता (ग्रामोद्योग शब्दावली) ये दोनों रचनाएँ डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन के सामने थीं। डॉ. सुमन ने कृषि से सम्बन्धित लगभग 15 हजार शब्दों का संग्रह किया था। डॉ. सुमन ने स्वयं अपने कार्य को अधिक वैज्ञानिक और प्रामाणिक बनाने के लिए आँकड़ों का संग्रह किया था। संग्रह से सम्बन्धित उन्होंने संज्ञाओं, क्रियाओं, अव्यय, कहावतों और मुहावरों को भी एकत्र किया था। जहाँ कहीं उन्हें विसंगतियाँ नजर आईं। अलीगढ़ जिले के किसानों के साथ विचार-विमर्श किया। साधारणतया शब्दों के बारे में व्युत्पत्ति विज्ञान के साथ व्याख्या की गई है और दूसरी बोलियों से तुलना भी की गई है। दोनों खण्डों में लगभग 846 स्केच और आँकड़े दिए गए हैं।

कृषि-कोश—वर्ष 1959 ई. में कृषि कोश (Agricultural Glossary) का प्रकाशन हुआ था जिसके साथ एक लम्बी प्रस्तावना, तकनीकियाँ, संग्रह करने की कार्य-पद्धति, विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण वगैरह संलग्न थे। इस कार्य का सम्पादन डॉ. बी.एन. प्रसाद ने किया था। वह भारत के सर्वाधिक वरिष्ठ भाषा वैज्ञानिक थे। यह केवल अपने ढंग का अकला ऐसा संग्रह है जो व्युत्पत्ति विज्ञान और भाषा विज्ञान के नियमों और सिद्धान्तों के अनुरूप था। आँकड़ों का संग्रह शिक्षित अनुसन्धान सहायकों द्वारा लोगों से बातचीत, विचार-विमर्श के बाद ही संग्रह-कार्य पूरा किया गया था। यदि कही पर किसी प्रकार की विवादास्पद बात पाई जाती है तो उसे सम्बन्धित लोगों से विचार-विमर्श के पश्चात् निपटा लिया जाता था। इसकी व्यवस्था वर्णनात्मक है। अर्थ के साथ ही शब्दों की व्याख्या दे दी गई थी। कोष्ठकों में उसके संक्षिप्त रूप भी दे दिए गए थे। शब्दों के मानक रूप दे दिए गए हैं। यदि एक शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं तो उन्हें शब्द के साथ ही दे दिया जाता था। शब्दों को अन्य बोलियों के साथ तुलना भी की जाती थी; ताकि शब्द स्पष्ट और सही साबित हो। जहाँ-कहीं आवश्यक था, स्केच वगैरह दे दिए गए थे। इस शब्दकोश की सबसे बड़ी विशेषता है कि पर्यायवाची शब्द भी साथ-साथ जोड़ दिए गए हैं। ये बातें अन्य शब्दकोशों में नहीं पाई जाती। इस शब्दकोश की महत्ता भाषा विज्ञान के कारण और बढ़ गई है। यह शब्दकोश अत्यधिक वैज्ञानिक, शुद्ध और प्रामाणिक माना जाता है। हिन्दी बोलियों के सागर में इसे ज्योति-स्तंभ माना जाता है। डॉ. प्रसाद ने केवल कृषि शब्दावली का सम्पादन किया, बल्कि उन्होंने अपने शिष्यों से इस दिशा में अपने को समर्पित कर देने का आह्वान भी किया।

देवी शंकर द्विवेदी ने डॉ. बी.एन. प्रसाद की देख-रेख में वैसवाड़ी की शब्दावली पर कार्य किया। एक दूसरा कार्य हरिदत्त भट्ट द्वारा गढ़वाली शब्दावली के.एम. हिन्दी अध्ययन और भाषा विज्ञान, संस्थान, आगरा के डॉ. आर.एन. सहाय के निर्देशन में कार्य पूरा किया गया। 1960 ई. में हरिदत्त भट्ट द्वारा गढ़वाली जिले का शब्द सामर्थ्य (Glossary of Garhwali District) पूरा किया गया। उन्होंने तीन वर्षों के दौरान आँकड़ों के संग्रह का कार्य पूरा किया। पहले भाग का प्रस्तुतीकरण विषयानुसार ही है और दूसरा भाग वर्णनात्मक है। अधिकांश शब्दों का व्युत्पत्ति विज्ञान भी दिया गया है। लेकिन लेखक ने स्केच, आँकड़े वगैरह अपने कार्य को अधिक मूल्यवान, महत्वपूर्ण बनाने के लिए नहीं दिया। डॉ. द्विवेदी ने हरिदत्त भट्ट द्वारा स्थापित उन्हीं नियमों और सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन किया जिसे उन्होंने बैसवाड़ी का शब्द सामर्थ्य (Glossary of Baiswari Dialect) में प्राप्त किया था। लेखक ने अधिकांश शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी है। किन्तु स्केच और आँकड़े देने में कोताही बरती है। लेखक ने शब्दावली के व्याकरणिक श्रेणियों पर भी कार्य किया है। श्री भट्ट और श्री द्विवेदी के कार्यो में हमें किसी प्रकार के प्रस्तुतीकरण में अन्तर नहर नहीं आता। शालिकराम शर्मा ने इलाहाबाद जिले की कृषि सम्बन्धी शब्दावली (Agriculture Glossary of Allahabad District) पूरा किया। उनके कार्य का पहला भाग विषय सम्बन्धी शब्दों का अर्थ भी देता है। दूसरा भाग वर्णनात्मक रूप में व्यवस्थित है। लेखक शब्दों के पचास प्रतिशत से अधिक की व्युत्पत्ति की प्रामाणिकता का दावा करता है। डॉ. शर्मा ने स्वयं अपने कार्य को मूल्यवान बनाने के लिए शब्दों का स्वयं संग्रह किया। उन्हें सन्देहास्पद शब्दों के बारे में विचार-विमर्श करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

रामासिंह ने कुमाऊँनी बोली की शब्दावली पर कार्य किया। उसके लिए उन्होंने अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ जिलों का भ्रमण कर शब्दों का संग्रह किया। इस कार्य का विपथगामी ध्वन्यात्मक अन्तर ही उनके कार्य का प्रमुख प्रतिपाद्य है, शब्दों की

व्युत्पत्ति, स्केच और आँकड़े नहीं दिए गए हैं। के.एम. संस्थान, आगरा के डॉ. आर.एन. सहाय की देख-रेख में विष्णुदत्त भारद्वाज ने एक अन्य अनुसन्धान परियोजना हरियाणा की सांस्कृतिक शब्दावली (Cultural Glossary of Haryana) पूरा किया। इस कार्य को पूरा करने वाले ने स्वयं सामग्री का संग्रह किया। शब्दावली से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार-विमर्श कार्य-स्थान पर ही पूर्ण किया गया था; ताकि कार्य अधिक वैज्ञानिक और प्रामाणिक बन सके। इस कार्य का प्रस्तुतीकरण विषय के अनुरूप ही है। शब्दों का विश्लेषण विस्तारपूर्वक किया गया है। साथ ही साथ शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी गई है। कार्य का दूसरा आधा भाग वर्णनात्मक रूप में व्यवस्थित है। यदि भारद्वाज ने स्केच और आँकड़े दे दिए होते तो कार्य अत्यधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण होता।

कान्ति कुमार की छत्तीसगढ़ की ग्राम्य जीवन शब्दावली (Rural Glossary of Chhattisgarh) 1966 ई. में प्रकाश में आई। इसका विस्तार केवल सरगूजा जिले तक ही है। यह कार्य दो प्रमुख भागों में विभाजित है और इक्कीस अध्यायों के साथ परिशिष्ट भी लगा हुआ है। पहले भाग में छत्तीसगढ़ और छत्तीसगढ़ी की प्रस्तावना है। दूसरे भाग में कुल 21 अध्याय हैं जो छत्तीसगढ़ी की प्रस्तावना है। दूसरे भाग में कुल 21 अध्याय हैं जो छत्तीसगढ़ी की प्रस्तावना है। दूसरे भाग में कुल 21 अध्याय हैं जो छत्तीसगढ़ी की ग्राम्य उद्योग शब्दावली पर आधारित हैं। अपने कार्य को अधिक वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक बनाने के लिए लेखक को विसंगतियाँ यदि मिलती हैं तो किसानों और उद्योगों के लोगों से विचार-विमर्श के बाद उन्हें दूर कर दिया गया। इस कार्य में हमें यत्र-तत्र ध्वन्यात्मक खामियाँ नजर आती हैं। शब्दों की व्याख्या विस्तारपूर्वक कर दी गई है। मुहावरों, मुहावरेदार वर्णन प्रणाली, स्थानीय बोलियों की कहावतें साथ ही अन्य बोलियाँ वगैरह सम्यक रूप से दिए गए हैं। शब्दों को अधिक गहराई से समझने के लिए 16 आँकड़े और 151 स्केच वगैरह दिए गए हैं। शब्दों के साथ परिशिष्ट भी वर्णनात्मक रूप में लगे हैं साथ में व्युत्पत्ति और व्याकरण भी दिए गए हैं।

राजस्थानी औद्योगिक शब्दावली (Industrial Glossary of Rajasthan) राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र को समाविष्ट करती है। लेखक बृजमोहन जवालिया ने व्यक्तिगत रूप से सामग्री एकत्र करने में प्रयास किया। लेखक ने यदि कहीं विपथगामी उच्चारण मिले तो उनकी ओर विशेष ध्यान दिया है। मूल स्थान से विसंगतियों को हटा दिया गया। शब्दों की व्याख्या व्याकरण, व्युत्पत्ति, आँकड़े और स्केच वगैरह सभी भलीभाँति दिए गए हैं। पहले भाग को विषय की शब्दावली के साथ जोड़ दिया गया है। दूसरा भाग व्युत्पत्ति के साथ वर्णनात्मक रूप में शब्द व्यवस्थित कर दिए गए हैं। डॉ. ओंकारमल का कार्य पश्चिमी राजस्थान की औद्योगिक शब्दावली (Industrial Glossary of Western Rajasthan) पश्चिमी राजस्थानी क्षेत्र को समाविष्ट करता है। यद्यपि यह कार्य अपने में अनोखा है, लेकिन शब्दों की व्युत्पत्ति स्केच और आँकड़ों में पीछे छूट जाता है। यदि डॉ. ओंकारमल ने स्केच और आँकड़े की ओर ध्यान दिया होता तो उनका कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान होता।

उपर्युक्त कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रमुख कार्य कहा जा सकता है। इस विचार-विमर्श से छोटे-मोटे कार्यों को अलग-थलग नहीं किया जा सकता। इस पुस्तक में ये कार्य अत्यल्प भूमिका निभाते हैं। ये कार्य बोलियों के हैं। डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा का प्रख्यात् उपन्यास 'मृगनयनी' है। उपन्यास के अन्त में बुन्देली की शब्दावली दी गई है। शब्दों की व्याख्या भी की गई है। स्व. डॉ. वी.एम. अग्रवाल की सलाह पर शब्दावली जोड़ी गई थी। ऐसा इसलिए किया गया था ताकि लोग अधिक से अधिक उसे समझ सकें। उसी प्रकार डॉ. के.सी. अग्रवाल और डॉ. आर.पी. अग्रवाल ने उनके कार्यों में शब्दावली का सहयोग किया है। शेखावती बोली का वर्णनात्मक विश्लेषण और बुन्देली बोली का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण क्रमशः दिए गए हैं। भाषा विज्ञान और कोशविज्ञान के नियमानुसार ये कार्य उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। ये केवल शब्दों के संग्रह मात्र हैं। छोटे-मोटे कार्यों को दो प्रमुख शीर्षों में वर्णीकृत किया जा सकता है। अनुसन्धान कार्यों के प्रयोजन से और मौलिक कार्यों के अभिप्राय से ऐसे कार्य बहुत कम देखने को मिले हैं। डॉ. प्रसाद की कृषि शब्दावली, समीर का अवधी कोश और डॉ. ग्रियर्सन का बिहार कृषक जीवन आदि प्रमुख, विशिष्ट और मौलिक कार्य कहे जा सकते हैं। अन्य अनुसन्धान कार्यों को स्नातकोत्तर छात्रों ने अनुसन्धान डिग्री के लिए अपनाया है। बोलियों के शब्दकोशों को तैयार करने के लिए श्रम और समय की आवश्यकता है। इसके लिए कठोर कार्य और आत्मिक शान्ति की आवश्यकता है। यह अत्यधिक सन्तोष की बात है कि लोग इस क्षेत्र में धैर्य और उत्साह के साथ प्रवृत्त हो रहे हैं।

कोठी नं. 3/16/3, ए.जी. कॉलेज रोड, भारत भवन के पीछे, पड़रा, रीवा-486001 (म.प्र.)

उपेक्षित प्रश्न—जनजातीय भाषा सर्वेक्षण, संरक्षण

प्रोफेसर हेमराज मीणा 'दिवाकर'

क्षेत्रीय निदेशक सह प्रोफेसर (हिन्दी भाषा और साहित्य), केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, गुवाहाटी केन्द्र। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन, 'दर्द की आवाज' (काव्य संग्रह) तथा अन्य शोधपरक व आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित।

भाषाई वैविध्य हमारे देश की एक अनोखी विशेषता है जो भारत की आंतरिक शक्ति को मजबूत करती है। कुछ भाषाविद् विद्वानों का मत है कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए लिपि व्यवस्था अपनाई जा सकती है। मैं व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न लिपियों के प्रयोग का समर्थक हूँ क्योंकि भाषाई वैविध्य की तरह लिपिगत वैविध्य भी भारत की विभिन्न भाषाओं की सांस्कृतिक चेतना को संपन्नता का बोध कराता है। वे सभी लिपियाँ जिनका प्रयोग विभिन्न भारतीय भाषाएँ करती आ रही हैं हमारी ज्ञान परम्परा की अमूल्य धरोहर हैं। भाषा और लिपि के प्रश्न पर भाषा वैज्ञानिक नजरिए से सोचने की जरूरत है। हमारे धार्मिक दृष्टिकोण ने जो संकुचित घेरा बनाया था, के कारण ही कुछ जनजातीय भाषाओं और बोलियों ने रोमन लिपि को अपनाया है। सवर्णवादी सोच के कारण लिपि के स्तर पर हमें बहुत नुकसान हुआ है। एक समय था जब हम पूर्वोत्तर भारत की जनजातीय भाषाओं तथा निकोबार की निकोबारी भाषा को रोमन के स्थान पर एक लिपि व्यवस्था प्रदान कर सकते थे।

पहले हमारे पास इस दृष्टिकोण की कमी थी कि किसी भी जाति, समाज और राष्ट्र के विकास में भाषा और लिपि का प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा है।

स्वतंत्रता के 68 वर्ष बाद भी हमारे पास **'केन्द्रीय जनजातीय भाषा अनुसंधान संस्थान'** नहीं है। हमारे देश के चार-पाँच भाषा संस्थान हैं जिनमें एक भाषा संस्थान भारतीय भाषाओं के लिए कार्य कर रहा है जिसका नाम है—**भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर**। हमारे देश के पास एक ऐसा विश्वविद्यालय भी है जो जनजातीय समाज के विकास के लिए स्थापित किया गया है जिसका नाम है—**इंदिरा गाँधी जनजातीय विकास विश्वविद्यालय, अमरकंटक**। जनजातीय भाषा अध्ययन के क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय की गतिविधियाँ अभी हमारे सामने नहीं आई हैं। होने को तो हमारे देश के पास **हिंदी विश्वविद्यालय**, **उर्दू विश्वविद्यालय** और **तेलुगु विश्वविद्यालय** भी हैं। संस्कृत के लिए राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान और कई संस्कृत विश्वविद्यालय हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में दो जनजातीय भाषाएँ अष्टम् अनुसूची में स्थान प्राप्त कर संवैधानिक भाषाएँ बन चुकी हैं, वे हैं **बोडो** और **संताली**।

संताली का अध्ययन राँची विश्वविद्यालय तथा बोडो का अध्ययन-अध्यापन गोहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी में होता है। कुछ विश्वविद्यालयों में जनजातीय अध्ययन केन्द्र तथा जनजातीय भाषा विभाग भी स्थापित हो चुके हैं किन्तु इन अध्ययन केन्द्रों और भाषा विभागों की उपलब्धियाँ हमारे समझ में नहीं आ रही हैं।

कुछ गैर जनजाति वर्ग के लोग जनजातीय अध्ययन और ज्ञान के मठाधीश बन गए हैं तथा वे जनजातीय साहित्य के विशेषज्ञ बनकर अपना व्यापार संचालित कर रहे हैं।

कुछ गैर जनजाति के लोग इस कार्य के द्वारा व्यापार करने में बहुत चतुर हो गए हैं। कुछ लोगों ने आदिवासी विमर्श को व्यापारिक स्वरूप दे दिया है और अपनी दुकान को बड़ी खूबसूरती से संचालित कर रहे हैं।

समय के साथ लोगों ने भाषा संस्थानों को अपनी सुविधानुसार बदल दिया है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे भाषा संस्थान साहित्य-संस्थान बन गए हैं। ऐसी स्थिति में भाषाओं पर कौन अनुसंधान तथा कौन शिक्षण कार्य करेगा। भाषा शिक्षण करने वाली संस्थाएँ साहित्य शिक्षण का कार्य कर रही हैं।

हमारे देश के पास एक भी उच्चतर शिक्षा संस्थान नहीं है जहाँ पर भाषा शिक्षण में एम.ए. होता हो। यदि केन्द्रीय हिन्दी संस्थान (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, उच्चतर विभाग, भारत सरकार), आगरा **मानक हिन्दी भाषा विश्वविद्यालय** बन सके तो वह इस कार्य को करने में समर्थ है। हिन्दी माध्यम से भाषा विज्ञान में एम.ए. की परम्परा भी क्षीण हो चुकी है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा का कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विद्यापीठ भी अपना

स्वर्णयुग याद करने लायक नहीं रहा है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद और डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. विद्यानिवास मश्र द्वारा स्थापित परम्परा यहाँ समाप्त हो चुकी है।

एक समय था जब डॉ. बाबूराम सक्सेना, डॉ. सुकुमार सेन, डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. भोलनाथ तिवारी, डॉ. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया, डॉ. देवेन्द्र नाथ शर्मा, डॉ. भोलाशंकर व्यास, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. न.वी. राजोपालन, डॉ. रमानाथ सहाय, डॉ. वि. कृष्णस्वामी आयंगार, डॉ. वी. रा. जगन्नाथन, डॉ. महावीरसरन जैन, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रोफेसर कृष्णकुमार शर्मा, प्रोफेसर सुरेश कुमार, प्रोफेसर बालगोविंद मिश्र, प्रोफेसर ब्रजेश्वर वर्मा, प्रोफेसर सूरजभान सिंह, डॉ. अशोक केलकर, डॉ. हरदेव बाहरी आदि विद्वान् भाषाविदों ने भाषाई दृष्ट से गंभीर कार्य कर भाषा अध्ययन को नई गति और नई दृष्टि प्रदान की थी। इस दिशा में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, प्रो. एस. के. वर्मा, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा तथा डॉ. विद्यानिवास मिश्र का योगदान भी विशेष उल्लेखनीय रहा है। इन दिनों सुविख्यात विद्वान प्रो. गणेश देवी का भाषा सर्वेक्षण विषय पर कार्य प्रकाश में आ रहा है। प्रो. गणेश देवी का कार्य एक दृष्टि देता है।

संस्कृत, हिन्दी तथा गैर जनजातीय भारतीय भाषाओं में विद्वान भाषाविदों का योगदान एक अलग पक्ष हैं। मैं इस आलेख के माध्यम से यह कहना चाहता हूँ कि जनजातीय भाषाओं की जो अध्ययन परम्परा डॉ. रामदयाल मुंडा ने राँची विश्वविद्यालय में अपने कुलपति काल में आरंभ की थी वही परम्परा जनजातीय भाषाओं वाले राज्यों के सभी विश्वविद्यालयों में आरम्भ होनी चाहिए।

मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल में ताङ्-खुल, कबुई, कुकी, राल्ते आदि का, नागालैण्ड के केन्द्रीय विश्वविद्यालय में नागालैंड की 19 नागा भाषाओं (आओ, अंगामी, सेमा, लोथा, कोन्याक, फोम, इमचुङ्र आदि) का, मिजोरम विश्वविद्यालय, आईजोल में मिजोउ, लुशाई, चकमा का, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला में काकबरक, जमातिया, विष्णुप्रिया आदि का, नेहू, शिलाँग में खासी, गारो, जयन्तिया का, असम विश्वविद्यालय, सिल्चर और तेजपुर विश्वविद्यालय में असम की जनजातीय भाषाओं का, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर में अरुणाचल प्रदेश की आदी, मोन्पा, खाम्ती, मेंबा, सिंहफो, शेरदुक्पेन, जखरिङ्, साजोलाङ्, खंबा, आपातानी, मिशमी, तांगसा, निशी, गालो आदि भाषाओं का तथा सिक्किम विश्वविद्यालय में सिक्किम राज्य की लेपचा जनजातीय भाषाओं का गहन अध्ययन-अध्यापन तथा शोध कार्य प्रारंभ होना चाहिए जिससे इन जनजातीय भाषाओं को संरक्षण और प्रोत्साहन मिल सके। विश्व भारती शांतिनिकेतन विश्वविद्यालय और राँची विश्वविद्यालय की तर्ज पर जनजातीय भाषा विभाग समूचे देश में स्थापित होने चाहिए। राँची और शांतिनिकेतन के संताली विभाग उल्लेखनीय है। मिजोरम की मिजो, मेघालय की खासी को भी संवैधानिक मान्यता दी जानी चाहिए। इसी प्रकार गोंडी और भीली भी मान्यता के योग्य हैं।

भारतीय जनजातीय भाषाओं के अध्ययन और संरक्षण का पक्ष कमजोर रहा है। हमारे देश में बहुसंख्यक भाषा-भाषियों ने जनजातीय भाषाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। सभी भारतीय जनजातीय भाषाएँ उपेक्षा का शिकार रही हैं और अभी भी हैं। अभी तक जनजातीय भाषाओं का सर्वेक्षण और उनके प्रयोक्ताओं की गणना का प्रश्न भी ठंडे बस्ते में पड़ा हुआ है। किसी को भी इस प्रश्न पर सोचने का समय नहीं है। जनजातीय भाषा सर्वेक्षण आज की सबसे बड़ी जरूरत है। साथ ही **केन्द्रीय जनजातीय भाषा-साहित्य अकादमी** की स्थापना समय रहते जरूरी है। पूर्वोत्तर भारत **केन्द्रीय जनजातीय भाषा अकादमी** पर भी केन्द्र सरकार को सोचना चाहिए। **पूर्वोत्तर भारत जनजातीय भाषा विश्वविद्यालय** का सवाल भी विचारणीय मुद्‌दा है। इसका क्रियान्वयन पूर्वोत्तर भारत के हित में अत्यंत जरूरी है।

उपर्युक्त बिंदुओं पर सभी भाषा प्रेमियों को सोचना चाहिए और भाषाई विरासत की समृद्ध परम्परा को संरक्षण दिया जाना चाहिए। इस अत्यन्त महत्व के उपेक्षित प्रश्न पर सभी लोगों को मिलकर सोचना चाहिए क्योंकि यह प्रश्न भारतीय परम्परा और भारत के सम्मान से जुड़ा हुआ है। इस प्रश्न का उत्तर विकास के नए युग का शुभारंभ कर सकेगा। यदि हमने इस प्रश्न पर नहीं सोचा तो हम अपनी अमूल्य सांस्कृतिक निधि को खो बैठेंगे। अमूल्य सांस्कृतिक विरासत के नष्ट होने से एक युग का अंत हो जाता है।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति बिल्डिंग,
हेदायतपुर, गुवाहाटी-781003

‘छप्पर’ उपन्यास में अभिव्यक्त दलित जीवन

कुमारी षिल्जा सी.

शिक्षा एम.ए., जे.आर.एफ., सम्प्रति शोधार्थी कण्णूर विश्वविद्यालय। लेखन में रुचि।

समय के साथ प्रतिबद्धता समकालीन हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। समकालीन उपन्यासकार सामाजिक चेतना का संवहन कर मानवीयता के परिप्रेक्ष्य में उसे प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। उपन्यासकार जीवन के रंग-बिरंगे छाया चित्रों को शब्दबद्ध कर अंदरुनी आँखों को उखाड़ने के लिए काल साक्षी के रूप में खड़ा होता है, और समाज की आगे की ओर इशारा करता है। कभी मौन की पट्‌टी बाँधकर रात के अंधेरे में छुप जाता है, फिर भी उसकी तीक्ष्ण एवं एकांत मौन अभिव्यक्ति की गर्मी पाकर उपन्यास का रूप धारण करता है।

समकालीन उपन्यास केवल भाषाई अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं, अनुवाचकों तथा श्रोताओं के मन पटल पर ऐसा स्वस्थ चिह्न छोड़ देता है, मानव का दिल तिलमिला हो उठता है और उससे ऊर्जा ग्रहण कर सामाजिक जीवन की विसंगतियों एवं अनियमितताओं को हटाने की कोशिशों में सक्रिय हो जाता है। मानव जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को संबोधित करने वाली रचनाएँ समाज की आगे की गति में पाथेय बन जाती हैं; यही कारण है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में हाशिएकृत लोगों की जीवन व्यथाओं को वाणी मिली है। समकालीन उपन्यासकार मानव की समस्याओं के जगत में सीधे प्रवेश करता है। इसलिए समकालीन उपन्यास में मानव ही केन्द्र में रहते हैं।

दलित साहित्य में सर्वप्रथम दलित शब्द की व्याख्या करनी होगी। शरणकुमार लिंबाले की राय में ‘‘दलित केवल हरिजन और नव बौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ भी दलित शब्द की परिभाषा में आती हैं।’’[1] हिन्दू धर्म व्यवस्था दलितों की छाया, स्पर्श और वाणी को अस्पृश्य मानती है। जन्म से ही उसे अस्पृश्य और गुनहगार माना है। दलितों को संपत्ति नहीं होनी चाहिए, वे गाँव के बाहर रहें, उन्हें सिर्फ गधे और कुत्ते ही संपत्ति के रूप में होने चाहिए। उसी प्रकार दलितों को सोने के आभूषण पहनने की भी इजाजत नहीं थी। इतना ही नहीं वे केवल मिट्‌टी के बर्तनों में ही अन्न ग्रहण करें कपड़े के रूप में कफन का ही प्रयोग करें, अपने नाम अमंगल और अभद्र रखें ऐसे अनेक आदेश हिन्दू धर्मग्रन्थों में भरे पड़े हैं।[2] हजारों वर्षों से दलितों की सत्ता, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। दलित इसके विरुद्ध कुछ मत कहे इसलिए ‘यह सब ईश्वर ने बनाया है’ ऐसा सिद्धांत प्रतिपादित करता है। दलितों की हजारों पीढ़ियाँ यह अन्याय सहन करती हुई जी रही हैं।

‘‘बाबासाहेब आम्बेडकर के विचारों से दलित जनता को अपनी गुलामी का एहसास हुआ। उनकी वेदना को वाणी मिली। दलितों की वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है।’’[3] दलित जनता के सामाजिक उद्धार की भावना तो उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारंभ हुई थी, लेकिन एक साहित्यिक धारा के रूप में इसका विकास 1980 के पश्चात्‌ हुआ था। ‘‘दलित साहित्य माने ‘दलितों का दुःख, परेशानी, गुलामी, अधःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य है।’’[4] दलित साहित्य में वर्ण व्यवस्था के प्रति घोर विरोध होता है। दलित साहित्यकार वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाकर उसके मूल को खत्म करने का प्रयास करता है, दलित साहित्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके गुणें से हो न कि उसकी जाति से। दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता, समता ओर बंधुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है। दलित साहित्यकार भाग्य-भगवान, स्वर्ग-नरक, मूर्ति-पूजा, बाहरी ढोंग आदि को नहीं मानता। पुराणों या अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों में लिखी गयी अवैज्ञानिक बातों का विरोध करता है, इसी विरोध के कारण इस साहित्य की भाषा में आक्रोश और फटकार व्यक्त करने वाले शब्दों की भरमार होती है।

दलित साहित्य दो प्रकार का होता है— स्वानुभूत साहित्य और सहानुभूति साहित्य। जो साहित्य दलितों द्वारा लिखा गया है वही दलित साहित्य है जिसमें ‘स्व’ अनुभव की गर्मी होती है। उनकी पीड़ा और आक्रोश होता है, अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष होता है। दूसरा है गैर दलितों द्वारा लिखित साहित्य। इसमें लेखक दलितों के प्रति केवल सहानुभूति दिखाता है। सहानुभूति साहित्य का भी एक अलग स्थान होता है। इससे

भी मानवीयता के प्रसार तथा नवीन मूल्य व्यवस्था का निर्माण होता है।

दलित साहित्य का विकास सबसे पहले मराठी में हुआ था अर्थात् हिन्दी के दलित साहित्य में मराठी दलित साहित्य का सख्त प्रभाव है। रमणिका गुप्ता की राय में–''दलित साहित्य भीमराव आम्बेडकर की विचारधारा को अपना मूल स्रोत मानता है। उनकी विचारधारा के केन्द्र में मनुष्य था, इसलिए उसकी सीमाओं के दायरे में पूरी मानवता समा जाती है।''[5] अम्बेडकर से प्रेरणा पाकर दलित साहित्यकार आदमियत की रक्षा के लिए काम चलाते हैं और अपनी रचनाओं के माध्यम से जाति-वर्ण व्स्वस्था के प्रति आवाज उठाते हैं। मराठी साहित्य का प्रभाव, अम्बेडकर की विचारधारा का प्रभाव, दलित आंदोलन, शिक्षा का प्रचार, सामाजिक अवबोध का विकास, आर्थिक विकास, दलित आध्ययन पीठों व अकादमियों की स्थापना आदि की वजह से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना विकसित हुई। दलित उपन्यासों में जाति बंधनों के विरुद्ध क्रांति अपनी दमित-पतित जीवन व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश यह सब देख सकते हैं। ऐसा ज्वलंत और सीधा-साधा अभिव्यंजन दलित उपन्यास की आत्मा है।

हिन्दी में दलित उपन्यासों की संख्या बहुत कम है, लेकिन इनकी जड़ें काफी गहरी हैं। सामाजिक यथार्थ को सही रूप से दलित उपन्यासों में प्रस्तुत करते हैं। साक्षन्त मस्के की राय में–''स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के दलित उपन्यासों में डॉ. रामजीलाल सहाय द्वारा लिखित सन् 1954 में प्रकाशित उपन्यास 'बंधन मुक्ति' को आधुनिक काल का पहला दलित उपन्यस कहा जा सकता है।''[6] हिन्दी के दलित उपन्यासकारों में जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. पी. वरुण, डॉ. धर्मवीर, प्रेम कपाडिया, सत्यप्रकाश, अजय नावरिया, आदि प्रमुख हैं।

जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित दो प्रमुख उपन्यास हैं–करुणा और छप्पर। करुणा का प्रकाशन 1986 में हुआ और छप्पर का प्रकाशन 1994 में। डॉ. पी. वरुण द्वारा रचित 'अमर ज्योति' (1982), डॉ. धर्मवीर का 'यात्रानुमा' (1995), मोहनदास नैमिशराय का पहला उपन्यास 'क्या मुझे खरीदोगे' (1990), 'मुक्ति पर्व' (1999), 'वीरांगना झलकारी बाई' (2003), नैमिशराय जी का 'आज बाजार बंद है' (2004), डॉ. धर्मवीर का 'पहला खत', प्रेम कपाडिया का 'मिट्टी की सौगंध', सत्यप्रकाश का 'जस तस भई सवेर' आदि श्रेष्ठ दलित उपन्यास की कोटि में आते हैं।

दलित जीवन के यथार्थ का चित्रण और संघर्ष के तनाव का संयोग 'छप्पर' नामक उपन्यास में देख सकते हैं। समाज में दमित लोगों के यथार्थ चित्रण, शोषण के खिलाफ संघर्ष, परिवर्तन की आशापरक दृष्टि आदि इस उपन्यास में एक साथ सम्मिलित हैं। केवल दलित जनता को ही नहीं, पूरी मानव जाति को प्यार करने वाला, सब कहीं समानता चाहने वाला, समाधान की इच्छा रखने वाला एक दलित मन 'छप्पर' में देख सकते हैं। अहिंसा एवं शांति पर आधारित विद्रोह को उन्होंने चुन लिया है।

'छप्पर' एक परिवर्तनकामी उपन्यास है इसमें दलित चेतना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इसमें मातापुर नामक गाँव के तथा वहाँ की शोषित जनता के नवजागरण की कथा है। इसकी कथावस्तु एक मजदूर परिवार के युवक चंदन की शिक्षा के लिए शहर जाने की कहानी है जिससे उसकी माँ रमिया और पिता सूक्खा को गाँव के ब्राह्मणों, बनियों ओर ठाकुरों द्वारा मिलकर उत्पीड़ित किया जाता है कि वह सदियों से चली आ रही परंपराओं को तोड़कर अपने लड़के को शहर में पढ़ने क्यों भेज रहे हैं; इससे समाज की उच्चवर्गीय लोगों की नाक कट जाएगी। ''ब्राह्मण और ठाकुरों से लेकर लाला साहूकार तक सब है इस गाँव में और बड़े-बड़े पैसे और हैसियत वाले पर आज तक किसी का बेटा शहर पढ़ने नहीं गया। लेकिन सुक्खा चमार का बेटा पढ़ने शहर चला गया। नाक कट गई सबकी। सबके सिर पर मूत दिया एक चमार ने...''[7] गाँव के ठाकुरों आदि ने सूक्खा को मनाने के लिए आया लेकिन वह इन दबावों के सामने झुकने को तैयार नहीं थे। इसके परिणामस्वरूप उसे बेघर होना पड़ा। सुक्खा का एकमात्र सपना है कि बेटा पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बन जाए। इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। माँ-बाप की अदम्य इच्छा एवं त्याग की आग में जन्मा एक प्रतिक्रियाबद्ध मन चंदन के विद्रोह को आग लगाता है। निम्न जाति के लोगों की शिक्षा निषेध करने वाले सवर्ण सत्ता का तथा उससे विद्रोह करने वाले दलित मन का चित्रण भी इस उपन्यास में हम देख सकते हैं।

यातनाओं तथा दुःख के पीछे आने वाले सुखमय दिन की, कभी न कभी बाहर जाने वाले जीवन की इच्छाएँ शोषित जनता के मन में हमेशा कायम हैं। मेहनत-मजदूरी करने वाले लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण उपन्यास में है। उनकी गरीबी का, विवशता का, भूख का चित्र सुक्खा और रमिया के जीवन में देख कसते हैं। ''जो लोग दलित और दरिद्र हैं उनके पास रहने-सहने तथा एकाध पशु जो वह पालते हैं, उन सबके लिए कुल जमा गारा मिट्टी की दीवारों पर घास-फूस के छप्पर या झोपड़ियाँ हैं इकछत्ती-दुछत्ती। अधिक हुआ तो किसी के कच्चे कोठे पर बांस की खपच्ची या खपरैल की छत होती है या पशुओं के लिए छान झोपड़ी अलग। यहीं तक सीमित है उनकी साधन संपन्नता।''[8] दलित लोग अत्यधिक निर्धन होते हैं। उन्हें ठीक से खाना भी नहीं प्राप्त होता, उसी प्रकार पहनने के लिए कपड़े भी नहीं होते। इस कारण से कुछ लोग महीनों तक नहाते भी नहीं। उसी प्रकार दरिद्र गर्भवती स्त्रियों को फुटपाथ पर खुले आकाश के नीचे बच्चे पैदा करना पड़ता है। ''यह एक विवशता है, एक त्रासदी

है उनके जीवन की, जिसे नियति का आदेश मान बैठे हैं ये लोग।''[9]

दलित आदमी पर अस्पृश्यता दिखाने वाले सवर्ण लोग औरतों पर यह नहीं दिखाते। वे औरतों पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। कमला इस प्रकार बलि चढ़ाई गई दलित युवती है। सामूहिक बलात्कार का शिकार है कमला। शोषित वर्गों के लिए लड़ने वाले चंदन के मन की आग को तेज करने में कमला की पीड़ा भी कारण हो जाती है। इस उपन्यास में अंधविश्वासों में जकड़े हुए दलितों को शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता पर लेखक जोर देते हैं। मानसून लाने के लिए यज्ञ का आयोजन करने वाले झुग्गी निवासियों का चंदन विरोध करता है और समझता है कि यह मात्र अंधविश्वास है और कुछ नहीं। वे लोग चंदन की बातों से प्रभावित होते हैं और यज्ञ करने के विचार को त्याग देते हैं। यहाँ एक दलित युवक के विचारों की समाज द्वारा स्वीकृति स्पष्ट हो रही है। इससे समाज में उसकी हैसियत बढ़ जाती है और आगे बहुत कुछ करने की प्रेरणा उसे मिल जाती है।

वास्तव में चंदन आधुनिक दलित चेतना के प्रतीकात्मक पात्र के रूप में पाठकों के सम्मुख आता है। जिस परिपक्वता के साथ वह अपने मित्रों को समझाता है वह आज की दलित पीढ़ी के लिए काफी विचारणीय व स्वीकार्य है। वह अपने मित्र रामहेत को समझाता है कि सामान्य विद्यार्थी की तरह तुम भी सब कुछ कर सकते हो, लेकिन सिर्फ दिमाग, इरादा और इच्छा शक्ति से काम नहीं बनेगा। इसके लिए जाति के लेबल को पार करना होगा जो कि दलितों के रास्ते में पत्थर-सा बना हुआ है। चंदन अपने दोस्तों से यह भी कहता है कि व्यक्तिगत हित के साथ-साथ समाज का हित भी आवश्यक है। इससे प्रभावित होकर वे सब सामाजिक उत्थान में हाथ बँटाने का संकल्प करते हैं। यहाँ तो एक प्रकार की नई चेतना को जाग्रत करने में चंदन सफल हो रहा है जो एक जनांदोलन का रूप ले लेता है और दलित एकजुट होकर धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण के विरुद्ध विद्रोह कर देते हैं।

दलित लेखक हमेशा सत्य की खोज करते हैं। समस्याओं के प्रति उनकी दृष्टि वास्तविक है। चन्दन के चरित्र को यथासंभव संयमित एवं संतुलित बनाए रखने का प्रयास जयप्रकाश कर्दम ने किया है। शोषक वर्ग या सवर्ण सत्ताधारी वर्ग के प्रति उसके मन में तीखा विद्रोह भी है और सहिष्णुता भी। ठाकुर साहब की बेटी रजनी चंदन के द्वारा चलाने वाले सामाजिक परिवर्तन में उसका साथ देने वाली है। वे अपने पिता जैसे लोगों की कारनामों का घोर विरोध करती है, और उन्हें सजा दिलाने की इच्छा रखती है। लेकिन चंदन उनसे उन लोगों को सजा के बजाय सुधार देने का प्रयास किया जाना चाहिए ऐसा कहते हैं।

चन्दन के अथक प्रयासों का सुखद परिणाम उसके समाज में जरूर होता है। समाज में एक नई चेतना जन्म लेती है। उसी प्रकार चंदन के आंदोलनकारी कामों में साथ देने वाली रजनी हमेशा शोषितों के लिए दुखित है। वह इस शोषण प्रक्रिया को समाप्त करना चाहती है और इसके लिए प्रयत्न भी करती है, सफलता भी पाती है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि समाज के दमित लोगों की पीड़ा; विववशता, भूख, गरीबी, निषेध आदि के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ मोह, आशा, संघर्ष, करुणा आदि का समन्वय दलित रचना की विशेषता है। यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ संघर्ष के तनाव के कारण दलित रचना अन्य साहित्य विधाओं में अपनी अलग अस्मिता बनाती है। यही भिन्नता दलित लेखन की सफलता का कारण है। जयप्रकाश कर्दम ने भारतीय समाज के दलित आंदोलन और उससे हुए परिवर्तनों को केन्द्र में रखकर 'छप्पर' का सृजन किया है। इस उपन्यास में दलित-शिक्षा के प्रसार पर विशेष जोर दिया गया है ताकि वे अपने अधिकार एवं हैसियत समझ पाएं और उसके लिए प्रयत्न करें। 'छप्पर' में जो आंदोलन चलाया गया था उसके लिए अहिंसा और शांति के मार्ग को अपनाया गया है वह बिल्कुल सराहनीय है। इस प्रकार दलित साहित्य की प्रतिनिधि रचना के रूप में यह उपन्यास सफल है।

संदर्भ–

1. शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ. 42
2. वही, पृष्ठ 43
3. वही।
4. वही, पृष्ठ 42
5. रमणिका गुप्ता, दलित हस्तक्षेप, पृष्ठ 15
6. साक्षान्त मस्के, परंपरागत वर्ण व्यवस्था और दलित साहित्य, पृष्ठ 89
7. जयप्रकाश कर्दम, छप्पर, पृष्ठ 31
8. वही, पृष्ठ 5
9. वही, पृष्ठ 10-11

शोधार्थी, कण्णूर विश्वविद्यालय
काल्लेन हाउस, अतझाकन्नू, पुल्लोप्पी,
पोस्ट-कोट्टाली, कण्णूर-670005 (केरल)

भूमण्डलीकरण के युग में हिन्दी

वीरेन्द्र कुमार यादव

तीन काव्य-संग्रह। भारत सरकार की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। कई पत्रिकाओं एवं स्मारिकाओं का संपादन। विश्व हिन्दी दिवस (10 जनवरी) भारत सरकार के प्रस्तावक।

भाषा मनुष्य की भावात्मक अभिव्यक्ति का साधन है और क्योंकि इसका संबंध भावना से है तो यह एक संवेदनशील मुद्दा भी है। भाषा की नियति उसके बोलने वालों के साथ जुड़ी होती है। जहाँ तक हिन्दी भाषा की नियति और विकास का सवाल है तो यह एक विडम्बना ही है कि यद्यपि विश्व में इसके बोलने वालों की संख्या 70 करोड़ है फिर भी शायद किसी देश में भाषा को लेकर इतना विवाद नहीं होगा जितना कि भारत में हिन्दी को लेकर। लेकिन इतने विवादों के बावजूद भाषा के रूप में हिन्दी की प्रगति कभी रुकी नहीं। कारण यह हमारी जनभाषा रही है।

हिन्दी को यदि हम भौगोलिक सीमाओं से निकाल कर, विश्व पटल पर रखकर देखें तो पाएँगे कि समस्त विवादों से घिरे होने के बावजूद हिन्दी आज विश्व की प्रधान महत्वपूर्ण भाषाओं में है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भूण्डलीकरण के इस युग में विश्व की कई भाषाओं पर निरन्तर दवाब पड़ रहा है और इसमें से कई धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है और कुछ लुप्त होने के कगार पर हैं। पर इस संदर्भ में हिन्दी का अस्तित्व संकट में नहीं है। इस बात की पुष्टि हाल ही में यूनेस्को द्वारा प्रकाशित ATLAS OF LANGUAGE IN DANGER OF DISAPPEARING में लेखक स्टीफन वूर्म ने भी इन शब्दों में की है–''In the Indian subcontinent, relatively few languages are in danger of disappearing in spite of the multiplicity of languages there. The reason for their active maintenance is the presence of very widespread egalitarian bi-and multingualism there. The language which do appear to be in danger of disappearing are tribal and rather relatively small langauges which are losing speakers to the various large lingua franca in the Indian subcontinent.'' (भारतीय उपमहाद्वीप में कई भाषाओं की मौजूदगी के बावजूद अपेक्षाकृत कुछ ही भाषाओं के लुप्त होने की आशंका है। इसका कारण यहाँ भाषाओं के प्रति समानतावादी दृष्टिकोण रखने वले द्विभाषीय और बहुभाषीय लोगों की उपस्थिति है। जिन भाषाओं के लुप्त होने की आशंका है वे जनजातीय और दूसरी अन्य बोलियाँ हैं, जिनको बोलने वाले लोगों का रुझान भारतीय उपमहाद्वीप की दूसरी बड़ी और प्रमुख बोलियों की ओर होता जा रहा है।)

हिन्दी के अस्तित्व के प्रति इस आवश्यकता के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी भाषा पर निरंतर एक दबाव बना हुआ है और दिन-प्रतिदिन चुनौतियाँ बढ़ रही हैं। हिन्दी भाषा और लक्षित भाषाओं के इस संकट से उबरने के लिए यह जरूरी है कि इस क्षेत्र में जरूरी कदम उठाए जाएँ। व्यापारी जगत की भाषा के रूप में हिन्दी का विस्तार हो और सूचना क्रांति में वह अन्य भाषाओं के समकक्ष खड़ी हो सके, इसके लिए जरूरी है कि हिन्दी की संभावनाओं को आधुनातन परिप्रेक्ष्य में विकसित किया जाए और हिन्दी के विश्वव्यापी प्रसार और प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों का हल खोजा जाए।

हिन्दी के विषय में एक रोचक तथ्य यह है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग भाषा के सन्दर्भ में सबसे पहले विदेशी विद्वानों ने ही किया। इसी प्रकार हिन्दी भाषा के अध्ययन और व्याकरण लेखन की परम्परा भी विदेशी विद्वानों द्वारा ही शुरू की गई। हिन्दी भाषा का पहला व्याकरण जान जोशुओं केटिलयर ने लिखा, जो डच दूत बनकर भारत आए थे। हिन्दी भाषा साहित्य तथा व्याकरण के बारे में विस्तृत सूचनाएँ देने वाला प्रथम ग्रंथ 1773 में लंदन में प्रकाशित हुआ। यह जान फर्गुसन की हिन्दुस्तानी डिक्शनरी थी। इस पुस्तक में उन्होंने हिन्दी को देश की सर्व प्रचलित भाषा बताया है, जिसे शिक्षित, अशिक्षित, हिन्दी, मुसलमान, शहरी तथा ग्रामीण सभी बोलते हैं तथा जो विदेशियों के लिए भी उपयोगी संपर्क भाषा है।

विदेशों में हिन्दी शिक्षण का कार्य सबसे पहले मिशनरियों द्वारा शुरू किया गया था, जिनका उद्देश्य भारतीयों का धर्म परिवर्तन

था। मिशनरियों ने इन प्रवासी भारतीयों को हिन्दी सिखाई और हिन्दी में अनूदित बाईबल पढ़ना सिखाया। इनके द्वारा ऐसी पाठ्य पुस्तकें और तैयार की गई, जिनका उद्देश्य भाषा के प्रचार के साथ धर्म का प्रसार भी था। यद्यपि आर्य समाज और सनातन धर्म सभा ने इसके विरोध में सनातनी शिक्षक नियुक्त किए तथापि विदेशों में हिन्दी के प्रचार और प्रसार में इन मिशनरियों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विदेश में हिन्दी शिक्षण का काम सरकारी संस्थाओं के अतिरिक्त आर्य समाज जैसी संस्थाएँ आज भी बड़े स्तर पर चला रही हैं।

अंतरराष्ट्रीय जगत में भारत ने निश्चित रूप से अपना एक स्थान बनाया है और उसकी इस विश्व प्रतिष्ठा में, विश्व में फैले प्रवासी भारतीयों की एक अहम भूमिका है। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों की एक अहम भूमिका है। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों के प्रयासों का ही यह परिणाम है कि आज विदेशों में हिन्दी का अध्ययन और अध्यापन वहाँ के प्रमुख विश्वविद्यालयों में हो रहा है। अमेरिका, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, जापान में हिन्दी का अध्ययन प्रारंभिक स्तर से लेकर शोध स्तर तक होता रहा है और विदेशों में भी आज हिन्दी का स्तरीय साहित्य रचा जा रहा है। फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद और दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी केवल भारतीयों के बीच ही नहीं बल्कि इन देशों के मूल निवासियों के बीच भी समझी और बोली जाती है। फीजी में तो हिन्दी को संवैधानिक संसदीय मान्यता भी प्राप्त है। विदेश में विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं का अध्ययन अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में ही प्रारम्भ हो गया था। किंतु यह मुख्यतः संस्कृत में था। विलियम जोंस, श्लेगल, मैक्सम्यूलर आदि जैसे विद्वानों ने विश्व को संस्कृत भाषा के साहित्य से परिचित कराया। आज विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा उच्च अध्ययन संस्थानों में हिन्दी के अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान की व्यवस्था है। मॉरीशस और फीजी के अतिरिक्त अमेरिका तथा कनाडा में आज हिन्दी का अध्ययन और अध्यापन सबसे व्यापक स्तर पर हो रहा है। विश्व के सभी महाद्वीपों और लगभग सभी देशों में हिन्दी का प्रसार हो चुका है। इसका भूविस्तार सबसे अधिक है और यह अंग्रेजी के समकक्ष ही भारत की प्रधान भाषाओं में से एक हैं। भारत के बाहर नेपाल, सूरीनाम, बर्मा, पाकिस्तान, फीजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद तथा दक्षिण अफ्रीका में बसे लाखों प्रवासी भारतीय मातृभाषा के रूप में हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं।

विश्व की भाषाओं के सर्वेक्षण यह बताते हैं कि प्रधान यूरोपीय भाषाओं में अंग्रेजी, जर्मनी तथा फ्रांसीसी भाषाओं के बोलने वाले लोगों के प्रतिशत में पिछले तीन दशकों में निरंतर गिरावट आई है और अरबी तथा हिन्दी बोलने वालों का प्रतिशत बढ़ा है। यह सही है कि आज भी अंग्रेजी भारत में प्रतिष्ठित वर्ग के मध्य देश की संपर्क भाषा है किन्तु जनभाषा और व्यापक उपभोक्ता जगत तक पहुँचने का एकमात्र साधन हिन्दी ही है।

विश्व भाषा के रूप में हिन्दी का शिक्षण राष्ट्रीय महत्व का विषय है इसलिए यह जरूरी है कि विदेश में हिन्दी शिक्षण का मूल्यांकन समय-समय पर होता रहे और विदेशियों के लिए हिन्दी भाषा के ऐसे पाठ्यक्रम उपलब्ध हों जिससे वे चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग को समझने और व्यवहारिकता में लाने की अपेक्षित योग्यता प्राप्त कर सकें। अध्ययन और अनुसंधान की दिशा में प्रगति के लिए अधुनातन संदर्भ ग्रन्थों का निर्माण समय की माँग है। हिन्दी आज निश्चित रूप से जन-भाषा के रूप में लोकप्रिय है लेकिन इसके विश्वव्यापी प्रसार के लिए यह भी जरूरी है कि हम भाषा वैज्ञानिकों, भाषा शास्त्रियों आदि की मदद से द्विभाषी कोष ग्रंथ और तकनीकी साहित्य का निर्माण कर हिंदी को साहित्यिक भाषा के दायरे से बाहर निकालें और इसे विश्व भाषा के रूप में जीवित रखें।

भूमण्डलीकरण के इस युग में जब देशों की भौगोलिक दूरियाँ मिटती जा रही हैं समय और गति महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं, बाजार भाषा, व्यापार जगत का मापदण्ड होता जा रहा है तो ऐसे में हिन्दी को इन चुनौतियों का सामना करके वास्तविकता से जूझना है और केवल जनभाषा के रूप में ही नहीं बल्कि बाजार भाषा के रूप में भी अपने को स्थापित और सिद्ध करना है। इसमें कोई दो राय नहीं कि हिन्दी आज विश्व की प्रधान भाषाओं में से एक है और इसका भूमण्डलीकरण भी हो चुका है पर बावजूद इसके यह जरूरी है कि वह अपनी कमियों को समझे, अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए सार्थक योजनाएँ बनाए और भूमण्डलीकरण के वर्तमान परिवेश में अपनी संभावनाओं को विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहे।

153, एम.आई.जी., लोहिया नगर, कंकड़बाग,
पटना-800020 (बिहार)

मंचीय कवि बच्चन और उनकी मधुशाला

डॉ. सोनवाणे राजेन्द्र 'अक्षत'

संपादक, पत्रकार और साहित्यकार। 'लोकयज्ञ' नामक त्रैमासिक पत्रिका का संपादन। विभिन्न सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त।

हिन्दी काव्य जगत में जिन दो कवियों को मंचीय कवि होने के कारण लम्बे समय तक साहित्य की मुख्य धारा से हटकर लोगों ने सुना और पढ़ा वे कवि थे कविवर हरिवंश राय बच्चन और गोपालदास नीरज। हिन्दी साहित्य में कवियों की मोटे तौर पर दो श्रेणियाँ रही हैं। एक वे जो शुद्ध साहित्यिक कवि हैं जो पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाये जाते हैं और दूसरे वे जो मंचीय कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। निराला इसका अपवाद रहे हैं, जो मंच और साहित्य में समादृत रहे। ''हरिवंश राय बच्चन, गोपालशरण सिंह नेपाली, गोपालदास नीरज, बलवीर सिह रंग 'शलभ', श्री राम सिंह जैसे अनेक कवियों ने स्तरीय रचनाएँ दी और विपुल साहित्य रचा किन्तु साहित्य के आलोचकों ने उनकी उपेक्षा ही की।''[1]

कविवर हरिवंश राय बच्चन की अगर बात करें तो उनकी कविताएँ अपनी पहली उठान में जीवन के विविध रंगों की कविताएँ बनकर उभरी। बच्चन जी को 'मधुशाला' ने सबसे लोकप्रिय मंचीय कवि बना दिया। 'मधुशाला' उनका प्रथम मौलिक काव्य संग्रह था। जिसका प्रकाशन सन् 1935 में हुआ। मधुशाला के प्रकाशन के साथ ही बच्चन का नाम सबसे लोकप्रिय कवियों में गिना जाने लगा। 'मधुशाला' की खूबी है कि यह सिर्फ

शराब-सौंदर्य की बातें ही नहीं करती बल्कि जीवन, सौंदर्य उसकी सार्थकता और उसकी नश्वरता के बारे में भी बहुत कुछ कहती है जो कि निर्विवाद रूप से हिन्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यकृति सिद्ध हुयी। यद्यपि मात्र लोकप्रियता कोई साहित्यिक मूल्य नहीं फिर भी 'मधुशाला' इतने लम्बे समय तक न केवल लोकप्रिय बनी रही, बल्कि उसने लोकप्रियता के नए मानदण्ड स्थापित किये। मधुशाला में धार्मिक संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, जाँत-पाँत, छुआछूत जैसी समष्टिगत समस्याओं के रागात्मक समाधान सुझाने के साथ-साथ व्यक्ति मन की ऐसी अनुभूतियों को वाणी दी गयी, जो सामान्य पाठकों को नितान्त निजी लगती है। यह चमत्कार हिन्दी में पहली बार हुआ था और शायद यही 'मधुशाला' की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण था। उसकी अति लोकप्रियता से कवि बच्चन के उत्तरवर्गीय प्रयोग उपेक्षित रह गए फिर भी जनकवि होने का श्रेय उन्हें मिला ही है।''[2]

''मदिरालय जाने को घर से चला है,
पीने वाला
किस पथ से जाऊँ?
असमंजस है वह भोलाभाला
अलग अलग पथ बतलाते सब
पर मैं बतलाता हूँ
राह पकड़ तू एक चला चल
पा जाएगा मधुशाला।''

बच्चन जी पर हालावादी होने का आरोप लगाया गया। इतना ही नहीं कई लोगों ने तो उन्हें हालावाद का जनक तक मान लिया। मगर स्वयं बच्चनजी ने अपने लेख 'मैं और मेरी मधुशाला' शीर्षक लेख में स्पष्ट लिखा है कि ''इन कविताओं को 'हालावाद' के नाम से पुकारा गया। यह तो सतही बात की गयी। इन कविताओं को प्रतीकवादी कहा जाता तो अधिक वैज्ञानिक होता। मैंने इसकी महत्ता केवल इतनी मानी कि इस कविता को लोग छायावाद के गल्ले में न डाल सकें। वह उससे कुछ अलग चीज थी, आज भी यह अपनी सत्ता अलग बनाये हुए है? शायद अभी तक इस बात की छानबीन होना बाकी है। कि वह कौन से कारण हैं जिन्होंने इसे यह पृथकता दी और प्रमुखता दी।'' समय बदला लोग बदले मगर आज भी उनकी मधुशाला लोकप्रिय बनी हुयी है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विशाल शिवाजी हॉल में दिसम्बर 1933 में बच्चन ने पहली बार मधुशाला का मंचीय

पाठ किया। अंग्रेजी के प्रो. मनोरंजन प्रसाद सिंह अध्यक्ष थे। वैसे तो पं. अयोध्या सिंह को अध्यक्षता करनी थी परन्तु किसी कारणवश वह नहीं आ सके थे। ''कविताएँ अन्य कवियों को भी सुनानी थी मगर बच्चन जी के आगे कोई टिक नहीं पाया।'' दूसरे दिन केवल बच्चन और 'मधुशाला' के लिए एक और सम्मेलन रखा गया। इस संबंध में प्रो. मनोरंजन कहते हैं कि ''मस्ती के साथ झूम-झूमकर जब बच्चनजी ने अपने सुललित कंठ से 'मधुशाला' को सस्वर सुनाना शुरू किया तो सभी श्रोता झूम उठे। नवयुवक विद्यार्थी ही नहीं बड़े-बूढ़े भी झूम उठे। स्वयं उनके ऊपर भी उसका नशा छा गया। पिछले दिन सम्मेलन में उतने विद्यार्थी न थे। जब उनकी शोहरत फैली ओर अनेकानेक कंठों से छात्रावासों में तथा इधर-उधर 'मधुशाला' की मादक पंक्तियाँ निकलने, हवा में थिरकने लगी—

''जितनी दिल की गहराई हो
    उतना गहरा हो प्याला,
जितनी मन की मादकता हो
    उतनी मादक हाला,
जितनी डर की भावुकता हो
    उतना सुन्दर साकी है,
जितनी ही जो रसिक, उसे है
    उतनी रसमय मधुशाला।''

जिन-जिन लोगों ने सुना वे तो पागल हो गए थे। जिन लोगों ने नहीं सुना वे भी पागल हो गए। नवभारत टाईम्स के पूर्व संपादक अक्षय कुमार जैन भी इस सर्वप्रथम काव्यपाठ में मौजूद थे। बच्चन जी के छात्रावास में पड़ोस में ही रहते थे। उनके अनुसार ''मैंने छिपे-छिपे उन्हें सुना और दूसरे दिन विशाल शिवाजी हॉल में उन्होंने उन्मुक्त कंठ से काव्यपाठ किया। मुझे कुछ ऐसा लगा कि इस युवक कवि के स्वर में अपार आकर्षण है और उसकी कविता में नवयुवकों के मन की चीज कही गयी है। मधुशाला की पंक्तियों को वहाँ मौजूद हजारों सुनने वालों ने एक साथ दुहराया।... उनके शब्दों से जैसे हमारे मन के बंधन खुल रहे थे। नवयुवक तो पागल थे ही, बड़ों में भी प्रक्रिया हो रही थी।''[3]

मधुशाला के बारे में वह स्पष्ट कहते हैं—

''भावुकता अंगूर लता से,
    खींच कल्पना की हाला
कवि साकी बनकर आया है,
    भरकर कविता का प्याला।''

वस्तुतः बच्चन दार्शनिक भाव-बोध के कवि थे एक जगह वह कहते हैं—

''धर्म ग्रन्थ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला
मंदिर मस्जिद गिरजे सबको
तोड़ चुका जो मतवाला
पंडित, मोमिन पादरियों के
फंदों को जो काट चुका
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला।''

सांप्रदायिकता सामाजिक सद्भाव और सौहार्द्र को व्यक्त करने के लिए बच्चन जी ने मधुशाला को माध्यम बनाया—

''मुसलमान और हिन्दू है दो
एक मगर उनका प्याला
एक मगर उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला
दोनों रहते हैं एक
न जब तक मंदिर-मस्जिद जाते,
बैर बढ़ाते मंदिर मस्जिद
मेल कराती मधुशाला।''

'मधुशाला' में ऐसी कुल 135 रुबाईयाँ संकलित हैं। मधुशाला के पदों में जब बच्चन अपने स्वर माधुर्य छलकाते हैं तो यह केवल स्वर का ही जादू नहीं बल्कि उसमें निहित भावों की चुंबकीय शक्ति काव्य रसिकों को संवेदना के धरातल पर जुड़ जाता है। एक उदाहरण देखिए—

''मेरी जिह्वा पर हो अन्तिम वस्तु
    न गंगाजल हाला।
मेरे होठों पर हो अन्तिम वस्तु
    न तुलसी दल प्याला।
दे वे मुझ को कन्धा जिनके
    पग डगमग करते हैं।
और जलूँ उस ठौर जहाँ पर
    कभी रही हो मधुशाला।''

बच्चन जी की काव्य-यात्रा का पहला चरण मधुकाव्य ही रहा। जिसके अन्तर्गत 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' का सृजन हुआ। 'मधुबाला' और 'मधुकलश' में तत्कालीन राजनैतिक आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न कुण्ठा और निराशा प्रतिबिम्बित हुई तो मधुशाला में कवि के अनुसार, ''जीवन की मदिरा जो हमे विवश होकर पीनी पड़ी है, कितनी कड़वी है। कितनी! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दुखदायिनी चेतना को, विस्मृति के गर्त में गिरायेगी तथा प्रबल दैव, दुर्दम काल, निर्भय कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर कुटिल आघातों से रक्षा करेगी। क्षीण शुद्र, क्षणभंगुर, दुर्बल मानव के पास जग जीवन की समस्त अधिव्याधियों की यही एक महौषधि है... ले इसे पान कर और मद के उन्माद में अपने को, अपने दुःख को, अपने दुखद समय के कठिन चक्र को भूल जा।''

विभाजन की घटना को मधुशाला के प्रतीक से कवि ने अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति दी, जहाँ टूटने का दर्द भी है और एकजुट रहने का आह्वान भी। अखंडता का विश्वास भी...

''देश दुश्मनों ने जब हम में
    जहर फूट का डाला था।
भूल गए जो तब टूटी थी
    लाखों प्यालों की माला?
सीख सबक उस कटु अनुभव से
    अब हमने कस्द लिया।
फिर न बटेंगे पीने वाले
    फिर न बटेंगी मधुशाला।''

बच्चन और उनकी 'मधुशाला' के जादू के संबंध में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' सन् 1934 में दिल्ली में हुए कवि सम्मेलन की बात बताते हुए लिखते हैं ''कवि जल्दी जल्दी बदले जा रहे थे पर समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा था। तभी एक तरुण स्वयं उठकर मंच पर आया। गहरे आत्मविश्वास से उसने जनता को निहारा, दोनों हाथ फैलाकर उसने जनता को आश्वासन दिया और हाथों को ऊपर फैलाए-फैलाए, जैसे वह चील के उड़ने का अभिनय कर रहा हो, उसने अपनी कविता पढ़नी आरम्भ कर दी। बस खचाखच भरा पंडाल एकदम शांत हो गया और कविता जम गयी। उस तरुण ने काफी समय लिया, काफी रस भी उसने श्रोताओं को दिया।''[4] आज भी जब अमिताभ बच्चन और मन्ना डे मधुशाला का ससंगीत काव्य पाठ करते हैं तो पाठक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

भोगे हुए यथार्थ एवं जीवनानुभूतियों से प्रेरणा ग्रहण कर काव्य रचना करने वाले बच्चन को किसी वाद विशेष का कवि नहीं कहा जा सकता। उमर खैय्याम की रुबाइयों से मंच जगाने वाला यह कवि अपनी कविता मधुशाला से अजर अमर बन गया। बच्चन की कविता 'मधुशाला' के प्रतीकों और उनके कविकर्म पर अनेक ऐसे बिन्दु हैं जिस पर नये सिरे से सोचना और समझना होगा। वे केवल प्रेम, शृंगार या व्यक्तिवादी कवि न होकर सामाजिक सरोकारों को अभिव्यक्ति देने वाले एक सजग-समर्थ रचनाकार भी थे।

कवि सम्मेलनों में अपनी मादक, मधुर, रस से छलकती कविताओं का पाठ कर बच्चन जी ने पर्याप्त ख्याति (तथा द्रव्य भी) अर्जित की। परन्तु जैसे जैसे कवि सम्मेलनों का स्तर गिरता गया वैसे वैसे मंचीय कविता पाठ के प्रति उनकी रुचि कम होती गयी। मंचीय कवियों में हुल्लड़ता, फूहड़ता, अश्लीलता और नौटंकीपन आ गया। मंचीय कविताओं में सार तत्व की कमी खलने लगी। केवल तर्ज अदायगी बच गयी। यह स्थिति तब भी थी और आज भी है। आजकल के मंचीय कवि केवल चुटकुलों और हास्य फुलझड़ियां पेशकर नौटंकी करते हैं, रंग जमाते हैं। वर्तमान कवि सम्मेलनों के बारे में वह एक जगह लिखते हैं कि ''हास्य व्यंग्य हुड़दंग के तुकबंदों ने कवि सम्मेलनों का वातावरण इतना बिगाड़ दिया है कि निकट भविष्य में शायद ही कभी वह उच्च कोटि की कविताओं का फोरम बन सके।''[5] विभिन्न भावधाराओं से समन्वित, विभिन्न शैलियों का प्रयोग कर महाकवि हरिवंश राय बच्चन ने आधुनिक हिन्दी कविता को नया रूप प्रतिमान दिया है। उनके जैसा मंचीय कवि न कभी पहले हुआ था और न आगे कभी होगा।

''यम आयेगा साकी बनकर
    साथ लिए काली हाला।
पी न होश फिर आएगा।
    सुरा-विशुध यह मतवाला।
यह अंतिम बेहोशी, अंतिम साकी,
    अंतिम प्याला है।
पथिक प्यार से पीना इसको
    फिर न मिलेगी यह मधुशाला।''

अपनी माटी के दलित विशेषांक में डॉ. विमलेश शर्मा अपने आलेख 'काल से होड़ लेती मधुशाला' में लिखती है ''यह मधुशाला निःसन्देह पाठकों के हृदय का कंठहार है। यह खुमारी इश्क मिजाजी, जीवन का सार तत्व, निगूढ़ रहस्य यह सब एक साथ अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। यह मधुशाला निःसंदेह इस युग की गीता है। जो जिजीविषा से भरपूर है, रस से सराबोर है। अतः क्षणिक जीवन में भी मस्ती का आनन्द सिर्फ और सिर्फ मधुशाला ही दे सकती है। आज के मानव जीवन की इस भूल भुलैय्या में कर्म अपना मार्ग भूल गया है। मधुशाला ही पथ दिखलाएगी।''

संदर्भ–

1. आधुनिक अत्याधुनिक हिन्दी कवि डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित तथा डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह।
2. सरस्वती सुमन (पत्रिका), सम्पादक, डॉ. आनन्द सुमन सिंह।
3. आदान-प्रदान (पत्रिका), सम्पादक, डॉ. एम. गोविन्द राजन।
4. राष्ट्रीय स्तरीय पत्रिका 'लोकयज्ञ', सम्पादक, डॉ. सोनवणे राजेन्द्र 'अक्षत'।
5. वर्तमान साहित्य (पत्रिका), विभूति नारायण राय।
6. मधुमती, सम्पादक, डॉ. अजित गुप्ता।
7. hindi.oneindia.com
8. kavitakosh.org.com

हिन्दी विभाग प्रमुख,
स्वा. सावरकर महाविद्यालय, बीड़,
जिला-बीड़-431122 (महाराष्ट्र)

दोहरा आतंक

ज्योति ठाकुर

युवा लेखिका ज्योति ठाकुर दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में पीएच.डी. शोधरत एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, अनूदित रचनाएँ प्रकाशित।

अभी कुछ दिनों पहले की बात है। एक मित्र की शादी में जाने का न्यौता मिला, पर जा नहीं पायी। क्यों? शादी जिस होटल में होने वाली थी, वह मेरे छात्रावास से लगभग 36 कि.मी. दूर गाजियाबाद में था। रात में इतनी दूर की यात्रा सुरक्षित नहीं है। कैब की सुविधा ली जा सकती थी मगर कैब ड्राइवरों द्वारा महिला यात्रियों से किए गए वारदात याद आने लगे। तो यह विचार भी स्थगित हो गया। किसी पुरुष मित्र के साथ जाना भी सुरक्षा की पूरी गारंटी नहीं थी। ऐसे में, जो कार्यक्रम कई हफ्तों से बना रही थी, उसे ठंडे बस्ते में डालना पड़ा। कारण साफ है, रात के समय हमारी दिल्ली लड़कियों के लिए सुरक्षित नहीं है। ''सुरक्षित दिल्ली'' की गारंटी वैसे तो दिन में भी नहीं दी जा सकती है पर रात में खतरा बहुत बढ़ जाता है। ठीक है, तो हम लड़कियाँ घर में ही सुरक्षित रह सकती हैं। किन्तु घर में ही रहने वाले लोगों से भी क्या हम पूरी तरह सुरक्षित हैं? जाहिर है, ऐसा पक्के तौर पर कहा नहीं जा सकता।

अपनी कई सहेलियों ने मुझे ऐसे किस्से बताए हैं जब छुटपन में उन्हें अपने ही किसी रिश्तेदार की ओछी हरकत का सामना करना पड़ा। बाहर नहीं, घर नहीं, तो फिर ऐसे में कोई स्त्री क्या माँ के पेट में ही सबसे सुरक्षित है? पर वहाँ भी तो भ्रूण हत्याका खतरा बना रहता है। न जाने कब दो मशीनी हाथ उसकी बोटी-बोटी कर कोख से बाहर ले आएंगे।

ऐसे में, स्त्री क्या करे, कहाँ जाए? प्रश्न और भी कई हैं, पर जवाब एक भी नहीं। किसी के पास नहीं। संत मदर टेरेसा ने कहा था, ''अगर हमारे समाज में शांति नहीं है तो इसका मुख्य कारण हमारा यह भूलना है कि आखिर में, हम परस्पर जुड़े हुए, एक-दूसरे पर निर्भर लोग हैं।''

इस क्षीण होते जुड़ाव से समाज का जो हिस्सा सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है, वह है 'स्त्री'—यानि आधी मानवता। यदि बीते कुछ सालों के हिन्दी-अंग्रेजी के अखबारों को देखें तो हमें सहज ही पता चल जाएगा कि स्त्रियों के प्रति हिंसा किस कदर बढ़ गयी है। आठ महीने की बच्ची, दो वर्ष की बच्ची, 10 वर्ष की बच्ची, 14-15-21-28-35-60-74; किसी भी आयु वर्ग को लें, स्त्रियों के प्रति हिंसा अपनी पूरी वीभत्सता में मानवता की आत्मा का गला घोंटती हुई हमारे अखबारों के पन्नों पर महज एक 'खबर' बनकर चस्पा हो जाती है।

ऐसे कई खबर हम रोज कायमचूर्ण की तरह फाँकते हैं और कुछ ही घण्टों में उससे जन्य पीड़ा या चिन्ता (उत्तरदायित्व-बोध कहना तो कोरी यूटोपियन चिन्ता होगी) से 'निपट' भी लेते हैं। कोई फिक्र नहीं। केवल अपनी बेटी, बहन या पत्नी को मैट्रो की महिला बॉगी से ही सवारी करने की सलाह और शाम के आठ बजे से पहले घर लौटने की चेतावनी देकर हम इस पूरी 'स्त्री समस्या' से मुक्त हो जाते हैं।

ऐसे समाज में, यदि ध्यान दें, तो एक बात जो कौंधती हुई नजर आएगी वह है 'आतंक'—हत्यारों से भी और संरक्षकों से भी। यह दोहरा आतंक ही स्त्री के विरुद्ध इस्तेमाल किया जाने वाला एकमात्र हथियार है। इसे हम लड़कियों के मन में छुटपन के दिनों से ही इस प्रकार बिठा दिया जाता है कि हम स्वयं भी अपने नित्य प्रतिदिन के इस व्यवहार या चेष्टा से अनभिज्ञ बने रहते हैं जो पुरुष समाज के लिए हमारे मन में बैठा दिया गया है।

अगर रात के नौ-दस बजे हम किसी काम से घर के बाहर हैं तो होने वाली किसी भी 'अनहोनी' के जिम्मेदार हम स्वयं माने जाएंगे, न कि उसे करने वाला पुरुष-वीर। ये बंधन हमारी सुरक्षा के लिए बनाए गए हैं, हमें आँख-कान-मुँह और बुद्धि के सभी पट बंद कर इनका पालन करना चाहिए। काश! कि ये पाठ हम उन रणबांकुरों को भी पढ़ा पाते जो खुलेआम इस तरह के कृत्यों को अंजाम दे रहे, बिना किसी डर, पाबंदी या ग्लानि-बोध के। शायद यही वह ''social advantage'' है जो हम लड़कियों के मानस में 'सेकेन्ड सेक्स' होने की ग्रंथि के बीज बो देता है, एक ऐसी वजह जो स्त्री-अस्मिता और उसकी गरिमा को निरंतर चोट पहुँचा रही है।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
एन-डी-04, डी.यू.डब्ल्यू.ए. हॉस्टेल (डूआ),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

समांतर सिनेमा पर केन्द्रित लेख

समय के आईने में समांतर सिनेमा

डॉ. पूजा खिल्लन

डॉ. पूजा खिल्लन 'गगनांचल' पत्रिका की सहायक संपादक एवं मूलतः कवयित्री हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में पूर्व तदर्थ प्राध्यापिका, 'समांतर सिनेमा और नसीरूद्दीन शाह' नामक पुस्तक प्रकाशित। प्रथम काव्य संग्रह 'हाशिए की आग' पर 'यशोधरा' सम्मान। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता, कहानी, ग़ज़ल, समीक्षा आदि का निरंतर प्रकाशन। गुजराती भाषा में इनकी कविताओं का अनुवाद व दूसरा काव्य-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य।

कोई भी कला, साहित्य या फिल्म समाज निरपेक्ष नहीं हो सकती किन्तु किसी भी कला की सार्थकता तभी है, जब वह अपने समय एवं समाज में 'हस्तक्षेप' भी दर्ज करे। अब तक के सिनेमाई इतिहास को देखें तो समांतर फिल्में इस कसौटी पर खरी उतरी हैं। 1940 से 60 तक के जिस सिनेमाई कालखंड को 'सिनेमा के स्वर्ण युग' की संज्ञा दी जाती है उसकी कला को चरम तक पहुँचाने का काम समांतर सिनेमा ने बखूबी किया। यह कहना भी गलत न होगा कि 'दुनिया न माने', 'बंदिनी', 'सुजाता', 'धरती के लाल', 'दो बीघा जमीन', 'जागते रहो', 'तीसरी कसम' जैसी समाजवादी यथार्थवादी फिल्मों का दौर खत्म होने के बाद जिस 'क्रिएटिव एलीमेंट' का सिनेमा में एकदम लोप हो गया था, उसकी वापसी समांतर सिनेमा से ही संभव हुई चूँकि कोई भी कला यथार्थ की अनुकृति मात्र नहीं है बल्कि यथार्थ को सृजित अथवा पुनर्सृजित भी करती है। समांतर सिनेमा का मूल्यांकन इस दृष्टि से सदैव सतही एवं एकांगी ढंग से किया जाता रहा है। समांतर सिनेमा के अवदान को अब तक कम करके आँका गया है। आलोचकों की दृष्टि इस तथ्य तक नहीं पहुँची कि समांतर ने 'लोकप्रिय सिनेमा' को भी बचाने का काम किया। जो लोकप्रिय सिनेमा केवल फार्मूलाबद्धता के ढाँचे में कैद होकर रह गया था। उसने समांतर

सिनेमा से सीखा और 'वो सात दिन' जैसी फिल्मों से सिनेमा को नवाजा। इस फिल्म के बेहतरीन संवाद एवं कथानक को प्रस्तुत करने की शैली बहुत हद तक 'समांतर' से ली गई थी। इससे पूर्व भी 'समांतर' से प्रभाव ग्रहण करते हुए प्रयोग हुए, राजेन्द्र सिंह बेदी की 'दस्तक' इसका उदाहरण है। फिर भी समांतर सिनेमा को लेकर तरह-तरह के आरोप लगते रहे किन्तु यह निरन्तर आगे बढ़ता रहा। कहा गया कि समांतर सिनेमा 'रेडिकल किस्म' का है। पलायनवादी है या अब यह पूरी तरह से समाप्त हो चुका है। दर्शकों में इसकी स्वीकृति को लेकर भी सवालिया निशान लगे। ऐसे लोगों को 'वेलकम टू सज्जनपुर' जैसी फिल्मों की सफलता से सीख लेने की जरूरत है। चूँकि समांतर भले ही एक मूवमेंट के रूप में उभरा हो लेकिन हर 'मूवमेंट' अथवा 'विचारधारा' की एक उम्र होती है। जो चीज ऊपर जाती है, फिर उसे नीचे तो आना ही है। किन्तु इससे उसकी मृत्यु की घोषणा कर देना, कहाँ तक उचित है। 'समांतर' जिस समय अपने उभार पर था तो समांतर फिल्मों का निर्माण बहुतायत में हुआ था किन्तु बाद में भी इस तरह के सिनेमा का न केवल निर्माण हुआ बल्कि इन्हें एक प्रबुद्ध दर्शक वर्ग द्वारा सराहा भी गया। जहाँ तक समांतर सिनेमा के आम आदमी द्वारा नकारे जाने की बात है तो यह भी आधा ही सच है चूँकि तस्वीर का दूसरा रुख यह है कि अच्छा साहित्य एवं कलाकृतियाँ अपने मूल्यांकन के लिए जिस संवेदनशीलता एवं चेतनाशीलता की माँग करती है उसमें लगातार गिरावट आई है। भौतिकवादी सोच और धनोपार्जन की अंधी होड़ ने लोगों के सोचने समझने की शक्ति को लगातार कुंठित किया है। धन के बढ़ते हुए वर्चस्व ने रिश्तों की नींव को खोखला बनाया है इससे घर और काम करने की जगहों पर जिस तनाव का सामना करना पड़ रहा है उसने 'रचनात्मक स्पेस' को कम किया है। भौतिकवादी संस्कृति ने जिस तनाव को जन्म दिया है उससे निबटने के उपाय भी भौतिकवादी सोच से ही पनपे हैं। जगह-जगह हेल्थ क्लब एवं योगशालाओं का खुलना इसका एक उदाहरण है। योग एवं शारीरिक व्यायाम करके भी हम अपनी उत्पादन क्षमता को ही बचाना चाहते हैं चूँकि

जो जितना अधिक उत्पादन कर सकता है, उतना ही अधिक सफल है। किन्तु सफल होने के यह भौतिकवादी तरीके मनुष्य में मनुष्यत्व के क्षरण के लिए किस हद तक जिम्मेदार हैं, इसकी पड़ताल भी होनी चाहिए। बहरहाल कला इस भौतिकवादी संस्कृति से उबरने का एक विकल्प अवश्य देती है समांतर फिल्में इसका जीवंत प्रमाण हैं। किन्तु हर कला अपने पनपने के लिए उचित जलवायु एवं खाद चाहती है। जिस तरह 'समांतर' का मूल्यांकन केवल कमजोर फिल्मों के आधार पर किया जाता है। वह उसकी उर्वरता एवं रचनात्मकता के स्पेस के साथ खिलवाड़ करने से कम नहीं है। यह सही है कि 'समांतर' में भी कुछ फिल्में ऐसी हैं जो कमजोर कही जा सकती हैं। वजह कुछ भी हो सकती है उचित फिल्मांकन संभव न होने के कारण, कमजोर संवाद अदायगी या कुछ और किन्तु किसी आंदोलन की सफलता-असफलता किसी एक फिल्म से तय नहीं हो जाती। 'शतरंज के खिलाड़ी' मेरी दृष्टि में फिल्मांकन एवं अभिनय-कौशल की दृष्टि से एक कमजोर फिल्म है किन्तु फिर भी अपने समाज के सच को उजागर करने में सक्षम है। किसी भी आंदोलन अथवा विचारधारा या शैली को परवान चढ़ने के लिए जितने समय और मशक्कत की माँग की जाती है। उस दृष्टि से भी समांतर सिनेमा में कम समय में ही उपलब्धि दिखाई देती है।

समाज में घटित हो रहे यथार्थ एवं बदलावकारी शक्तियों के महत्व को इस सिनेमा में तरजीह मिली है। 'मंथन' फिल्म में गुजरात के कैनवास में 'श्वेत क्रांति' को दिखाया गया है। 'दुग्ध सहकारिता' जैसे अच्छे कार्यों में लगने वाला धन हड़पने की कोशिश किस तरह प्रशासन की मिली-भगत से परवान चढ़ती है। किस तरह किसी आंदोलन को असामाजिक तत्वों की मदद से असफल बनाने की कोशिश होती है। यह फिल्म बखूबी बताती है।

किसी भी कला की सफलता-असफलता के पीछे समाज का हाथ होता है। जितनी जल्दी कोई रचनाकृति स्वीकृत होती है उतनी ही सफल मानी जाती है किन्तु स्वीकृति के मानदंड यदि मुनाफे-नुकसान की तर्ज पर तय होने लगें तो भी कलाकृति अपनी क्षमता के बल पर रचनात्मक अथवा क्रिएटिव स्पेस ले लेती है। समांतर सिनेमा की यह जद्दोजहद आद्यंत बनी रही है। सिनेमा की अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय छवि को सशक्त करने में इस सिनेमा के अवदान को भी नकारा नहीं जा सका है। यही इसके संघर्ष की जीत पर मोहर लगाने के लिए काफी है।

36, जोशन निवास, द्वितीय तल,
गुड़मंडी, दिल्ली-110007

तकियाफोड़ आलोचक मत बनो

(वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी से युवा आलोचक वेंकटेश कुमार की बातचीत)

वेंकटेश कुमार

युवा आलोचक वेंकटेश कुमार की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संप्रति जामिया मिल्लिया इस्लामिया से पीएच.डी. शोधरत।

वेंकटेश कुमार—'व्योमकेश दरवेश' पर आपको मूर्तिदेवी सम्मान मिला कैसा लग रहा है?

विश्वनाथ त्रिपाठी—बहुत अच्छा लग रहा है। अच्छा लगने का कारण है कि यह सम्मान गुरुवर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के जीवन पर लिखी गई पुस्तक पर मिल रहा है।

वेंकटेश कुमार—'व्योमकेश दरवेश' लिखते हुए, प्रतिमान के रूप में किस तरह की किताबें आपके सामने थीं?

विश्वनाथ त्रिपाठी—रामविलास शर्मा की पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना' मुझे बहुत अच्छी लगती है। चंद्रशेखर शुक्ल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भतीजे थे। उन्होंने शुक्ल जी की जीवनी लिखी है। यह जीवनी मुझे बहुत पसंद है। इस पुस्तक को लोगों ने बहुत कम नोटिस किया है। इसका मेरी किताब पर गहरा असर है। हाली मी 'यादगारे गालिब' का भी मेरी किताब पर असर है। मेरे मन में मॉडल के रूप में 'यादगारे गालिब' ही था। इसलिए कि हाली गालिब के शागिर्द थे और उन्होंने बड़ी आत्मीयता के साथ यह किताब लिखी है। विष्णु प्रभाकर की 'आवारा मसीहा' और अमृत राय की 'कलम के सिपाही' का भी नाम लूंगा। 'व्योमकेश दरवेश' लिखते

हुए, ये कुछ किताबें मेरे मन में जरूर थीं। मैं यह जरूर कहना चाहूँगा कि जीवनी के नायक के व्यक्तित्व से उसकी शैली निर्धारित होती है। मेरे लिए द्विवेदी जी के व्यक्तित्व का जो मानवीय रूप है, संबंधों के निर्वाह का जो रूप है, यानी मेरे मन में द्विवेदी जी की जो छवि बनी हुई है, वही मेरे ध्यान में था। इस किताब में मैंने लिखा भी है कि मैं इस बात का दावा नहीं कर सकता, न करना चाहता हूँ कि मैं द्विवेदी जी पर बहुत तटस्थता के साथ लिख सकता हूँ। मैंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि मैं द्विवेदी जी पर तटस्थ होकर लिख ही नहीं सकता। मेरे लिए यह आश्चर्य की बात है कि अशोक वाजपेयी ने और कई लोगों ने इस किताब पर विचार करते हुए कहा कि विश्वनाथ त्रिपाठी कहते तो हैं कि वे द्विवेदी जी पर तटस्थ होकर नहीं लिख सकते। लेकिन उन्होंने द्विवेदी जी की आलोचना भी की है। मैं सोचता हूँ कि इसका कारण शायद यह है कि द्विवेदी जी आज भी मेरे लिए जीवित हैं। मैं यह पूरी जिम्मेदारी के साथ कह रहा हूँ कि द्विवेदी जी अपने अधिकांश शिष्यों के लिए जीवित हैं। जैसे मैं उनके सामने ही उनकी आलोचना कर दिया करता था, वैसे ही मैंने उनके बारे में लिखते समय कर दिया है। यही सोचकर मैं अपने विस्मय को दूर करता हूँ। क्योंकि जिसके प्रति आपके मन में सच्चा प्रेम है, सच्ची श्रद्धा है, वहाँ आप निर्भीक होते हैं।

वेंकटेश कुमार—'व्योमकेश दरवेश' की विधा को लेकर भी लोगों में एक राय नहीं है।

विश्वनाथ त्रिपाठी—बहुत लोगों ने मुझसे पूछा कि इसे कौन सी विधा कहेंगे? है तो यह जीवनी ही—संस्मरणात्मक जीवनी। प्राचीन काल में इसको चरित कहा जाता था। पंडित जी के समय में 20-22 साल तक रहा। तो जिस रूप में मैंने पंडित जी को देखा, वो लिखा तो यह संस्मरण हो गया। असल बात यह है वेंकटेश कि यह किताब लिखते हुए मैंने विधा का ध्यान रखा ही नहीं। लेकिन मुझे विधा पर विचार करना ही पड़े तो मैं इसे संस्मरणात्मक जीवनी ही कहूँगा।

वेंकटेश कुमार—आपने इस किताब में लिखा है कि शांतिनिकेतन में द्विवेदी जी का जो जीवन बीता, उसके बारे में मेरे पास पर्याप्त सामग्री नहीं है।

विश्वनाथ त्रिपाठी—तुम बिल्कुल सही कह रहे हो। शांतिनिकेतन जाकर 4-5 महीने मैं रहा

होता या और मेहनत की होती तो इस संदर्भ में कुछ और सामग्री मिल सकती थी। कभी भी कोई काम संपूर्ण नहीं हो सकता। मैं नहीं कर पाया तो और लोग करेंगे। पंडित जी का व्यक्तित्व तो मेरे लिए इतना आकर्षक था कि मैं उन पर बिना लिखे रह ही नहीं सकता था। मुझे यह भी लगा कि जैसे-जैसे वक्त बीतेगा पंडित जी पर सामग्री कम होती जाएगी। इसलिए मैं उनके बारे में जितना जानता हूँ, वह लिख दूँ। जिससे आगे चलकर जो लोग द्विवेदी जी पर काम करना चाहेंगे, उन्हें थोड़ी सुविधा हो जाएगी।

वेंकटेश कुमार—इस किताब का नाम 'व्योमकेश दरवेश' क्यों एवं कैसे रखा आपने?

विश्वनाथ त्रिपाठी—मैंने इस किताब के दो-तीन नाम सोचे थे। मैं इस किताब को 'व्योमकेश दरवेश' शीर्षक से छपवाना नहीं चाहता था। पहले मैं इसका नाम देना चाहता था—'विस्थापित आकाशधर्मा'। क्योंकि पंडित जी का जो निष्कासन काशी विश्वविद्यालय से हुआ था, वो मुझे बहुत व्याकुल करता था। दूसरा नाम मैंने सोच रखा था—'व्योमकेश दरवेश'। नामवर जी से मैंने कहा कि 'विस्थापित आकाशधर्मा' नाम ज्यादा अच्छा लग रहा है और इसी नाम से किताब छपवाना चाहता हूँ। लेकिन नामवर जी ने कहा कि इस नाम में तो पंडित जी का पूरा व्यक्तित्व सामने नहीं आ रहा है। उन्होंने पूछा कि और भी नाम सोच रखा है आपने? तो मैंने कहा कि हाँ, एक और नाम सोचा है 'व्योमकेश दरवेश'। तो नामवर जी ने कहा कि इसी नाम से छपना चाहिए। उन्होंने बिल्कुल अध्यापकीय आग्रह से कहा कि तुम यही नाम रखो।

वेंकटेश कुमार—इस किताब का जो अंतिम खंड है, जिसमें आपने द्विवेदी जी की रचनाओं पर विचार किया है। तो यह खंड रखना आपको क्यों जरूरी लगा? अलग से आलोचना-पुस्तक भी तो लिख सकते थे। जीवनी में इसे शामिल करना आपको जरूरी क्यों लगा?

विश्वनाथ त्रिपाठी—मुझे बहुत अच्छा लग रहा है कि तुम उस खंड के बारे में सवाल पूछ रहे हो। बहुत कम लोगों ने इस पर ध्यान दिया है। मेरी समझ से इस किताब का जो अंतिम खंड है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। यह खंड पंडित जी की रचनाओं की जीवनी है। मैंने इसी रूप में यह खंड लिखा है। मुझे बड़ा संकोच होता है कहते हुए, लेकिन मैं चाहता जरूर हूँ कि लोग उस खंड को पढ़ें। क्योंकि मैंने बहुत हिम्मत करके यह खंड लिखा है। पंडित जी बार-बार कहते थे कि मेरे अंतरयामी ही जानते हैं। तो उनकी रचनाओं में उनके अंतरयामी भी उद्घाटित होते हैं। द्विवेदी जी एक शब्द के बाद दूसरा शब्द कैसे रखते हैं, एक बात के बाद दूसरी बात कैसे कहते हैं, उन्होंने जो बात कही है, उसके निहितार्थ कितने हैं, उसकी व्याप्ति कितनी है? तो इस खंड में मैंने विस्तार से व्याख्या करके द्विवेदी जी की रचनाओं के अंतरंग को पकड़ने की कोशिश की है। पंडित जी का जो अध्ययन था, उनका जो जीवन-अनुभव था, वह इतना व्यापक था कि उसमें प्रवेश करने के लिए मुझे बहुत साहस जुटाना पड़ा। और अपनी समझ से मुझे बहुत मेहनत भी करनी पड़ी है। जो विचारक होंगे, वही मेरी पुस्तक के इस खंड पर ध्यान देंगे। पंडित जी की जो जीवन-शैली थी, लगभग वही उनकी रचनाओं का शिल्प भी है। उनका जो वाक्य-गठन है, बीच-बीच में जो पदबंध आते हैं, वो बिल्कुल उनके चरित्र को व्यक्त करता है। जैसे वे कहेंगे कि पंडित जी से कौन मुँह भिड़ाता फिरे। जहाँ भी कोई विवादास्पद बात आएगी तो कहेंगे कि पंडितों से कौन टकराता फिरे। अपनी बात कहकर वे विवाद में नहीं पड़ते थे। तुरंत कह देते थे कि भाई आप ही ठीक कह रहे हैं। अपने विरोधी की बात को महत्व देने में हिन्दी में शायद उनके जैसा कोई दूसरा नहीं है। और ये परम्परा सीधे-सीधे भारतीय दर्शन के विमर्श की परम्परा से मिलती है। आप बिना पूर्व पक्ष के उत्तर पक्ष होते ही नहीं। जनविरोधी की बातों का समाधान हो जाता है, तभी सिद्धांत का जन्म होता है। एक जगह द्विवेदी जी ने लिखा कि अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। यह लिखने के बाद उन्होंने लिखा कि मेरी बेटी ने जब पूछा—तो उन्होंने कहा कि अल्पज्ञ मैं हूँ।

वेंकटेश कुमार—आपातकाल को लेकर द्विवेदी जी (हजारी प्रसाद द्विवेदी)।

विश्वनाथ त्रिपाठी—एक बात मैं द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के बारे में कहना चाहता हूँ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 1935-36 में द्विवेदी जी से पूछा कि हम कृष्ण को अवतार मानते हैं, राम को अवतार मानते हैं, परशुराम को अवतार मानते हैं लेकिन भीष्म को अवतार क्यों नहीं मानते? यह सवाल पंडित जी के हृदय को लगातार मथता रहा। इसे उन्होंने लिखा आपातकाल में। हम जानते हैं कि प्रतिज्ञा तोड़ना भी नैतिकता हो सकती है। प्रतिज्ञा तोड़कर आप अपने अहंकार और व्यक्तित्व को तो बड़ा बना सकते हैं, लेकिन जहाँ प्रतिज्ञा तोड़ने में कोई भलाई हो, वहाँ प्रतिज्ञा तोड़ देनी चाहिए। परशुराम ने अच्छा किया या बुरा किया, लेकिन कार्य तो किया। भीष्म ने लड़ाई की, पूरा महाभारत खड़ा कर दिया और वंश का नाश कर दिया, शादी न करके। तो जो काम भीष्म को करना चाहिए था, वह काम उन्होंने नहीं किया। अब देखो कि यह सवाल रवीन्द्रनाथ पूछ रहे हैं। इस प्रसंग में तुम रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा गाँधी का पॉलिपिक्स याद करो। रवीन्द्रनाथ ठाकुर चिंतक बड़े थे। लेकिन भारतीय सामूहिक चित्त ने बड़ा माना महात्मा गाँधी को। ये कसक कहीं न कहीं रवीन्द्रनाथ के मन में थी। नोबेल प्राइज उनके पास था, विश्व

नागरिक भी वे थे। लेकिन महात्मा गाँधी तमाम अन्तर्विरोधों के बावजूद रवीन्द्रनाथ से बड़ा व्यक्तित्व थे। अब मैं तुम्हें असली बात बताता हूँ वेंकटेश। ये पूरा प्रसंग, ये पूरा कथन द्विवेदी जी ने आपातकाल के संदर्भ में किया है। द्विवेदी जी लिखते हैं कि एक मित्र ने आपातकाल के समय मुझसे कहा कि पंडित जी आप कुछ कर नहीं रहे हैं। द्विवेदी जी के बहुत सारे शिष्य और मित्र आपातकाल में इंदिरा गाँधी के सम्पर्क में थे। तो ये बात पंडित जी के मन में आती थी। पंडितजी ने कालीदास के एक श्लोक की व्याख्या की है—दुष्यंत चित्र बना रहा है शंकुतला का। लेकिन चित्र पूरा हो नहीं रहा है। यह चित्र तब पूरा होता है जब उसमें यह दिखाया जाता है कि मृगी अपनी आँख मृग के सींग से खुजला रही है। पंडित जी इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह आत्माभिव्यक्ति है दुष्यंत की। मृगी ने कितना ज्यादा विश्वास किया उस मृग पर कि अपनी आँख उसके सींग से खुजला रही है। लेकिन कितना बड़ा छल किया था दुष्यंत ने शंकुतला के साथ। तो चित्रकार दुष्यंत अपने व्यक्तित्व का अपराधबोध कला के माध्यम से व्यक्त कर रहा है। अपराधबोध की यह आत्माभिव्यक्ति भीष्म, रवीन्द्रनाथ और द्विवेदी जी को एक साथ जोड़ देती है।

वेंकटेश कुमार—'व्योमकेश दरवेश' में आपने एक प्रसंग की चर्चा की है जिसमें द्विवेदी जी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से एक छोटी मुलाकात का जिक्र करते हैं। द्विवेदी जी शुक्ल जी के बारे में आपसे बातें करते थे तो वे बातें किस तरह की होती थी?

विश्वनाथ त्रिपाठी—हा... हा... हा...। (खूब हँसते हैं।) बताता हूँ। नित्यानंद तिवारी ने बहुत पहले एक लेख पढ़ा था आलोचना पर। उसमें उन्होंने कहा कि शुक्लोत्तर समीक्षक हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र—इन तीनों ने शुक्ल जी से टकराते हुए अपनी आलोचना की राह बनायी व पंडित जी से भी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' का आरंभ ही शुक्ल जी का विरोध करते हुए किया। जब पंडित जी बनारस गए तो वहाँ लोगों को लगा कि अरे ये तो आचार्य शुक्ल के विरोधी हैं। फिर इस चीज को लोग पंडित जी के विरुद्ध हथियार के रूप में इस्तेमाल करने लगे। पंडित जी शुक्ल जी का बहुत आदर करते थे। पंडित जी ने लिखा है कि आधुनिक समय में भारतीय साहित्य की किसी भी भाषा में शुक्ल जी जैसा बड़ा आलोचक पैदा नहीं हुआ। मैंने एक बार पंडित जी से पूछा कि आपकी भेंट कभी आचार्य शुक्ल से हुई थी? तो उन्होंने कहा कि मैं उनसे अकेले मिलने जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। एक बार रामकृष्ण दास के साथ उनसे मिलने गया। पंडित जी ने मुझसे कहा कि मुझे उनसे मिलकर यह तो लगा कि उन्होंने मेरा लिखा कुछ पढ़ रखा है। लेकिन आचार्य शुक्ल को उनका लिखा कैसा लगा, इसे समझाने के लिए पंडित जी एक किस्सा सुनाते थे। एक गाँव में एक अंग्रेज गोरा चश्मा लगाकर घूमने गया। गाँव के बच्चे बहस करने लगते हैं कि आँखें ढकने के बाद भी यह आदमी देख पाता है कि नहीं। क्योंकि इन बच्चों ने तब तक किसी आदमी को काला चश्मा लगाए नहीं देखा था। एक मनचला लड़का चश्माधारी के सामने खड़े होकर मुँह बिराने लगा और उसकी आँखों के सामने उंगलियाँ नचाने लगा। चश्माधारी गोरे ने लड़के की पीठ पर दो हंटर जमाए। लड़का चोट से बिलबिला कर चीखा—देखता है, देखता है। द्विवेदी जी ने 'नूरजहाँ' पर जो लिखा था उसे उद्धृत करते हुए शुक्ल जी ने लिखा कि इसको आलोचना नहीं कहते हैं। प्रभाववादी आलोचना किसी काम की नहीं होती। द्विवेदी जी शुक्ल जी के बारे में कहते थे कि वे आस्तिक नहीं थे। शुक्ल जी के बारे में द्विवेदी जी यह भी कहते थे कि उनका जो हृदय है वह उनकी प्रतिभा की आँच से सूख जाता है, जिस पर शुक्ल जी ने एक बार संदेह कर लिया, वह संदेह आजीवन बना रहता है। जब मैं अपना लघु शेध-प्रबंध लिख रहा था, तो लिखने के क्रम में यदि मैं कहीं शुक्ल जी की आलोचना कर देता तो पंडित जी तुरंत डाँटते थे कि उनका विरोध बहुत ही विनम्रता के साथ करो।

वेंकटेश कुमार—सवाल उठता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की कौन सी किताब पढ़ी होगी? मुझे लगता है कि यदि आचार्य शुक्ल को आचार्य द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' और 'कबीर' जैसी पुस्तकें पढ़ने का मौका मिलता तो वे आचार्य द्विवेदी की प्रशंसा करते।

विश्वनाथ त्रिपाठी—लेख पढ़ा होगा। हो सकता है कि सूरदास पर द्विवेदी जी ने जो लिखा था, उसे पढ़ा होगा। हाँ, शायद प्रशंसा करते। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि संस्कृत साहित्य का जितना रस आचार्य द्विवेदी ले सकते थे, उतना आचार्य शुक्ल नहीं। रामविलास जी ने कहा कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नहीं लिख सकते थे।

वेंकटेश कुमार—आपने लिखा है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेखकीय व्यक्तित्व आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से अधिक क्षेत्रीय है।

विश्नाथ त्रिपाठी—शुक्ल जी का जो गद्य है उस पर अवधी का प्रभाव है। द्विवेदी जी के गद्य पर भोजपुरी का प्रभाव है। लेकिन द्विवेदी जी के गद्य पर भोजपुरी का प्रभाव अधिक साहसपूर्वक है। इसका कारण यह हो सकता है कि द्विवेदी जी के निबंध व्यक्तिपरक हैं, ललित हैं। निबंध में लेखक का व्यक्तित्व प्रकाशित होता है, लेकिन ललित निबंध में

और ज्यादा प्रकाशित होता है। द्विवेदी जी के निबंध में जो भोजपुरी जातीयता है, भूगोल है, इतिहास है, किंवदंतियाँ हैं—ये सब बहुत ज्यादा है। पंडित जी ने एक बार समझाया कि क्रांति क्या होती है। इसे समझाते हुए पंडित जी ने कहा कि जैसे तंबाकू सहित चिलम को ही उलट दो तो क्रांति होगी। ये नहीं कि तुम चिलम का तंबाकू बदल दो, आग बदल दो—ये बदलने वाले काम से क्रांति नहीं होगी। डॉ. रामविलास शर्मा ने पंडित जी के बारे में ठीक कहा है कि वे कथावाचक हैं। पंडित जी मूलतः निबंध लेखक हैं। वे जब आलोचना भी लिखते हैं तो लगता है कि निबंध लिख रहे हैं। द्विवेदी जी का गद्य मूलतः वाचिक गद्य है।

वेंकटेश कुमार—रामविलास शर्मा के बारे में आचार्य द्विवेदी ने शायद कहीं कुछ नहीं लिखा है। शायद पढ़ा नहीं होगा रामविलास जी को?

विश्वनाथ त्रिपाठी—द्विवेदी जी की जो किताब है—'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास'—उसमें उन्होंने प्रगतिशील धारा के आलोचकों में रामविलास जी का उल्लेख किया है। मैंने न तो द्विवेदी जी को कभी डॉ. रामविलास शर्मा के लेखन पर बात करते हुए देखा, न उन्हें रामविलास शर्मा की रचनाओं को पढ़ते हुए देखा। एक-दो बार मैंने उनसे रामविलास शर्मा के बारे में पूछा जरूर तो इससे लगा कि उन्होंने नहीं पढ़ा है। रामविलास जी की 'निराला की साहित्य-साधना' उन्होंने पढ़ी थी। क्योंकि इस किताब को जब साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था तब वे साहित्य अकादमी में संयोजक थे। लेकिन इस किताब से द्विवेदी जी को शिकायत भी थी कि निराला को बड़ा बनाया गया है। निराला के युग के जो अन्य कवि हैं, उनको छोटा करके निराला को बड़ा बनाया गया है। निराला बड़े रचनाकार थे तो उनके साथ और कई रचनाकार भी बड़े थे।

वेंकटेश कुमार—रामविलास शर्मा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखते हुए बहुत ही आक्रामक हो जाते थे। उद्धरणों को तोड़-मरोड़ कर द्विवेदी जी के विरोध में स्थापनाएँ करते थे।

विश्वनाथ त्रिपाठी—रामविलास शर्मा का मैं बहुत आदर करता हूँ। वे हिन्दी के प्रहरी भी हैं और महास्तम्भ भी। वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य और प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव थे। उनका बहुत सा लेखन पार्टी-राइटिंग है। रामविलास शर्मा की आलोचना की अपनी शैली है। द्विवेदी जी का भी पूरा लेखन कोई निर्दोष तो नहीं है। जहाँ उनकी कुछ बातें पुरानी पड़ गई हैं, वहाँ उनकी आलोचना कोई गलत बात नहीं है। तो इस रूप में डॉ. शर्मा भी यदि द्विवेदी जी की आलोचना करते हैं, इसका मतलब यह हुआ कि आलोचना को समृद्ध कर रहे हैं। लेकिन रामविलास जी ने अपनी एक शैली विकसित कर ली थी। उसी शैली में उन्होंने राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, पंत आदि की आलोचना की है। रामविलास जी किसी की रचना का कोई टुकड़ा उठा लेते थे और उसे संदर्भ से अलग करके लेखक को खारिज कर देते थे। इसलिए डॉ. शर्मा की आलोचना पढ़ते हुए, उनकी इस प्रवृत्ति के प्रति सतर्क रहना चाहिए, मैं इतना ही कह सकता हूँ। मैं बहुत ही सतर्क होकर रामविलास जी को पढ़ता हूँ।

वेंकटेश कुमार—नामवर जी ने भी 'दूसरी परम्परा की खोज' नाम से किताब लिखी?

विश्वनाथ त्रिपाठी—डॉ. रामविलास शर्मा का यदि किसी आलोचक पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा तो वे हैं डॉ. नामवर सिहं। 'वाद विवाद संवाद' नायक अपनी किताब रामविलास शर्मा को ही समर्पित की है नामवर जी ने। समर्पित करते हुए लिखा है—मेरे वाद-विवाद कला के गुरु डॉ. रामविलास शर्मा के लिए। तो संक्षेप में ये समझो कि जो हरकत रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के प्रति की है, वही हरकत डॉ. नामवर सिंह ने शुक्ल जी के प्रति की है। बल्कि यह कहो कि शुक्ल जी और रामविलास शर्मा दोनों के प्रति की है। लेकिन यह सच है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखी गई सर्वश्रेष्ठ किताब है—'दूसरी परम्परा की खोज'। लेकिन नामवर जी भी किसी का महत्व स्थापित करने के लिए एक विलेन चुन लेते हैं। नामवर जी मूल्य की संस्थापना करते हुए वेध्य पर ज्यादा ध्यान देते हैं। इस पुस्तक में मूल्य तो आचार्य द्विवेदी के हैं, लेकिन वेध्यता आचार्य शुक्ल और रामविलास शर्मा का है।

वेंकटेश कुमार—हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा का जब प्रकाशन हुआ तो उस पर आपने एक विध्वंसात्मक समीक्षा लिखी थी। लेकिन यह समीक्षा आपकी किताब में संकलित नहीं है?

विश्वनाथ त्रिपाठी—असल में यह हुआ कि जब मैंने बच्चन जी की आत्मकथा का एक खंड 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' पढ़ा, तो यह किताब मुझे अच्छी नहीं लगी। क्योंकि इसमें बच्चन जी ने अपने प्रेम-प्रसंगों का वर्णन विस्तार से किया है। इस क्रम में उन्होंने कुछ ऐसे लोगों का भी नाम लेकर जिक्र किया है, जो उस समय जीवित थे, बाल-बच्चेदार थे। मैंने देखा कि इस किताब में बच्चन जी ने एक अजीब पैटर्न बनाया है—जो उनके जितना ज्यादा निकट रहा है, वे उसकी उतनी ही ज्यादा बुराई करते हैं। उस समय भी मेरी यह आदत थी कि यदि कोई किताब अच्छी लगी तो उसकी प्रशंसा करता फिरता था और यदि बुरी लगी तो उसकी आलोचना करता फिरता था। भैरव प्रसाद गुप्त से मैंने बच्चन जी की आत्मकथा की खूब आलोचना की। तो उन्होंने कहा कि इस किताब की समीक्षा तुम मेरी पत्रिका 'समारम्भ' के लिए करो। मैंने कहा कि मैं इस पर बहुत ही तेज लिखूँगा। इस

पर उन्होंने कहा कि अबे साले, उल्लू (उनकी आदत थी कि वे गाली-वाली देकर बात करते थे) तुम जितनी भी बुराई करोगे मेरी शिकायत यही रहेगी कि और तेज क्यों नहीं लिखा। मैंने लिखा और छप गया। फिर देखा कि जिसे देखो वही उस समीक्षा की बात कर रहा है। रवीन्द्र कालिया ने बहुत बाद में बताया कि बच्चन जी ने अपने बेटे अमिताभ को रात में भेज कर प्रेस से वह पत्रिका मँगा कर पढ़ी थी। ज्ञानरंजन की चिट्ठी आई कि और लोग तो हथौड़ी चलाते हैं, आप घन चलाते हैं। राजकमल प्रकाशन के ओमप्रकाश जी एक बार मिल गए और उन्होंने पूछा कि तुम ही विश्वनाथ त्रिपाठी हो, तुमने ही बच्चन जी की आत्मकथा पर भैरव जी वाली पत्रिका में समीक्षा लिखी है? मैंने कहा—हाँ। फिर उन्होंने पूछा—बियर पीते हो? मैंने कहा—हाँ! उन्होंने कहा—चलो मेरे साथ। बियर पिलायी और कहा कि मैं तुम्हें सात दिन से खोज रहा था, तुमने बहुत अच्छा लिखा है। अब तुम जो कुछ भी लिखोगे राजकमल प्रकाशन से ही छपेगा। फिर टैक्सी वाले को पैसा देकर कहा कि इसे इसके घर छोड़ दो। द्विवेदी जी ने मुझसे पूछा कि तुमने कोई लेख लिखा है, बच्चन जी की आत्मकथा पर। मैंने कहा—हाँ। फिर डर गया मैं, उनसे कहने लगा कि पंडित जी लेकिन आपके पढ़ने लायक नहीं है। तो उन्होंने कहा कि तुमने हिन्दी की सफाई करने का ठेका ले रखा है क्या? तकिया फोड़ आलोचक मत बनो। फिर इसके बाद मैंने ऐसा लेख नहीं लिखा। मैंने जो लिखा था, भैरव जी ने उसे अपने हिसाब से संपादित कर लिया था। मैंने बच्चन जी के लिए एकवचन का प्रयोग नहीं किया था, लेकिन भैरव जी ने उसे बदल कर बच्चन ऐसा मानता है, बच्चन वहाँ गया आदि कर दिया। मैंने उस लेख में तेजी बच्चन का नाम नहीं लिखा था। भैरव जी ने उसमें तेजी का नाम डालकर कुछ प्रसंग अपनी तरफ से जोड़ दिया। इसलिए मैंने इसे किसी पुस्तक में संकलित नहीं किया। यदि अपनी किसी पुस्तक में संकलित करूँगा भी तो उस रूप में नहीं, जिस रूप में वह छपा था, बल्कि उस रूप में जिस रूप में मैंने उसे लिखा था। बच्चन जी के प्रति मेरे मन में बहुत आदर है।

वेंकटेश कुमार—आपको अभी तक साहित्य अकादमी पुरस्कार नहीं मिल पाया है। इसका कुछ अफसोस है?

विश्वनाथ त्रिपाठी—मेरी जो किताब है—'नंगातलाई का गाँव' वह कई साल तक साहित्य अकादमी सम्मान के लिए लिस्टेड रही। 'व्योमकेश दरवेश' भी लिस्टेड रही। लेकिन लोगों को मेरी किताबें सम्मान लायक नहीं लगी होंगी। इसमें मैं क्या करूँ! लेकिन मुझे साहित्य अकादमी का भाषा सम्मान मिल चुका है। व्यास सम्मान मिला, मूर्तिदेवी सम्मान मिला, और कई सम्मान मिले। अगर ये सम्मान मुझे न मिलता, तो हो सकता है कि मेरे मन में रहता कि मुझे सम्मान नहीं मिला। लेकिन जब कुछ मिल जाता है तो आदमी बहुत उदार हो जाता है।

द्वारा जयपाल सिंह,
36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
गुड़मण्डी, दिल्ली-110007

यात्रा-वृतांत

नमामि देवि नर्मदे...

डॉ. राजेश कुमार व्यास

डॉ. राजेश कुमार व्यास जाने-माने संस्कृतिकर्मी, कवि, कला आलोचक एवं यात्रा-वृतांत लेखक हैं। संप्रति राजस्थान राज्य सेवा के वर्ष 1996 बैच के अधिकारी। इन दिनों सहायक निदेशक, कार्यालय, शिक्षा मंत्री राजस्थान के पद पर कार्यरत हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में 19 पुस्तकें प्रकाशित एवं लेखन में सक्रिय।

ॐ जय जगदानन्दी, मैया जय जगदानन्दी
ब्रह्मा हरि हर शंकर, रेवा शिव हरि,
शंकर रुद्री पालन्ती।

नर्मदा आरती के इन समूह स्वरों से आँख खुलती है। उठकर घड़ी देखता हूँ। अभी तो 5 ही बजे हैं। जबरदस्त ठंड है। खिड़की के पट को थोड़ा-सा खोल बाहर झाँकता हूँ। देखता हूँ तीन चार जन नर्मदा आरती कर रहे हैं। यह नर्मदा परिक्रमावासी हैं। मन में विचार आते हैं, नर्मदा या रेवा विश्व की अकेली नदी है, जिसकी विधिवत् परिक्रमा का विधान है। परिक्रमा माने प्रदक्षिणा, पूज्य जो हैं, उनकी की जाती हैं। उपासना का ही तो अंग है, परिक्रमा। इसी से मिलता है प्रसाद। 'पानि-पानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिण पदे-पदे'। मार्कण्डेय ने 21 बार प्रलय देखी पर नर्मदा की कृपा से प्रलयकाल में भी वह सुरक्षित रहे। उन्होंने ने ही नर्मदा की पहले पहल परिक्रमा कर उसके दिव्य स्वरूप को प्रकट किया।

नर्मदा उद्‌गम स्थल अमरकंटक जब पहुँचा तब तक मध्य रात्रि हो चुकी थी। रात्रि जहाँ ठौड़ पायी, वह स्थान जहाँ नर्मदा बहती है, उसके निकट ही है। कल-कल बहती नर्मदा को रात की नीरवता में सुना। रजाई ओढ़ जतन किया, उस मधुर आवाज की लोरी में ही नींद आ जाए पर भयंकर ठंड थी। एक और रजाई की दरकार थी पर अब आधी रात को किससे जाकर माँगता। बड़ी मुश्किल से तो यह ठिहां मिली थी। कहने को लग्जरी कमरा, पर है छोटी सी कोठरीनुमा जगह। रात बिताने का आसरा तो हो ही गया। चौकीदार जल्दी में था और मैं भी सो सर्दी से बचने को जो रजाई उसने दी उसी में संतोष मानते घुस गया था, पर अब वह कम लग रही थी। बाहर जाकर चौकीदार को ढूँढने का प्रयास किया पर वह भी अपनी किसी कोठड़ी में जाकर सो गया था, कहाँ उसे ढूँढता! ठिठुरन से नींद कैसे आए! क्या करूँ... बाहर चला जाऊँ... नर्मदा पास ही है। शायद सड़क के उस पार। सोचता ही रहा, हिम्मत नहीं हुई जाने की। हाँ थोड़े अंतराल में नर्मदा के पानी का स्वर फिर से कानों को भाने लगा। मन कहने लगा, रात की शांति न हो तो पवित्र नर्मदा के जल स्वरों का यूँ आस्वाद कर पाता! ठिठुरता हुआ यूँ जाग नहीं रहा होता तो क्या इस राग से यह अनुराग पाता! जो होता है, अच्छे के लिए ही होता है... इस सोच से मन को सुकून मिला। ठंड से नींद न आ पाने की पीड़ा जैसे कहीं भाग गई।

औचक न जाने कहाँ से हिम्मत आई। रजाई को परे धकेल उठ बैठा। बाहर निकला। चाँद की रोशनी में नहाया अमरकंटक। भली-भली रोशनी चाँद की और नर्मदा के बहने का मधुर स्वर। सड़क के उस ओर नर्मदा बह रही है। गहरी रात और आकाश पर तारों के साथ विराजमान चाँद! सोचते ही सोचते नर्मदा तट पर पहुँच जाता हूँ। आदि शंकराचार्य के लिखे 'नर्मदाष्टक' की पंक्तियाँ याद कर प्रणाम करता हूँ, ''त्वदीय पादपंकजम् नमामि देवि नर्मदे।'' ठंडी हवा कानों में घुसती है तो सर्दी का अहसास बेचैन करता है। चुपचप सुबह फिर लौटने के लिए नर्मदा से विदा लेता हूँ। आकर फिर से बिस्तर में घुस जाता हूँ। ठंड रुकती नहीं पर सोया रहता हूँ।

'नर्मदा आरती' के उन समूह स्वरों से ही भोर का पता चला था। माने नींद कुछ तो आयी थी। अपने कमरे की खिड़की के बाहर फिर से झाँकता हूँ। नर्मदा परिक्रमावासी तो तैयार भी हो गए हैं—रात रुके स्थान को छोड़ने के लिए। मैं भी उठ बैठता हूँ। तैयार होकर बाहर निकलता हूँ। नर्मदा उद्‌गम स्थल पहुँचता हूँ। परकोटे से घिरा मंदिर समूह। श्रद्धालु स्नान कुण्ड में स्नान कर रहे हैं। मैं वहीं बैठ जाता हूँ। कुण्ड के पानी के छींटे डाल मन ही मन गुनगुनाता हूँ, ''छांटा लागे नीर का, पाप गया शरीर का।'' लो हो गया नर्मदा स्नान। स्नान कुण्ड के पास बने मंदिरों में विचरते मन में नर्मदा परिक्रमा का विचार आता है। पर सोचता हूँ, उस पथ पर तो 3 साल 3 माह 13 दिन लग जाएँ। सरकारी नौकरी और संसारी बंधनों से बंधे काज से मुक्ति कैसे होगी? मन में यह सब आता है और नर्मदा परिक्रमा का विचार स्वयंमेव तिरोहित होता चला जाता है।... उद्‌गम कुण्ड के पास के 24-25 मंदिर हैं। कुण्ड से जुड़ा मंदिर बंसेस्वर महादेव का है। आदि शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित। कहते हैं, कभी यहाँ बांसों का झुरमुट था। इसीलिए महादेव बंसेस्वर हुए। महादेव मंदिर में जा उन्हें नमन करता हूँ। सामने नर्मदा कुण्ड का जल है। नर्मदा का ध्यान करता हूँ। स्कन्द पुराण में हिरण्येता द्वारा घोर तपस्या से शिव

को प्रसन्न कर नर्मदा को पृथ्वी तल पर आने के वर का उल्लेख है। पर इसके उद्गम स्थल का पता कैसे चलता! आदि शंकराचार्य ने यह काम किया। उन्होंने सुदूर केरल से आकर यहाँ अमरकंटक में नर्मदा के उद्गम स्थल को निश्चित किया। यहीं उन्होंने 'नर्मदाष्टकम्' लिखा। नर्मदा के साथ शंकर के जीवन पर विचारें तो अचरज होता है। आठ वर्ष के वह जब थे तब चारों वेदों का अध्ययन कर लिया। बाहर वर्ष के थे, तो सारे शास्त्रों में पारंगत हो गए। सोलह वर्ष की वय में उन्होंने अपना 'भाष्य' लिख दिया और बत्तीस वर्ष की अवस्था में वह इस संसार को विदा कर गए। पर कितना कुछ संसार को दे गए। देश के चार कोनों में चार धामों की स्थापना की। पूजा की अशुद्ध पद्धतियों को शुद्ध किया। जीव बलि पर रोक लगाई। परमात्मा के अनेक स्वरूपों की स्तुति की ताकि चित्त की संकीर्णता और मदान्धता से ऊपर उठकर व्यक्ति एकत्व की भावना से अनुप्राणित हो। यहाँ मन उनके जिए में ही गहरे से जैसे बस रहा है।

''आप नर्मदा के दर्शन नहीं करेंगे?''

स्वर सुनकर विचारों की तन्द्रा भंग होती है। बंसेस्वर महादेव के पुजारी मुझे कुण्ड के पास ही देर से बैठे देखकर यह पूछ रहे हैं। मैं अचरज से उनकी ओर देखता हूँ। मन में आता है, नर्मदा का आचमन किया है। उनके उद्गम स्थल के पास ही तो बैठा हूँ! वह शायद मेरे इस विस्मय को भाँप जाते हैं और कहते हैं, ''नर्मदा माँ का मंदिर सामने है।'' मैं यंत्रवत् मंदिर पहुँच जाता हूँ। काले ग्रेनाइट की सुन्दर प्रतिमा! नर्मदा की इस प्रतिमा के सामने ही स्थित है जगदजननी माँ पार्वती की प्रतिमा और मंदिर। कुछ पल वहाँ ठहर उन्हें नमन करता हूँ। बाहर आकर देखता हूँ, सिरकटी गज सवार और उसके पास लोहित पाषाण की अश्व सवार की दो प्रतिमाओं के पास भीड़ लगी है। एक महिला सिरकटी गज सवार प्रतिमा के पैरों के अंदर से निकलने का प्रयास कर रही है। पूछता हूँ तो पता चलता है यहाँ जो आता है, इस प्रतिमा के पैरों के मध्य से निकलता ही है। जनश्रुति है कि पैरों के मध्य से वह निकल सकता है, जो पापी नहीं हो। इन प्रतिमाओं के बारे में कुछ और जानने की जिज्ञासा है। पता चलता है, यह लाखन एवं उदल की खंडित प्रतिमाएँ हैं। औरंगजेब के शासनकाल में यह खंडित हुई। और फिर पता नहीं कब, यह धारणा प्रचलित हो गई कि सिरकटी गज सवार प्रतिमा के पैरों के मध्य से निकलने वाला सौभाग्यशाली होता है। परम्पराएँ ऐसे ही बनती हैं।

ड्राइवर रोहित अमरकंटक पहले भी बहुत बार आया है सो यहाँ के चप्पे-चप्पे से वाकिफ है। पुरातत्व विभाग संरक्षित कर्णमंदिर समूह मंदिर समूह पहुँचता हूँ...। नागर शैली के बने साफ-सुथरे पाषाण मंदिर। समकोण पर बने हुए। बीच में सुंदर सी पगडंडी। बताते हैं, यहीं शंकराचार्य ने पातालेश्वर प्रतिमा की स्थापना की। पुरातत्व विभाग के कर्मचारी मंदिरों की धुलाई में लगे हैं। कुछ में प्रतिमाएँ हैं, कुछ में हैं ही नहीं। वहीं मिला कर्मचारी कहता है, यह जो साफ-सुथरे मंदिर आप देख रहे हैं, पुरातत्व विभाग की देन हैं। कुछ साल पहले तक यहाँ खंडहर थे। कोई नहीं आता था। पुरातत्व विभाग ने मंदिरों को संरक्षित किया है। पातालेश्वर मंदिर का निर्माण कल्चुरी नरेश कर्णदेव (1041-1073 ई.) द्वारा बाद में कराया गया था। पातलेश्वर मंदिर में प्रवेश करता हूँ। गर्भगृह में है शिवलिंग। अंदर अंधेरा है पर दीप जल रहा है। भला-भला उजास। कर्मचारी बताता है, श्रावण मास के अंतिम सोमवार माँ नर्मदा स्वयं यहाँ आती हैं शिवजी को स्नान कराने। शिवलिंग के ऊपर तक जल भर जाता है। मंदिर से बाहर आता हूँ तो कुछ और आए लोगों से भी यही चर्चा सुनता हूँ। कुछ दूरी पर ही विष्णु और दूसरे देवी-देवताओं के मंदिर हैं। अब अगला पड़ाव है, पास ही स्थित 'माई की बगिया'। गाड़ी शाल वृक्षों के घने झुरमुट से होकर निकल रही है। अद्भुत दृश्य है प्रकृति का। मन नहीं करता, गाड़ी से इस पथ पर चलने का सो गाड़ी को पीछे आने को कहते हुए उतर कर पैदल ही चल देता हूँ। थोड़े अंतराल में ही सड़क से थोड़ा नीचे है 'माई की बगिया'। जनश्रुति यह भी है कि नर्मदा बाल्यकाल में इसी स्थान पर अपनी सखी गुलबकावली के साथ खेला करती थी। कहते हैं कभी हातिमताई भी गुलबकावली के फूल के लिए यहाँ आया था।

यहीं माई की बगिया में पंगत में शायद प्रसाद बंट रहा है। सबसे पहले पवित्र जल परोसा जा रहा है। 'नर्बदा माई के जलु परोसौ'। स्थानीय भाषा में कुछ और भी गाया जा रहा है परन्तु समझ नहीं आता। हाँ, गायन के भावों से पता चलता है, सभी पवित्र नर्मदा के गुण गा रहे हैं। वेद व्यास जी ने नदियों को 'विश्वरूपमातरः' यानि विश्व माताओं की संज्ञा दी है। सच भी है, हमारे यहाँ नदी केवल बहता जल नहीं है। संस्कृति है। और नर्मदा तो आदि नदी है।

अमरकंटक दो नदियों का उद्गम स्थल है। पहली नर्मदा और दूसरी सोन। मैं सोनमुड़ा की राह पर हूँ। शांत, सुरम्य स्थल। प्रकृति की ध्वनियों को सुनते यहाँ मन करता है उन्हें गुनें। कुछ देर च ला कि सोनमुड़ा आ गया। सोन नदी नहीं नद है। ब्रह्मपुत्र की भाँति। कहते हैं, नर्मदा और सोन में कभी भरपूर प्यार था। एक रोज नर्मदा ने अपनी दासी जुहिला को सोन के पास भेजा। जुहिला जब बहुत देर तक नहीं आई तो स्वयं नर्मदा वहाँ चली गई। सोन को जुहिला से प्रेमालाप करते देख उसे बड़ा क्रोध आया। गुस्से में उसी वक्त वह वहाँ से रवानाहो गई। चिरकुमारी रहने की प्रतिज्ञा कर वह पश्चिम की ओर बह दी। निराश, हताश सोन पूर्व कीओर बह पड़ा। यह लोक कहानी यहाँ हर ओर व्याप्त है। इसे सुन ध्यान आया, सभी नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं पर रूठी नर्मदा पश्चिम की ओर बही है। पर्वत, चट्टानों पर उछलते-कूदते। ऋषियों ने शायद

इसीलिए इसे रेवा यानी कूद-फाँद करने वाली नदी कहा है। सोनमुड़ा शोनभद्र संगम स्थल है। यहाँ सोनमुड़ा में गहरी खाई के एक भाग में प्लेटफॉर्म बना है। इस पर खड़े होकर देखते हैं तो मीलों तक नीचे पहाड़ और खाईयाँ ही नजर आती हैं। सोनमुड़ा से लौटता हूँ।... फिर से शाल वृक्षों से घिरे निर्जन पथ पर हूँ। पेड़ इतने घने हैं कि धरा पर धूप को न अवतरित होने दें। कुछ-कुछ अंधकार रचते।

अमरकंटक में पंडों का आतंक नहीं है। होटल-रेस्टोरेंट भी हैं पर कमाने की होड़ वहाँ नहीं नजर आती है। नर्मदा भक्ति की मस्ती में बहता जीवन है यहाँ के लोगों का। नर्मदा के प्रति अगाध श्रद्धा यहाँ के रहवासियों में भी है सो हर ओर माँ नर्मदा की जय का नाद भी अंतराल में सुनाई दे ही जाता है।... बाजार के रास्ते से गुजर रहा हूँ, बोलेरो और दूसरी गाड़ियों के पीछे के शीशे पर 'नर्मदा परिक्रमा वाहन' लिखा है। पद परिक्रमा के साथ इधर वाहनों से भी नर्मदा की परिक्रमा का चलन तेजी से हुआ है। जो दुर्गम पद यात्रा नहीं कर सकते, वाहनों से नर्मदा पथ की परिक्रमा कर अपने को धन्य पाते हैं। एक मोड़ पर साईनबोर्ड पर लिखा है, कपिलधारा। दूसरी सड़क जालेश्वर मंदिर की ओर ले जाती है। मैं उधर हो लेता हूँ। दुपहर जब पहुँचा तो मेरे अलावा कोई और नहीं था। मंदिर में प्रवेश कर शिव का ध्यान करता हूँ कि बाहर से पुजारी जी का स्वर सुनाई देता है, ''बाणासुर ने स्थापित किया था यह शिवलिंग इसलिए इसे 'बाणलिंग' कहते हैं। स्कन्द पुराण में बाणासुर के त्रिपुर और शिव द्वारा उन्हें ध्वस्त करने परन्तु बाणलिंग और उस स्थान जालेश्वर के बचे रहने की कथा है। यहाँ से कपिलधारा की राह लेता हूँ। गाड़ी कोई एक किलोमीटर पहले ही छोड़, पैदल ही चल देता हूँ। कपिलधारा पहुँचने के लिए ढलान उतरना है। गहरी खाई, चट्टानें। कुछ सीढ़ियाँ भी बनी हैं परन्तु उतरते समय सावधानी जरूरी लगती है। थोड़ी दूर उतरने पर ही एक चौक सा आता है, लिखा है, ''कपिलधारा का रास्ता''। उसे छोड़ नीचे उतरना जारी रखता हूँ। अभी खाई समतल नहीं हुई है। उतरते-उतरते साँस फूल जाती है। पेड़-झाड़ियाँ और गुफाएँ और झरना। थोड़ी देर में ही दूधधारा पहुँच जाता हूँ। यहाँ जल चट्टानों पर गिरता है, दूधिया होता हुआ। झरने के पास ही ऋषि दुर्वासा की गुफा है। कहते हैं, ऋषि दुर्वासा ने माँ नर्मदा की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न किया था। नर्मदा ने उन्हें साक्षात् दर्शन दे दुग्ध पान कराया था इसलिए इस स्थान का नाम दूधधारा हुआ। मन में आता है, दुर्वासा धारा का अपभ्रंश दूधधारा हो सकता है। कुछ देर वहीं बिताता हूँ।...

उतरा हूँ सो अब चढ़ाई कठिन नहीं लगती। चट्टानों पर, सीढ़ियों के बने रास्ते पर चढ़ते-चढ़ते फिर से चौकनुमा जगह से कपिलधारा पहुँचता हूँ। थोड़ा पहले भी चट्टान पर तेजी से पड़ते पानी की ध्वनि सुनता हूँ। धारा का जल जहाँ गिर रहा है, वह स्थान अभी और नीचे है। माने अब फिर से उतरना है। पर यह उतरना थोड़ा कठिन है। भीगी चट्टानों पर सावधानी से कदम रखते हुए कपिलधारा तक पहुँचने का जतन करता हूँ।... एक दो बार ऐसा हुआ भी, जहाँ पैर रखा वहाँ इतनी फिसलन थी कि सँभलता नहीं तो सिर के बल गिरता।... सिंहरन भरे मन में फिर भी झरने के गिरते जल के पास पहुँचने का उत्साह इस कदर था कि परवाह नहीं करते पहुँच ही गया। कोई सौ-सवा-सौ फीट की ऊँचाई पर से बड़े वेग से गिर रहा है यहाँ जल। कहते हैं, सोने से क्रोधित नर्मदा विपरीत दिशा की ओर तेजी से बही। बगैर इस बात की परवाह किए कि पहाड़ की बड़ी चोटी के बाद गहरी खाई है। महर्षि कपिल ने नर्मदा से प्रार्थना करते उन्हें अमरकंटक विराजने का आग्रह किया। पर नर्मदा न रुकी। हाँ, कपिल मुनि की इस श्रद्धा से वह प्रसन्न हुई और उन्हें अमरत्व का आशीर्वाद दिया। बताते हैं, तभी से प्रचण्ड वेग से बहती इस धारा का नाम कपिलधारा हो गया।

चट्टानें लाँधते वहाँ, जहाँ कपिलधारा गिरती है, बिल्कुल उसके पास पहुँच जाता हूँ। वेग से गिरती धारा की बूँदों से भीगी चट्टान पर वहीं बैठ जाता हूँ। देखता हूँ, नव विवाहित जोड़ा कपिलधारा के पास फोटो खिंचवाने में लगा है। धारा गिरने वाले स्थान पर सच में बहुत सारा कचड़ा पड़ा है। लोग आते हैं, खाने-पीने की सामग्री यहीं छोड़ कर चले जाते हैं। कितना धोए गंदगी को नर्मदा! मन में विचार आया, प्रकृति की सुन्दरता की चाह सभी को है, पर उसे स्वच्छ रखने का प्रयास कोई नहीं करता। ...अनुभूत होता है, कपिलधारा क्रन्दन कर रही है, अपने पास बिखराई गंदगी को देखकर और निरंतर अपने सिकुड़ते स्वरूप को लेकर।

उदास मन से वहाँ से विदा लेता हूँ। पहाड़ की उतरी घाटी चढ़ते, नर्मदा के झरने के स्वर में अपना स्वर मिलाते मन में ख्याल आता है, यहीं से मैकलसुता नर्मदा घाटियाँ, पहाड़ लाँघते दूर तक बहती चली जाती है। गंगा जी का उद्गम स्थल तो दुर्लभ है, कैसे कोई वहाँ पहुँचे! पुराण कहते हैं, गंगा जी नारायण पर्वत के नीचे से निकली हैं। वहाँ तक तो संभवतया कोई मनुष्य अब तक पहुँच ही नहीं पाया है पर नर्मदा उद्गम जाना सुगम है।

मैकलसुता! शिवपुत्री! रेवा! ...और मन को आनंद देने वाले शब्दों से व्यंजित नर्मदा! परिक्रमा की जाने वाली शिव की एकमात्र नदी के उद्गम स्थल से लौट रहा हूँ। गाड़ी अचानकमार टाईगर रिजर्व की घुमावदार घाटी से उतर रही है। हवाओं के झोंको से जाग रहे मन में बारम्बार ध्वनित हो रहा है, ''नर्मदा के कंकर, सब शिवशंकर''।

3/39, गाँधी नगर, न्याय पथ,
जयपुर-302015 (राजस्थान)

कहानी

द हीरो

इंदिरा दाँगी

स्त्री लेखिका इंदिरा दाँगी हिन्दी साहित्य में एम.ए. हैं। सन् 2015 का साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार, आधा दर्जन से अधिक अन्य पुरस्कार। 'हवेली सनातनपुर' उपन्यास भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित। 'एक सौ पचास प्रेमिकाएँ' कहानी संग्रह। 'आचार्य' नाटक किताबघर प्रकाशन से शीघ्र प्रकाश्य।

जिला पंचायत में आज नए मुख्य कार्यपालक अधिकारी आ रहे हैं।

दफ्तर के सभी कर्मचारी नए साहब के स्वागत में प्रस्तुत, कार्यालय के बाहर परिसर में खड़े हैं। हाथों में गेंदे के फूलों की मालायें हैं और चेहरों पर मातहती विनम्रतायें। साहब के आने से पहले उनका नाम यहीं आ पहुँचा है—कुणाल सिंह! जैसा कि नाम है शहरी, सुना है दिल्ली में पले-बढ़े हैं। बड़े बाप के बेटे हैं। नौकरी में कुल जमा ढाई-तीन साल हुये हैं। और पिछले दफ्तर में चार कर्मचारियों को सस्पेंड किया है। चपरासी को तो सुना, सिर्फ इसलिए सस्पेंड कर दिया था क्योंकि ड्यूटी पर उसकी झपकी लग गई थी... सो यहाँ का स्टॉफ अपनी नौकरियों की सलामतियों के ख्याल के साथ सर्तक खड़ा है।

''एक नौकरी में एक परिवार पलता है, बड़े साहब लोग कहाँ ये सब जानते हैं।''

चपरासी रामचरित से क्लर्क मनोहर से कहा। वो पुराने दफ्तर के अनजाने चपरासी के बारे में सुनकर देर से उदास है। उसके तीन बच्चे हैं और वो दफ्तर के बाद घंटों बीड़ियाँ बनाने का काम करता है। थकान की एक हल्की खुमारी हर वक्त उसकी आँखों में झिलमिलाती है और आज वो याद कर रहा है इस महीने ड्यूटी पर कितनी बार उसका मन सो जाने को हुआ है। यकीनन वो डरा हुआ है।

डरे हुये वो बाकी सब भी हैं और यहाँ खड़ा हर कर्मचारी अपने कामों-कर्त्तव्यों में बिल्कुल नए सिरे से दक्ष हो जाना तय कर रहा है। बहरहाल, साहब की जीप परिसर में आती दिखी, कई दिल एक साथ धड़के। जीप रुकी और अपने नाम—से प्रभावशाली साहब ने जिला पंचायत कार्यालय की जमीन पर पहला कदम जमाया—ऊँचा कद, कसा शरीर, गोरा शहरी चेहरा और चेहरे पर सिंह जैसा भाव। कर्मचारियों ने सलाम ठोकने वाले अदबो-अंदाज में एक-एक कर अभिवादन किया, फूलमालायें पहनायी और रामचरित ने तो आगे बढ़कर पैर छू लिये, इस नौकरी में उसका बड़ा परिवार पलता है।

''ये सब तो ठीक है।''

औपचारिक परिचय के बाद साहब ने बोलना शुरू किया और उन्नीस-बीस जोड़ी आँखें और उन्नीस-बीस दिल अपने नए सामंत के हुजूर में बाअदब हो गए।

''एक बात में क्लियर कर देना चाहता हूँ, लापरवाही...अनुशासनहीनता...'' वे पंक्ति-बद्ध एक-एक कर्मचारी के चेहरे पर नजर डालते हुए टहलने लगे। दृश्य कुछ ऐसा था जैसे शिक्षक के सामने कुसूरवार छात्र परेड की मुद्रा में खड़े हों।

''चुगलखोरी... भ्रष्टाचार... और राजनीति... ये सब मुझे अपने ऑफिस में हर्गिज नहीं चाहिये।''

उत्तर में अनुमोदन के सब मस्तक ऐसे हिले जैसे बुजुर्ग किस्सागो की कहानी के बीच-बीच में नन्हे बच्चे हामियाँ भर रहे हों।

''वैसे भी आप लोगों ने मेरे बारे में सुन ही लिया होगा और अगर नहीं सुना है तो...'' अधिकारियों वाले लहजे में अधिकारी मुस्कुराया, ''...अब तो हमें साथ ही काम करना है।''

स्टेनो शिल्पा ने गले में पड़ा दुपट्टा नीचे को खींच लिया। चपरासी रामचरित ने अपने सिर की टोपी छूकर उसके होने में यकीन किया। बड़े बाबू ने जेब से रूमाल निकालकर सूखे होंठ पोछे। कम्प्यूटर ऑपरेटर मुरारी ने अपनी मुद्रा 'सावधान' की बना ली और क्लर्क मनोहर ने जेब का सेलफोन स्विच ऑफ कर दिया।

''ये समय ऑफिस का है और हम सब को ऑफिस में होना चाहिये, एम आई राइट?''

आगे बढ़ गए युवा अधिकारी की तेज चाल से हमकदम होने के लिये स्टॉफ को लगभग दौड़ना पड़ा।

टेबिल पर पहुँचते ही साहब ने फाइलें पलटना शुरू कर दिया। एक फाइल पर हाथ रुका, फिर देर तक रुका रहा। सहसा घंटी बजी। स्टॉफ के दिल धड़के प्यून दौड़ा, क्लर्क मनोहर को तलब किया गया है।

पहला हुक्म...पहली तालीम?

''मनोहर, ये जनपद पंचायत भांडेर की फाइल है, माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों के मध्याह भोजन बजट का कुल ब्यौरा है इसमें।''

''जी सर।''

''हमारे कार्यालय से स्कूलों को सौ प्रतिशत उपस्थिति के आधार पर बजट राशि जारी की जाती है आज तक।''

''जी।''

''हूँऽह!''—अधिकारी के माथे पर बल था—''लेकिन अटेंडेंस तो औसतन सत्तर प्रतिशत के आसपास है सबों की।''

''जी।''

''अच्छा! जोशी जी को भेजिये। मैं आपको बाद में बुलाता हूँ।''

''लेकिन सर! छोटे सर तो मेडीकल लीव पर हैं।''

''अच्छा! ठीक है, एक आदेश तैयार करवाकर लाइये कि स्कूलों को जारी बजट राशि सौ प्रतिशत से घटाकर सत्तर प्रतिशत की जाती है। आदेश से, मुख्य कार्यपालक अधिकारी, जिला पंचायत और मुझसे साइन करवाने के बाद ये आदेश जारी कर दीजिये।''

''नहीं सर!'' मनोहर के मुँह से ऊँची आवाज निकल गई।

आला साहब ने फाइल से सिर उठाकर उसकी ओर देखा। एकबारगी तो उसकी पिंडलियों का लहू काँप गया फिर सूखे होठों पर जुबान फेरता वो दुबला-नाटा-काला कर्ल्क बोला—

''सर, इस इलाके के गाँव गरीब हैं। सालों से अकाल का डेरा रहा है, फिर बुन्देलखण्ड में उपजता ही क्या है!... जब से स्कूलों में दिन का खाना शुरू हुआ है, ऐसे कितने ही बच्चे जी गये हैं जो भूख से मर सकते थे।''

''मुझे आपसे योजना की तारीफ नहीं सुननी है, आदेश का पालन कीजिये।''

''मैं बस इतना निवेदन कर रहा हूँ सर कि...'' वो कहते-कहते रुक गया जैसे अपना अंजाम सोच रहा हो। खिड़की के बाहर तेज धूप में एक व्यथित टिटहरी रह-रहकर चीख रही थी।

''अपनी बात पूरी कीजिये।''

''सर कोई भी डिसीजन लेने से पहले प्लीज, आप एक बार स्कूलों की विजिट...।''

''ओ आई सी! तो अब आप मुझे सिखायेंगे कि निर्णय कैसे लिये जाते हैं।'' आला साहब ने अपनी कुलीन उँगलियाँ एक-दूसरे में फँसाते हुये कहा।

मनोहर चुप रह गया।

''तो आप ये कहना चाहते हैं कि सत्तर प्रतिशत की अटेंडेंस पर सौ प्रतिशत बजट देना उचित है। बचा हुआ तीस परसेंट भ्रष्ट स्वसहायता समूहों को ऐश करने के लिये देते रहे?''

''कहाँ का भ्रष्टाचार सर?''—क्लर्क की आँखें अपने सबसे ऊँचे अधिकारी की आँखों में थीं—''माध्यमिक स्कूलों को प्रति छात्र चार रुपया दिया जाता है जबकि प्राथमिक के बच्चों को तो ढाई रुपया ही प्रति देती है सरकार। आप ही सोचिये, ढाई रुपये में एक बच्चे का पेट कैसे भर सकता है? कुल सौ प्रतिशत बजट भी सत्तर परसेंट अटेंडेंस के लिये कम पड़ता है। कितने स्वसहायता समूह, शिक्षक-पालक संघ के लोग और हेडमास्टर हमारे दफ्तर में कम बजट की शिकायतें लेकर आते रहते हैं। जब से ये योजना हमारे जिले में आई है, मैं ही इसकी फाइल पूरी करता रहा हूँ।... बजट घटाना बच्चों के मुँह से निवाले छीनने जैसा निर्णय है सर। मेरा निवेदन है आपसे, प्लीज ऐसा आदेश मत दीजिये सर! गरीब बच्चों की भूख आपने देखी नहीं है।''

''और आपने देखी है?'' अधिकारी की आँखों में सुर्ख डोरे उतरने लगे।

''जी सर, मैंने देखी है!'' उसने सिर झुकाते हुये कहा।

एक क्लर्क धड़कते दिल, काँपती टाँगों और पहाड़-सी दृढ़ता के साथ अपने आई.ए.एस रैंक अधिकारी के सामने था। ...कमजोरों के हक में खड़ा एक कमजोर।

''तो आप ये कह रहे हैं कि मेरा डिसीजन गलत है।''

''मैं बस इतना निवेदन कर रहा हूँ कि जिस डिसीजन से सैंकड़ों बच्चों की भूख जुड़ी है उसे लेने से पहले कम-से-कम एक विजिट उन स्कूलों की...।''

''बस!'' अधिकारी साहब खड़े हो गये, मनोहर को अपना परिवार याद आने लगा।

''अब या तो आप अपने बर्ताव के लिए माफी माँगिये और ये आदेश तैयार करवाकर लाइये या...।''

एक पल का मारक मौन साधा अधिकारी साहब ने, मनोहर का दिल बेतरह धड़क रहा था।

''हम कल बात करेंगे।''

''सर वो...।''

''अब आप जा सकते हैं।''

केबिन से बाहर निकला तो मनोहर के चेहरे पर सन्नाटा था। परवश-सा यंत्रचलित अपनी सीट पर आ बैठा। शिल्पा, बड़े बाबू, मुरारी और रामचरित सबकी आँखों में प्रश्नों के इन्द्रधनुष उतर आये।

''क्यों बुलाया था बड़े साहब ने?''

''क्या कह रहे थे?''

''चेहरा क्यों उतरा हुआ है, साहब ने डाँटा क्या?''

''कैसा मिजाज है सर का?''

हर सवाल का उसने ऐसा जवाब दिया कि जवाबों में दरअसल कुछ नहीं मिला सवालों को। मनोहर क्या जानता नहीं, सहकर्मी मित्र नहीं होते।

कभी-कभी वो अपार अविश्वास से सोचता है कि दिनों-महीनों-सालों एक ही दफ्तर में काम करते लोग सहकर्मी-प्रतिस्पर्धी-आलोचक... शत्रु तक बने रहते हैं, बस, मित्र नहीं हो पाते! एक बार ऑपरेटर मुरारी तीन रोज आधा-आधा घण्टा लेट आया तो बड़े बाबू ने उसकी रिर्पोट डाल दी। वेतन कटी बेचारे की जबकि उसने मौखिक अनुमति तो ले ही रखी थी। उसकी बीवी को बच्चा हुआ था और अस्पताल, घर, दफ्तर के बीच अकेला, परेशान मुरारी उन दिनों खाने के डिब्बे के बिना आता था। यहाँ सब एक-दूसरे के लिये आस्तीनों में विषधर छुपाये रखते हैं। इसी मुरारी ने स्टेनो शिल्पा की शिकायत कर दी थी कि वो देर-देर तक सेलफोन पर बातें करती रहती हैं, यद्यपि काम में शिल्पा का हाथ कोई नहीं पकड़ सकता। ऑफिस की सबसे मेहनती कर्मचारी को पूरे स्टॉफ के सामने छोटे सर ने डाँटने के लहजे में बातें सुनाई थीं, पर अपनी बारी पर जिस शिल्पा की आँखों से टप-टप मोती झड़ रहे थे, वही शिल्पा चपरासी रामचरित की उस जरा भूल को लेकर सीधी बड़े साहब के पास पहुँच गई थी कि वो पूर्व दिवस में ऑफिस का एक पंखा चालू छोड़ गया था। रामचरित कह भी नहीं पाया कि उस दिन दफ्तर बंद करते वक्त बिजली गुल थी... और बड़े साहब ने जो फटकारा था उसे, केबिन के बाहर तक आवाज आ रही थी। पूरे दो दिनों तक उसने न खैनी-दर-खैनी खाई, न चाय-पे-चाय पी, लेकिन यही रामचरित कभी छोटे साहब, कभी बड़े साहब तो कभी दूसरी तरफ बैठने वाले स्टॉफ के पास बैठा-खड़ा बतियाता रहता है कि फलां ने ये कहा-वो किया!... तो भी मनोहर को ये वाला दफ्तर उस दफ्तर से बेहतर लगता है जहाँ वो दो साल पहले तैनात था। वहाँ छोटे साहब-बड़े साहब की राजनीति में निरीह मातहत ऐसे इस्तेमाल किये जाते थे कि मनोहर को दुष्यन्त कुमार की पंक्तियाँ रह-रहकर याद आतीं,

''तुमने इस तालाब में रोहू पकड़ने के लिये, छोटी-छोटी मछलियाँ चारा बनाकर फेंक दीं।''

कईयों की तरह मनोहर का तबादला भी सिर्फ इसलिए किया गया क्योंकि वो रिटायर होने जा रहे बड़े साहब और ऊँची पहुँच वाले छोटे साहब के बीच बैटल बन चुके दफ्तर में न इस ओर आ पाया, न उस तरफ जा पाया, और बावजूद इसके कि उसका दिल बड़े साहब को पसन्द करता था, उन्हीं ने उसे बाहर कर दिया।

''अब बता भी दीजिये मनोहर जी, क्या हुआ सर के केबिन में?''

चंट सुन्दरी शिल्पा की मीठी मनुहार भी जब उसने टाल दी, सहकर्मियों के उमड़ते दिलों में ठंडा अफसोस उतर गया, एक मनोरंजक किस्सा हाथ लगते-लगते रह गया।

उस पूरा दिन मनोहर का दिल रह-रहकर बोलता रहा। दो टुकड़ों में बँटा मनोहर आमने-सामने था। जब भी सर के केबिन से घंटी की आवाज आती और रामचरित काम लेकर इधर-उधर दौड़ नहीं जाता, उसे लगता, हो-न-हो वही तलब हुआ है। दिल की दीवारों के पीछे एक मनोहर काँप रहा था और दूसरा-बिल्कुल ही नया मनोहर-बरगद-सा विराट, दृढ़ और शांत था।

''क्या जरूरत थी साहब से इतनी बातें करने की? भूल गये, घोड़े की पिछाई और अफसर की अगाई कभी नहीं करनी चाहिये। अब जो लात पड़ेगी तेरी नौकरी पर...।'' कमजोर मन गिनाने लगा—झंग बूढ़े माँ बाऊजी की दवाईयाँ, ...सोनू-मोनू के स्कूल की फीस, ...रुपये-रुपये का सामंजस्य बैठाती रेवती, ...रोज की तरकारी, गेहूँ, तेल। गीली आँखों से कमजोर मन चुप हो गया। अब जहन में दिल के दूसरे हिस्से की आवाज बुलंद थी—

''धिक्कार है ऐसी जिन्दगी पर, पूरी उमर साली, जीने की फिकर में ही बीत जाये अगर तो जानवर-इंसान में फर्क क्या? अगर तेरे बीच में पड़ जाने से सैकड़ों बच्चों को भरपेट खाना मिलता रह सकता है तो पीछे मत हट मनोहर! जीवन में और कितना अन्याय देखोगे-सहोगे?''

दिल उसे चित्रशाला में ले गया :

—राशन की दुकान से मिलता घटिया अनाज, मिलावटी तेल।

—टूटे नाले, उखड़ी सड़क, आवारा जानवरों और कूड़े-करकट से गंधाती उसकी बस्ती।

—अफसरों का जरा-जरा बातों पर अपमानित करता-सा बर्ताव।

मन मसोसता बच्चा मनोहर!... मन मसोसता तरुण मनोहर! ...मन मसोसता युवा मनोहर! ...मन मसोसता प्रौढ़ मनोहर??

''नहीं!'' उसके मुँह से निकल गया। सहकर्मी अपने कामों के बीच उसे देखने लगे और किसी ने ध्यान दिया, उसका चेहरा कभी बुझा-बुझा-सा हो जा रहा है, कभी दिये की लौ-सा दिपदिपाता। अपने में वो गहरा डूबा दिख रहा था और अंततः किसी ने कहा—

''आज घर नहीं जाना है क्या? उठिये, दफ्तर की छुट्टी हो चुकी है।''

''आँआँ!'' वो चौंका और बाहर निकल आया।

सिटी बस से घर लौटते मनोहर ने बोझिल पलकें मूँद लीं और खिड़की से सिर टिका लिया। दिन भर की तपी हवा अब ठंडा रही थी। बहती हवा के स्पर्श में हल्का सुकून था। मनोहर को याद आया, आज उसने लंच नहीं किया, पेट में भूख महसूस होने लगी थी, आग जैसी भूख! सहसा उसने सोचा उन भूखे बच्चों के बारे में जिन्हें दिन भर स्कूल के मिड डे मील की प्रतीक्षा रहती है। उसके घर के पास ऐसा एक सरकारी स्कूल है और उसने देखे हैं भोजन की कतार में खड़े बच्चे, आतुरता, प्रतीक्षा और भूख में जिनका अंग-अंग थिरकता-सा है और जब वे खाना खाते हैं चेहरों पर परम आनंद का ऐसा भाव होता जैसे नन्हे कृष्ण माखन खा रहे हों।

परम आनंद!

नन्हे कृष्ण!

भरपेट खाना!

घर पहुँचा तो बरामदे में बाऊजी को खाट पर सोते पाया। वे सख्त बीमार रहते हैं। रात-रात भर जागते हैं और जब कभी उनकी आँख लग जाती है, परिवार सुकून की साँस लेता है। मनोहर खाट के पास, पाटों के फर्श पर बैठ गया। बाऊजी के सोते चेहरे पर कैसी पवित्र शांति है, कल को अगर उसने साहब से माफी नहीं माँगी और सस्पेंड हो गया तो बाऊजी शायद महीनों पलकें न झपकायें। पहले से ही दस कष्ट झेल रही जर्जर काया क्या पता ये सदमा सह ही न पायें। वो सिहर उठा और बाऊजी को निर्निमेष निहारने लगा, उनके चेहरे पर कैसी सम्पन्नता है।

बाऊजी!

भारी मन से वो उठ आया। देहरी के भीतर पाँव रखा तो माँ पर नजर पड़ी। सधे हाथों से पुराने चिथड़ों-कपड़ों के तार बनातीं, दरी बुनतीं माँ को उसने गौर से देखा। माँ के चेहरे पर सृष्टि रचयिता-सी व्यस्तता है। 'बेस्ट आउट ऑफ द बेस्ट' ये सब चीजें, तार-तार लत्तों से बुने आसन-दरियाँ, सीकों के बीजने, पुराने पैंटों से सृजित थैले... हाँ, बिल्कुल सब चीजें इतनी खूबसूरत इसलिये बन जाती हैं क्योंकि उनकी बुनाई में एक तार माँ अपनी आत्मा से खींचकर मिलाती हैं।

जब बाऊजी पोस्टमैन थे और माँ दूसरों के घरों में खाना बनाती थीं और मनोहर की पढ़ाई के अलावा उसकी तीन बड़ी बहनों की शादियों और इस छोटे-से मकान के लोन के लिये वर्षों तक अथक परिश्रम से रुपया-रुपया जुटाना था, तब एक क्लान्ति माँ के चेहरे का स्थायी भाव बन गई थी, पर जब मनोहर को क्लर्की मिल गई सो भी सरकारी, घोर दुनियावी माँ ने जैसे बाहरी दुनिया से वैराग्य ले लिया। अब वे पूरा समय पोते के साथ खेलने, बाऊजी की सेवा करने और घर को सजाने-सँवारने में लीन रहती हैं और साध्वी-सी सुन्दर दिखती हैं। ...अगर नौकरी जायेगी तो भी क्या माँ ऐसी ही सुन्दर दिखती रहेंगी?

माँ!!

उसके दिल में हूक उठी और सृजन के ताने-बाने में उलझी माँ ने चौंककर दरवाजे की ओर देखा—

''अरे मनु, तू कब आ गया? मैं ऐसी मग्न थीं कि ...बैठ, मैं पानी लाती हूँ।''

माँ कमर पर हाथ टिकाती उठ रही थी कि रेवती पानी का लोटा-गिलास रख भी गई। मनोहर ने नजर भर जाती हुई पत्नी को देखा। रेवती के सिर से कभी पल्ला नहीं सरकता और काम करता हाथ कभी नहीं थमता। दो छोटे कमरों के इस घर में उसका जीवन ऐसा रचा है जैसे फूल में खुशबू। परिवार की ही नहीं, बाहर पूस की झोपड़ी में बँधी श्यामा गाय की, मुँडेर की गौरयों की, गली के कुत्तों की भी अन्नपूर्णा है रेवती। उसकी जरा-सी वेतन में सब कैसे ढाँपे रहती है वो, मनोहर नहीं जानता। अगर वो सस्पेंड हो गया तो इस अन्नपूर्णा के हाथ खाली हो जायेंगे।

रेवती!!

उसने अपनी कल्पना में पत्नी के माथे का पल्ला पीछे सरक जाते हुये देखा।

''मनु, कहाँ खोया है? और ये मुँह कैसा हो रहा है तेरा? दफ्तर में कोई बात हुई क्या?''

''नहीं तो!'' वो बेवजह मुस्कुराया।

तभी रेवती चाय का ट्रे लेकर आई। प्याली पकड़ते हुये नजरें मिलीं और उसने आँख मार दी। पत्नी शरमाती-मुस्कुराती आगे बढ़ गई और वो सोचने लगा, कल दफ्तर में चाहे जो हो, परिवार आज तो खुश रहे।

''पापा आ गये! पापा आ गये!''

सोनू-मोनू पड़ोस से खेलकर लौटे और चहकते हुये उससे लिपट गये। सात साल की सोनू और पाँच साल का मोनू—उसके बचपन के दो चेहरे! जीवन के दो उद्देश्य। साँसों की दो सार्थकतायें।

दोनों बच्चे गोद में आ चढ़े। उनके स्पर्शों से मनोहर का दिल हिल गया।

सोनू!!

मोनू!!

''कल साहब से माफी माँग लेना!'' दिल के भीतर से एक बोला और प्रतिक्रिया में दूसरे ने गोद से बच्चों को उतार दिया।

वो उठा और बस्ती में घूमने निकल आया। इस बस्ती में उसके घर जैसी कुछेक ही पक्की छतें हैं और कुछेक छतों के नीचे ही उस जैसी पक्की आमदनी। बाकी यहाँ के कुल बाशिन्दे छोटे कारीगर, कुटीर दुकानदार या हम्माल-मेहनतकश हैं। जाहिर है, लोग उसका लिहाज

करते हैं, आते-जाते दुआ-सलाम कर लेते हैं और उसे 'मनोहर बाबू' कहकर पुकारते हैं। उनकी एकमत राय है कि मनोहर बाबू के जीवन में कोई कष्ट नहीं है।

जूते की सिलाई कसते राधेश्याम मोची ने अपनी गुमठी दुकान से उसे सलाम किया और प्रतिअभिवादन में वो बस मुस्कुराया।

कल अगर वो सरकारी नौकरीमंद न रहा तो ये राधेश्याम मोची, ...ये मोहन धोबी, ...ये रमेश कारीगर, ...क्या इन सब के पास तब भी उसके लिये अभिवादन बचेंगे?

चलते-चलते बस्ती से निकलकर मुख्य सड़क के किनारे आ गया। उसका पड़ोसी हरीराम कुशवाहा यहाँ सब्जी का ठेला लगाता है और शाम के वक्त उसका सात साल का बेटा विभोर उसकी मदद को साथ खड़ा रहता है।

मनोहर पास पड़ी बैंच पर बैठ गया है—कमजोर! क्लान्त!

''नमस्ते मनोहर बाबू! क्या हाल हैं?''

हरीराम हमेशा की तरह खुश मिला। वो फुर्सत में था और ठेले पर सजी चटख हरी, कत्थई, पीली, जामुनी सब्जियों को पानी के हल्के छीटों से चमका रहा था और नन्हा विभोर खनकती चिल्लर से खेल रहा था।

और तभी एक ग्राहक आ गया, मनोहर उत्तर देने से बच गया। उसने विभोर को अपने पास बुलाया—

''क्यों विभोर, तू हर रोज स्कूल जाता है?''

''हाँ।''

''तेरे स्कूल में खाना मिलता है ना?''

''हाँ।'' अबकी हाँ में ज्यादा खुशी घुली थी।

''आज क्या खाया?''

''आज तो मंगलवार था ना, आज हमें खीर-हलवा-पूड़ी मिली थी। और पता है अंकलजी, मैं अम्मा से हर दिन पूछता हूँ, मंगलवार कब आयेगा, मंगलवार कब आयेगा क्योंकि मंगलवार को हमारे स्कूल में इतना मीठा खाना मिलता है...।''

''और बाकी दिनों?''

''बाकी दिनों भी मैं खूब खाता हूँ दाल, भात, रोटी। एक दिन तो थाली में रसगुल्ला था, इत्ता बड़ा रसगुल्ला।''

उसकी उँगलियों में काल्पनिक रसगुल्ला आ गया और चेहरे पर मिठास।

''अगर तुझे स्कूल में भरपेट खाना मिलना बंद हो जाये तो?''

उसके प्रश्न से बच्चा डर गया और दौड़कर अपने पिता से जा लिपटा—मनोहर का द्वन्द जाता रहा।

अगली सुबह दफ्तर जैसे उसी का इन्तजार कर रहा था। सीट पर बैठ भी नहीं पाया कि रामचरित ने आकर आदेश सुनाया।

''बड़े साहब ने आपको तलब किया है।''

मनोहर दो पल खड़ा जैसे अपना कतरा-कतरा इकट्ठा कर रहा हो फिर कदम-कदम आगे बढ़ने लगा।

''मनोहर बाबू, कोई दिक्कत है?'' ...रामचरित ने उसका कंधा छूकर पूछा।

''अब नहीं है।'' वो ऐसी आवाज में बोला जो रामचरित ने पहले कभी नहीं सुनी थी।

उसे सामने पाते ही मुख्य साहब का फाइल पर चलता पेन थम गया।

''तो मनोहर, क्या तय किया है आपने? कल के बर्ताव के लिए माफी माँगकर ये आदेश तैयार करवायेंगे या नहीं?''

तकरीबन जीत चुके व्यक्ति जैसी गर्वीली प्रसन्नता में साहब ने पूछा।

''सर, मेरा वही निवेदन है, डिसीजन लेने से पहले एक विजिट...।''

''क्या??'' ऊँचा अधिकारी पल भर को ऐसे चौंका जैसे रात में सूर्य देख रहा हो, पर अगले ही क्षण उस चेहरे पर निर्णय का रंग था और आँखों में प्रशंसा, दया और कठोरता की चमक।

''ठीक है। हम विजिट पर चलते हैं सिर्फ आप और मैं, पर सोच लीजिये, अगर सरकारी आदेश में रुकावट के दोषी पाए गये तो आप पर कार्यवाही ही जायेगी।''

सर, और अगर मैं दोषी नहीं पाया गया तो?... मनोहर ने कहा नहीं, बस सोचा।

मुख्य साहब की जीप में जब मनोहर भी साथ रवाना हुआ, पीछे दफ्तर में अंदाजे-अनुमान-अटकलें तेज बरसते ओलों की तरह हर तरफ बिखरने लगीं—

''सर मनोहर को विजिट पर साथ क्यों ले गये? और अगर ले भी गये तो सिर्फ उस अकेले को ही क्यों?''

''मनोहर ने ऐसी कौन-सी जादू की छड़ी घुमा दी साहब पर कि दूसरे ही दिन वो उनकी नाक का बाल हो गया?''

''ये मनोहर बड़ा घुन्ना है!''

''अरे तुम्हें साहब का मिजाज नहीं पता। ये दूध पिला-पिलाकर मारते हैं। देखना सबसे पहला पनिशमेंट भी इसी मनोहर को मिलेगा, बहुत ओवर स्मार्ट है ना वो! हुँऽह!''

बातों बुराइयों के बाहर चुप खड़ा रामचरित जा चुकी जीप की ओर देख रहा था—

''भगवान आपके साथ रहे मनोहर बाबू, मेरे बच्चे भी सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं!''

जीप बढ़ रही थी। चमकीली काली सड़कों, पले पुसे फूल-पेड़ों और खूबसूरत शहरी बस्ती से आगे वे तरक्की के कच्चेपन जैसी सड़क पर आ चुके थे।

''किस गाँव की तरफ चलें मनोहर?'' ड्राइवर की बगल वाली सीट पर बैठे कुणाल साहब ने बिना पीछे देखे पूछा।

''जहाँ आप चाहें सर।''

मनोहर की आवाज में निपट सरलता थी और चेहरे पर गहरे विश्वास का भाव जिसे महसूसते अधिकारी साहब चिढ़ गए—ये मामूली कर्मचारी! शेर के जबड़े में सिर है फिर भी...।

पर वे चुप रहे। मन बोझिल है, कल रात उन्हें देर से नींद आई थी। मातहत के मानमर्दन, माफी और अपने बड़प्पन की कल्पनायें करते रहे थे और अभी जो घट रहा है बिल्कुल ही बौखला देने वाली बात, नितांत अनपेक्षित!

—अब तक इस क्लर्क को सस्पेंड क्यों नहीं किया?

—क्यों एक मामूली कर्मचारी के कहने पर मैं विजिट पर चला आया?

—मैं इसे बर्दाश्त कर रहा हूँ, क्यों? क्यों? क्यों?

आला अफसर के चेहरे पर गुस्से का नहीं अनमनेपन का भाव था। पलटकर देखा, क्लर्क का चेहरा शांत था।

इसे मुझसे राई-रत्ती भर भी डर नहीं लगता? ...बताऊँगा इसे!

एक उच्च अधिकारी के कुल प्रशासनिक प्रभाव-वैभव-दम्भ से कुणाल का चेहरा धूप में जलती झील-सा चमकने लगा।

कंटीले झाड़ों और नुकीले पत्थरों वाली गर्द-गुबार की राह-राह एक गाँव तक जाकर जीप रुकी। शिलाखेत पर अंकित था—सनातनपुर। सरकारी जीप रुकती देख इधर-उधर चबूतरों पर बैठे, काम करते लोग उठ आये और सरपंच इतनी जल्दी उपस्थित हो गया कि महानगरीय अधिकारी साहब को बहुत-बहुत आश्चर्य हुआ।

शहरी लोग नहीं जानते, गाँव होता है, एक बड़ी कुटुम्बनुमा रचना। तरक्की में भले देहात शहरों से पिछड़े हों, पर सामाजिकता में वे शहरों से कहीं श्रेष्ठ हैं। जहाँ सब एक-दूसरे की खबर रखते हैं, अदब-लिहाज निभाते हैं और शत्रुता में भी शालीनता बरतते हैं, इन इंसानी मुक्ताओं, नीलम हीरों, मणियों से बनी प्रार्थना की माला में मेरुमणि होता है गँवईपन! ...निखालिस हिन्दुस्तानी गँवईपन!!

तो आगे-आगे सरपंच, पाँच-सात तरुण-अधेड़-वृद्ध चले रहे थे। बीच में आर्य अधिकारी साहब और पीछे-पीछे काला-नाटा-दुबला क्लर्क मनोहर। गाँव में स्कूली उम्र के बच्चे नहीं दिख रहे थे, सनातनपुर के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ-सरपंच ने सरकारी अफसर को खुश करने का एक मौका पाया।

''सर, जब से सरकार ने स्कूल में खाना देना शुरू किया है, स्कूल टाइम में गाँव का एक बच्चा आपको आवारा घूमता नहीं मिलेगा। जो पढ़ाई के नाम पर अपना जी टुकाते फिरते थे, वे मौड़े भी स्कूल जाने लगे हैं और तो और साहब...''—प्रौढ़ सरपंच के चेहरे पर भविष्य की सुनहली रोशनी उतर आई,—''...जिन मौड़ियों की पढ़ाई छुड़ा दी गई थी, दिन के खाने के लोभ में माँ-बापों ने फिर से उनका नाम स्कूल में लिखा दिया है।''

पर अधिकारी का गौर इस पर नहीं वरन् अपने नये अचम्भेनुमा अनुभव पर था, खपरैल बखरियों और पक्के चबूतरों-बरामदों के बीच पटियों की सड़क आसमान में बादल की पतली लकीर-सी थी (जिसे इन्द्रवाहक ऐरावत के प्रस्थान का धूल-मार्ग माना जाता है)। दरख्तों की धूल, सुलगते चूल्हों का धुँआ, मवेशियों की गंध और कच्चे मकानों की महक से मिली-बनी ऐसी शान्त खुशबू कण-कण में व्याप्त थी जैसे माँ के आँचल की सुगन्ध! प्रभाव ऐसा था जैसे जिन्दगी को यहाँ किसी भी किस्म की जल्दबाजी नहीं रहती।

और जिन्हें जल्दबाजी थी, आला अफसर हुजूर गाँव पार करते हुये प्राथमिक स्कूल पहुँच गए। सरकारी रंग से पुते दो छोटे कमरों और बित्ते भर बरामदे के विद्यालय के बाहर दो-तीन अधिकृत चेहरे स्वागत में मुस्तैद खड़े मिले। इस दफा मुख्य साहब को आश्चर्य नहीं हुआ।

स्कूल के बाहर नीम तले एक कमउम्र संविदा शिक्षिका ने ब्लैक बोर्ड पर हिन्दी का शुरूआती परिचय अभी-अभी दर्ज किया था और नन्हे विद्यार्थी अपनी स्लेटों पर आड़ी-टेड़ी लकीरों में वर्णमाला का सौन्दर्य साधना सीख रहे थे,

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः

कुणाल साहब शिक्षिका के समानान्तर खड़े होकर पहली कक्षा के कोमल विद्यार्थियों का अक्षरज्ञान परखने लगे। फटी नेकर, टूटे बटनों की शर्ट वाले एक गुलगुल-श्यामल बच्चे की तोतली जुबान महर्षियों की सनातन भाषा की नवीनतम संवाहिनी थी—

''छोता अ, बला आ, छोती इ, बली ई...''

मनोहर कक्षा के ठीक पीछे खड़ा था और टाटपट्टी पर पंक्तिबद्ध बैठे विद्यार्थियों को निहार रहा था। उनके बस्ते सस्ते हैं, अध्ययन सामग्री मामूली है और अधिकांश यूनीफार्म में नहीं हैं, जो हैं उनके स्कूली कपड़े घिसे, रंगहीन-से और कहीं तो फटे भी हैं पर ये बच्चे...'' मनोहर सोच रहा है—''इस गरीब देहात के ये नन्हे नागरिक इन असुविधाओं के बीच अपना भविष्य तराश रहे हैं। क्या पता इनमें से कोई विद्यार्थी कल डॉक्टर हो,

इंजीनियर, वैज्ञानिक या कुणाल सिंह की तरह आई.ए.एस., पर क्या, तब वो भी स्कूली बच्चों के खाने में कटौती का आदेश देगा? दिल्ली और सनातनपुर के आई.ए.एसों की आत्माओं में कुछ तो फर्क रहेगा? काश! एक आई.ए.एस सनातनपुर का हो।''

सोचते-सोचते मनोहर मुस्कुराया और इसी पल उसे किसी ने छुआ। पैंट का पाँयचा खींचता अंतिम पंक्ति का एक सूखा-साखा छात्र अनसुनी-सी आवाज में निवेदन कर रहा था, ''ये बोतल दे दो।''

मनोहर के हाथ में पानी भरी प्लास्टिक की पारदर्शी बोतल थी जो किसी रेलयात्रा में उसने खरीदी थी और इस्तेमाल के बाद भी उसकी सयानी पत्नी ने फेंकी नहीं थी बल्कि मनोहर दफ्तर आते इसी तरह की बोतलों में पीने का पानी लाता रहा है, अच्छे थर्मस वो सिर्फ अपने बच्चों के लिये खरीदता है।

''क्यों?'' धीमे स्वर में उसने पूछा।

''मेरे पास पानी की बोतल नहीं है। अम्मा शीशी में पानी देती है।''

बच्चे की नन्हीं उँगली बस्ते के बगल में रखी काँच की छोटी शीशी पर थी।

''अरे!'' मनोहर का मुँह पलभर को खुला रह गया फिर वो उँकडू बैठा, बच्चे का सिर प्यार से सहलाया, अपनी बोतल उसकी छोटी शीशी के आगे रखी और फिर सीधा खड़ा हो गया, कुछ इस भाव से जैसे उस बच्चे को जानता ही न हो, पर पिछले दो पलों की जो घटना थी, विद्यार्थियों के उस पार खड़े आला अफसर ने देखी थी जबकि स्कूल के अधिकृत लोग अपनी समस्यायें-व्यवस्थायें निवेदन की आवाज में बता रहे थे। तभी इंटरवल की घंटी बजी। बच्चे परिन्दों के चौंककर उड़े झुण्ड-सा हल्ला मचाने लगे।

इस बीच अधिकारी साहब स्कूल के पीछे मध्याह्न भोजन पकाते स्वसहायता समूह को देख आए थे, वे तीन-चार आदिवासी औरतें थीं जिनकी सस्ती साड़ियों के किनारे तार-तार थे और जिनमें से एक बता रही थी कि जब से उसे ये काम मिला है, उसके परिवार में एक दिन भी फाका नहीं हुआ है। कुणाल सिंह को शिद्दत से याद आए अपने शब्द, ...स्वसहायता समूहों पर तय अपनी राय।

वे खिन्न चेहरे से स्कूल के भीतर लौट आये और दिल्ली के साहब ने बुन्देलखण्ड में भूख का अनुशासन देखा। सारे बच्चे चुपचाप कतारबद्ध खड़े थे। उनके हाथों में खाली थालियाँ थी और आँखों में काउन्टर पर रखा ताजा, महकता खाना। कहीं से कोई पिन-ध्वनि तक नहीं। इतने सारे बच्चे बिना किसी डर-डाँट के कायदे से खड़े हैं, कुणाल सिंह–मुख्य कार्यपालक अधिकारी जिला पंचायत–के लिये ये नन्ही गँवई पाठशाला जिन्दगी के नए सबक सिखाने वाला स्कूल है।

पंगत शुरू हुई और यही समय था जब अधिकारी को अपनी महत्ता सिद्ध करनी थी। कुणाल सिंह साहब ने अपने क्लर्क का निडर चेहरा देखा और अगले क्षण ऊँचे माथे पर गहरी शिकन थी।

आदेश दिया गया, इनमें से एक बच्चे को अलग बैठाकर खिलाया जाये। एक बच्चा आला अफसर की कुर्सी के ऐन सामने भूमि पर प्रस्तुत किया गया।

वो एक आठ साला दुबला लड़का था जिसकी आँखें भीतर को धंसी थीं, सीने की हड्डियाँ गिनी जा सकती थी और रंग भुड़भुड़ा होने से ज्यादा काला दिख रहा था। उसके कपड़े मैले नहीं थे, पर उन पर अलग-अलग रंग के धागों से जगह-जगह सीवन थी। बच्चे की बड़ी आँखें भय से और बड़ी दिख रही थीं उसके भूखे हाथों ने भरी थाली के दोनों किनारे कसके पकड़ लिये थे।

''डरो नहीं। खाना खाओ जैसे रोज खाते हो।'' कुणाल साहब ने कहा।

बच्चा खाने लगा। अधिकारी और क्लर्क की आँखें उसकी थाली पर थीं और बच्चे को अपनी थाली छिन जाने का भय सता रहा था। ये बात साफ नजर आने लगी थी। पनीली तुअर दाल में टिक्कड़ जैसी रोटी का कौर डुबोता वो इतनी जल्दी-जल्दी खा रहा था कि हर वक्त उसका मुँह पूरा भरा हुआ था और निगलते हुये उसकी आँखों में बार-बार पानी आ जा रहा था।

अधिकारी साहब गिन रहे थे–

एक, ...दो, ...तीन, ...चार! ...पाँच! ...छह!! ...सात!!! बच्चा सातवीं रोटी खा रहा था।

बस एक पल लगा निर्णय लेने में। क्लर्क को वही खड़ा छोड़ आला साहब तेजी से उठकर चले आये, पर बाहर को आते कदम कमजोर पड़ रहे थे, मुड़कर देखे बिना रहा नहीं गया।

...बची हुई डेढ़ रोटी बच्चा अपने स्कूली बस्ते में छुपा रहा था।

हनुमान मंदिर के पास लाऊखेड़ी,
एयरपोर्ट रोड, भोपाल (म.प्र.) 462030

कहानी

बहुरूपिये

भगवती प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी तथा भोजपुरी में लेखन। नवगीत, लघुकथा, कहानी, आलोचनात्मक मोनोग्राफ एवं शोध आदि का हिन्दी में एवं उपन्यास तथा ग़ज़लें भोजपुरी में प्रकाशित। कुल 70 कृतियाँ प्रकाशित। बाल-साहित्य में भी लेखन।

दोनों कुलियों ने माथे पर लदे माल-असबाब उतारे और गमछे से अपने-अपने चेहरे का पसीना पोंछने लगे, ''बड़ा जानलेवा उमस है, बाबू साहिब!''

बाबूजी मुझे देखते ही हड़बड़ा उठे और खरगोश की रफ्तार से मेरी ओर लगभग कुलाँचते हुए लपके। जब उनके चरण स्पर्श की खातिर श्रद्धानत होकर उनकी तरफ झुका, तो उन्होंने मुझे गले लगा लिया। भावातिरेक में उनकी आँखें छलछला आयीं। मेरी नजरें उनके चेहरे को पढ़ने की भरसक कोशिश करने लगीं। वाकई कितनी बूढ़ी हो गयी थीं उनकी पनीली आँखें। पहले मैं कभी भूलकर भी बाबूजी के चेहरे की तरफ ताकने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। उनका रोबीला चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें देख दिल में एक अजीब दहशत होने लगती थी। ''वाह! अभी तक साहबजादे सो रहे हैं?'' कानों में पिघले शीशे की भाँति गर्म आवाज पड़ते ही उनींदी आँखें मलते हुए हड़बड़ाकर उठ बैठता था मैं। बेरोजगारी के दरम्यान रोज-रोज की यह आम बात हो गयी थी। बेवजह डाँट-डपट और गाली-गलौज की अंधाधुंध बौछार।

उस रोज बाबूजी की बात सुनकर मैं सचमुच ही विचलित हो गया था। एक तो अनचाहे ही असमय ब्याह रचाकर गले में फाँसी का फन्दा लटका दिया और अब रोजी-रोटी का बन्दोबस्त करने का सबक सिखला रहे हैं, ''जिन्दगी भर का हमीं ने ठेका ले रखा है क्या? जाकर कहीं मर-खपकर कमाओ-धमाओ और अपने परिवार की रोटी का जुगाड़ करो... समझे?''

''हुँह! ठीक है, बाहर जाकर जब तक कमाने नहीं लगूँगा, तब तक इस घर में पाँव नहीं रखूँगा।'' अगले दिन ही एक दृढ़ संकल्प करके बोरिया-बिस्तर बाँधकर दफा हो गया था मैं वहाँ से। और आज पाँच साल के बाद...।

मेरी आँखों से मोती-सदृश बड़ी-बड़ी बूँदें गालों पर लुढ़क आयीं। बाबूजी अपनी ही तरह शायद समझते हों कि एक लम्बे अरसे के बाद मिलने पर मैं भी भावविह्वल हो उठा हूँ। मगर ये खुशी के आँसू नहीं, बल्कि मेरे दिल के गुबार हैं जिनका रहस्य मैं और सिर्फ मैं ही समझ सकता हूँ।

''बहुत दिनों से बाट जोह रहा था, बबुआ! यात्रा में तो बड़ी दिक्कत हुई होगी... कितने दिनों की छुट्टी है? कई बरस पर तो आये हो, कुछ दिन रुककर दूध-दही खा-पीकर सेहत बना लो। नौकरी का झमेला तो लगा रहेगा ताजिन्दगी।'' बाबूजी के स्नेहिल मिसरी-से स्वर छन-छन कर घुस रहे हैं कानों में।

''अच्छा बबुआ! चलो, पहले हाथ-मुँह धोकर आराम करो। फिर बातें होंगी।'' मेरे मुँह खोलने से पहले ही बाबूजी ने खुद बगल हटकर आँगन में घुसने की राह बना दी है और सामानों को एक-एक कर घर में रखवाने की व्यवस्था करने लगे हैं।

ज्यों ही मैंने आँगन में कदम बढ़ाये, सजी-सँवरी पत्नी ने मेरे पैर छू लिए। फिर मेरे जूते की धूल से अपनी माँग भरने लगी।

''अरे... अरे... यह क्या कर रही हो?'' मैंने उसे उठाकर सीने से लगा लिया। फिर माथा चूमने ही जा रहा था कि एकाएक माँ पर नजर पड़ते ही अचकाकर सहम गया। माँ के चरण छूकर मैं चुपचाप खड़ा हो गया।

''जीते रहो, बेटे... जुग-जुग जिओ!'' माँ के गले से भर्राई-सी आवाज आयी और वह मेरी पीठ थपथपाने लगीं।

आँगन में पड़ी बँसखट पर मैं बैठ गया। ''आओ, बैठो माँ!'' मैंने माँ का हाथ पकड़कर खाट के सिरहाने बैठा दिया।

रूपा एक थाल में पानी भरकर ले आयी और स्वयं अपने हाथों मेरे जूते-मोजे खोल, थाल में पैर रखकर धोने लगी।

''यह क्या करने लगी, पगली? थाली में खाना खाया जाता है और उसी में तुम...?'' मैंने पत्नी को मीठी झिड़की दी।

''अजी, आपसे बढ़कर यह थाली ही है क्या?'' रूपा की बात सुन, मैं अचम्भित होकर उसकी तरफ टुकर-टुकर ताकने लगा। सचमुच, आज इन लोगों ने मेरी कितनी कीमत बढ़ा दी है।

रूपा के चेहरे पर पुते सस्ते मेकअप को देखकर मन-ही-मन मुझे हँसी आ रही है। अटैची मँगाकर मैंने ढेर-सारे कीमती मेकअप और सौन्दर्य-प्रसाधन की सामग्रियों के अम्बार लगा दिये हैं। बाबूजी और माँ के लिए लाये नये कुरते-धोती और महँगी साड़ियों को निहारकर माँ का दिल बाग-बाग हो उठा है। खुशी से विह्वल होकर वह कभी आँसू पोंछने लगती है? तो कभी मुझे ढेरों दुआएँ देने लगती हैं।

''तुम्हारी दुआ से ही तो बगैर सोर्स-पैरवी और घूस-रिश्वत के ही ऐसी जगह पर पहुँचा हूँ, माँ!'' मैं माँ को आश्वस्त करना चाहता हूँ।

''तुम और तरक्की करोगे बेटा! ईश्वर तुम्हें सब से ऊँचे ओहदे पर पहुँचायेगा।'' माँ के आशीषने का सिलसिला अब भी जारी है।

रूपा मन में हुलास और उछाह भरकर मेकअप की बेशकीमती सामग्रियों और कपड़ों को सहेजने में मशगूल हो गयी है। उसकी आँखें बार-बार चौंधिया रही हैं। एकाएक उसे ऐसा विश्वास ही नहीं हो रहा है कि इतनी सारी चीजें उसी की खातिर लायी हैं मैंने।

मुझे आज भी याद है, पत्नी शादी के बाद मेरे साथ रहकर कतई खुश नहीं थी। तब वह बार-बार अपने मायकेवालों को ही कोसा करती थी कि मुझ जैसे बेकार और जाहिल मरद के साथ ब्याह कर माँ-बाप ने जैसे उसे कुएँ में ही धकेल दिया था। जब भी मैं प्यार जताने का प्रयत्न करता, वह मेरा हाथ क्रूरता से झटक दिया करती थी और अपनी लाल-पीली आँखें मेरे चेहरे से यूँ हटा लेती थी, मानो मेरी घिनौनी सूरत देखकर उसका मन बजबजा उठा हो। फिर अगर मैं उसकी तरफ बढ़ता तो खूंखार नागिन-सी फुफकारने लगती थी वह ''हुँह! बड़ा कमाध माकर रख दिया है न, जो चले हो...!'' और मैं करवट बदलकर अपनी बेबसी पर रुँआँसा हो आँखें मूँद लेता था।

''चलिये, नाश्ता कर लीजिये ना!'' पत्नी की सुरीली आवाज ने माहौल को मधुर बना दिया है। ''हाँ, उठो बबुआ!'' माँ ने भी बहू की बात का समर्थन किया। फिर प्लेट में पकौड़े सजाते हुए सोल्लास कहा, ''देखो, मैंने तेरे लिए ये पकौड़े अपने हाथों से तले हैं। तुम्हें बहुत पसन्द हैं न!'' माँ ने एक पकौड़ा मेरे मुँह से लगा ही दिया।

''माँ, तू कितनी प्यारी है।'' मैं मन-ही-मन बुदबुदाया, फिर पकौड़े की तारीफ करने लगा।

गले में जब पकौड़ा अटकने को हुआ तो माँ ने पानी का गिलास होंठों से लगा दिया। पानी गटकने साथ ही मैं अतीत के जंगल में भटक गया...!

''अरे रमरूवा! बैठे-बैठे क्या अंट-शंट लिखता रहता है रे तू? जब देखों तब कविताई! क्या तेरी कविताई पेट भर सकती है? इतना पढ़-लिख कर क्या किया तूने खाक! सुरेशवा तेरे साथ ही पढ़ता था? इण्टर पास करके ही ठेकेदारी में उतर गया और आज लाखों से खेल रहा है... और एक तू है कि एम.ए. पास करने के बाद घर का ही आटा गीला किये जा रहा है। कभी लौंडों के साथ गाँव की सड़क बनवाने निकल पड़ेगा, कभी बहुरिया के साथ घर में घुसर जायेगा, तो कभी बैठे-बैठे कविताई पर कलम घिसता रहेगा। मुँहचोर कहीं का! अरे नासपीटे! अब तो भी चेत! काहे बाप-महतारी की इज्जत खाक में मिलाये जा रहा है?'' माँ नित्य ही डाँटने-फटकारने की कोई-न-कोई वजह निकाल ही लेती थीं और मैं ऊहापोह की स्थिति में पड़ा, कुछ भी निर्णय नहीं ले पाता था कि मैं आखिर करूँ भी तो क्या?

''और खाओ न बेटा!'' मेरे प्लेट खिसकाते ही माँ आग्रह कर रही हैं।

''नहीं माँ, अब नहीं चल पायेगा।'' मैं रूमाल से हाथ-मुँह पोंछता हुआ उठ खड़ा होता हूँ।

''बबुआ, देखो कौन आया है दुआर पर?'' बाबूजी की पुकार सुनकर मैं तत्काल ओसारे में दाखिल हो जाता हूँ।

''अरे बबुआ रामसरूप! कब आये?'' दसईं चाचा उठकर मेरी तरफ हतप्रभ-से देखने लगे हैं।

''बस, थोड़ी ही देर पहले, चाचाजी!'' मैं हाथ जोड़कर सादर जवाब देता हूँ। औपचारिक बातों से जब ऊबने लगता हूँ तो घर में जाकर लेट जाता हूँ।

बातों-ही-बातों में मैं कब नींद के आगोश में चला गया, मुझे पता ही न चला। थोड़ी देर बाद ही मैं सपने की इन्द्रधनुषी दुनिया में खो गया। बाबूजी की स्नेहिल आँखें, प्यार भरी बातें... माँ का प्यार-दुलार... पत्नी का सेवाभाव और समर्पण... गाँव के लोगों के प्रशंसा भरे स्वर... फिर अपने-अपने बेरोजगार बेटों के लिए आरजू-मिन्नतें... मेरे सम्मान में आयोजित गोष्ठियाँ... फूल-मालाओं से लदी मेरी गर्दन!

''नहीं-नहीं, मैं इस काबिल नहीं, जो मेरा इतना सम्मान किया जाये। मुझे सी.ओ. साहब नहीं, आर.स. सिंह नहीं, रामसरूपवा कहो, आवारागर्द कहो... मुझे दुत्कारो, गाली दो, डाँटो-फटकारो...!'' फिर मैं बड़बड़ाने लगता हूं, ''नहीं, तुम सभी पत्थर दिल हो, कमीने हो! गिरगिट-सा रंग बदलने वाले! तुम मेरे व्यक्तित्व की नहीं, मेरे पद-प्रतिष्ठा और कमाई की तारीफ कर रहे हो। स्वार्थी कहीं के! माँ... बाबूजी... रूपा...! तुम सभी सिर्फ मेरी कमाई से प्यार करते हो, मुझसे नहीं... कतई नहीं। कैसा प्यार? कैसे रिश्ते? यह सब नाटक है। बहुरूपिये हो तुम लोग... बहुरूपिये!''

''अजी, उठिये न! सपना रहे हैं क्या?'' पत्नी झकझोर कर मेरी तन्द्रा भंग करती है।

मैं अचानक आँखें खोलता हूँ। पत्नी ताबड़तोड़ ताड़ का पंखा झल रही है और मैं पसीने से सराबोर होकर सोचे जा रहा हूँ... अब भी कुछ सोचे जा रहा हूँ।

शकुंतला भवन, सीताशरण लेन, मीठापुर, पोस्ट-बॉक्स-115, पटना-800001 (बिहार)

कहानी

देगा साब

सुशील सरित

लेखक की कहानियाँ एवं लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कई वर्षों से लेखन में सक्रिय।

यह कस्बा भी अजीब था। न कोई हलचल न कोई भीड़-भाड़। पिछले दस सालों से वह एक सा जीवन जीते-जीते तंग आ चुका था। वही रोजमर्रा का रूटीन जीवन। सुबह उठना फर्श की झाड़-पोंछ, पौधों को पानी देना और देगा साब के कपड़े धोना। फिर लम्बी उनींदी दोपहर और शाम भी कौन सी रंगीन होती थी। हाँ कभी-कभी देगा साब पड़ोस की पम्मी बेबी के साथ चिड़िया खेलते, तो जरूर उसे चिड़िया उठाने के लिये बुला लेते, तब जरूर उसे लगता कि जिन्दगी की चहल-पहल कुछ बढ़ गयी है।

दस साल पहले जब वह बिहार से भाग कर आया था, तब उसे देगा-साब की नौकरी बिलकुल भगवान के प्रसाद की तरह ही लगी थी। वरना बिहार के अपने जन्म नगर में हुए दंगों के बीच से भाग कर आते समय तो उसे कुछ सूझा ही न था। उस जैसे छोटी जात वाले को, वह भी भाग कर आने वाले को कोई नौकरी दे देगा, इस पर, वो नौकरी पाने के कई दिनों बाद तक भी, विश्वास नहीं कर पाया था। पता नहीं देगा-साब को उसमें क्या अच्छा लगा था, जो उसे बिना ज्यादा छानबीन के ही नौकरी दे दी थी, मेम सब ने कहा भी ''तुम तो बिना सोचे-समझे हर किसी पर विश्वास कर लेते हो'' लेकिन देगा साब सिर्फ मुस्कुरा कर ही रह गए।

दो तीन साल तो उसे देगा साब पूरे देवता के समान ही लगे, लेकिन फिर पता नहीं कैसे और कब धीरे-धीरे वे उसे बजाए देवता के आम-आदमी नजर आने लगे। जैसे-जैसे उसकी बुद्धि पर समय की धार चढ़ने लगी। वैसे-वैसे उसे लगने लगा कि देगा-साब ने उसे नौकरी देकर उस पर कोई उपकार नहीं किया। उस जैसे ईमानदार मेहनती छोकरे को कोई भी समझदार नौकरी दे देता। फिर देगा-साब उसे बदले में देते भी क्या थे, मात्र दो जून की रोटी, रहने को गैरेज के ऊपर की दोछत्ती और पचास रुपये महीना। होली-दीवाली कपड़े बना देना कोई एहसान नहीं पर कितना तो कमाते हैं, फिर इस बंगले का उबाऊ सन्नाटा, कौन नौकर टिकेगा इस भूत घर में। ले देकर देगा-साब और मेम साब और वे दोनों भी आपस में ही कितना कम बोलते हैं।

उसे अक्सर लगता, ये बंगला, ये छोटा सा कस्बा उसके लिये बहुत बड़ा-सा जेल है, जिसमें से उसे भाग जाना चाहिए। पढ़ना लिखना तो उसे आता नहीं था। लेकिन रेडियो पर जब वह खबरें सुनता तो उसे और भी झुँझलाहट होती। कभी-कभी सोचता, हर दिन देश के किसी न किसी हिस्से में बाढ़ आती है, सूखा पड़ता है, दंगे होते हैं, भूकम्प आते हैं, रथ यात्राएँ निकलती हैं, जलसे होते हैं, यहाँ कुछ क्यों नहीं होता। बाढ़, सूखा या दंगा तो बहुत बड़ी बात है, यहाँ तो इस पूरे कस्बे को घेरे खड़ी उस पतली पगडंडी जैसी सड़क पर कोई एक्सीडेंट भी नहीं होता। बस साल में एक बार 25 दिसम्बर को लोग अपने-अपने घरों पर उजाला कर लेते हैं और चर्च जाकर प्रार्थना कर लेते हैं। एक बार वह भी चर्च गया था, लेकिन उसे तो उस प्रार्थना का एक अक्षर भी समझ में नहीं आया था। कहाँ बिहार में उसके घर के सामने हनुमान जी का मन्दिर जहाँ दिन भर घंटे घड़ियाल बजते रहते थे, आरती होती रहती थी, कहाँ यह उदास चर्च। पर उस दिन उसे सुबह कुछ बदली-बदली लगी। लग रहा था उस कस्बे की खामोशी में कुछ आवाजें घुलने लगी हों। वह अपने सुबह के रूटीन के हिसाब से ही पेड़ों को पानी दे रहा था। देगा-साब अन्दर शायद तैयार हो रहे थे, तभी बाहर साइकिल पर भागता हुआ देगा साब का अर्दली आकर रुका और साइकिल को बिना ताला लगाये ही हाँफता हुआ ही, देगा साब के कमरे में घुस गया।

''क्या बात है, इतना घबराये हुए क्यों हो?'' देगा साब ने टाई की नाक ठीक करते हुए पूछा। ''साब नीचे दंगा हो गया है, रात में ही बाहर से कुछ लोग आये थे, उन्होंने पता नहीं यहाँ के लोगों को कौन सी घुट्टी पिलायी कि सुबह उठते ही उन्होंने दो घर जला दिये। साब सावधान रहें सौ पचास की भीड़ कभी भी

आपकी तरफ आ सकती है।'' हाँफते-हाँफते ही अर्दली ने अपनी बात पूरी की।

''तुम घबराओ नहीं, पुलिस सबको ठीक कर देगी, ये नीच लोग पिटकर ही ठीक रहते हैं।'' कहकर देगा साब ने अर्दली को जाने का इशारा किया।

अर्दली तो चला गया लेकिन 'ये नीच लोग', देगा साब का ये छोटा-सा वाक्य उसे अपने अन्दर तीर की तरह उतरता सा लगा। हालांकि देगा साब ने उससे कभी कुछ कहा नहीं था। लेकिन पता नहीं क्यों उसे हमेशा यह एहसास रहता था कि देगा साब उसे हमेशा अपने से हीन समझते हैं। उसकी औकात देगा साब के सामने किसी कीड़े-मकौड़े से ज्यादा नहीं है।

पिछले साल ही जब मेम साब अचानक बीमार पड़ी थीं तो उसने किचन में घुसे देगा साब से खाली इतना ही पूछा था, ''साब, मैं रोटी बना लेता हूँ, आप कहें तो...'' देगा साब की निगाहें उसे अब तक याद हैं, ''तुम जाकर अपना काम देखो'' देगा साब ने इस एक वाक्य में कुछ न कह कर भी बहुत कुछ कह दिया था। उसकी निगाहें कह रही थीं, ''मैं तुम्हारे हाथ की बनी रोटी खाऊँगा, मैं तुम्हारे हाथ की।''

उस पूरे दिन वह खाना न खा सका था। खाने की थाली में उसे देगा साब की निगाहें ही तैरती नजर आती रही थी।

उसके हाथ खुरपी पर तेज-तेज चलने लगे। पेड़ों के आस-पास की घास बड़ी तेजी से कटने लगी। तभी उसे लगा कि सामने वाली पगडंडी जैसी सड़क पर आवाजों का एक रेला आ रहा है। शब्द स्पष्ट नहीं थे, लेकिन उत्तेजना स्पष्ट थी। कौन होंगे ये दंगे करने वाले, उस जैसे ही नीच लोग, छोटा काम करने वाले, दो जून की रोटी मुश्किल से कमाने वाले।

भीड़ की आवाजें अब स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं, ''सालों को... बाहर निकालो'', ''...'', ''मुर्दाबाद...'' जैसी आवाजें साथ ही चीखें-चिल्लाहटें और अजीब-अजीब सी आदिम आवाजें, तभी मेम साब अंदर से घबराई हुई आवाज में चिल्लाई, ''तुम कपड़े पहन कर कहाँ जाने को तैयार हो रहे हो, सुन नहीं रहे हो, बाहर भीड़ का शोर। तब उसने दरवाजे के बाहर कदम रखते देगा साब के चेहरे पर पहली बार बदहवासी देखी, उनकी गहरी नीली आँखों में पहली बार उसने भय की परछाइयाँ डोलती देखीं।

''सुनो! बाहर का गेट ठीक से बंद कर ताला लगा दो'', देगा साब ने उससे कहा। उनकी आवाज में कम्पन उसने साफ-साफ महसूस किया।

दस साल में पहली बार देगा साब का यह रूप उसे अजीब सी उत्तेजना दे रहा था। वह धीरे-धीरे कनखियों से देगा साब की ओर देखता हुआ बढ़ा और मेन गेट का ताला लगा दिया।

भीड़ अब ज्यादा दूर नहीं थी। ताला लगा कर कुछ देर तो वह भीड़ को देखता रहा। लाठी-डंडे-बल्लम, सरिया जैसे ही हथियार भीड़ के हाथों में थे। एक तमतमाहट पूरी भीड़ के चेहरे पर पुती हुई थी।

''अब वहाँ क्या कर रहा है, ताला लगा कर अंदर आ जा'', देगा साब का स्वर उसे कहीं दूर से आता लगा।

अभी कुछ ही मिनटों में यह भीड़ इस बंगले के सामने भी आएगी, फिर ये छोटा-सा ताला और ये गेट भी आखिर कितनी देर भीड़ को रोक सकेगा। ''अरे जल्दी अंदर आ'' देगा साब फिर चीखे। भीड़ अब और करीब आ गई थी। कुछ लोगों के हाथ में पैट्रोल के टिन और मशालें उसे साफ नजर आ रही थीं।

''जल्दी अंदर आ'' देगा साब फिर चिल्लाये और उन्होंने अंदर घुस कर बंगले के ड्राइंग रूम का दरवाजा बंद कर लिया। पूरा बंगला एक अजीब से सन्नाटे में डूब गया। भीड़ का शोर अब उनके कान फाड़े दे रहा था।

हुँह, घबराकर आखिर अंदर घुस गए न मुझे अकेला छोड़ कर, उसने सोचा ड्राइंग रूम का बंद दरवाजा उसे मुँह चिढ़ा रहा था। अचानक उसे लगा ये दरवाजा नहीं साब का चेहरा है पूरा बड़ा-बड़ा छै फीट का चेहरा जो बार-बार दोहरा रहा है? ''ये नीच लोग'' और खुद क्या हैं ये देगा साब? पड़ोस की पम्मी बेबी को किन निगाहों से देखते हैं क्या वह समझता नहीं। वो तो मेम साब के बच्चे नहीं हुए वरना पम्मी बेबी से उमर में बड़े होते। पिछले साल जब इनका बड़ा साला फॉरेन से आया था तो उसके आगे-पीछे कैसे भाग रहे थे। करोड़पति जो था वह, सोचा होगा दस बीस लाख शायद अपनी बहन को दे जाये, लालची और अभी छै महीने पहले ही तो मेम साब को पीकर कितना धुना था।

भीड़ अब बिलकुल करीब आ गयी थी। लग रहा था एक आँधी चली आ रही है, उसकी निगाहें घूमी भीड़ के पीछे, काफी पीछे फायर बिग्रेड की मोटर की आवाज सुनकर उसका ध्यान काफी ऊँची लपटों पर जा टिका शायद भीड़ ने पीछे कोई बंगला आग के हवाले कर दिया था। उसने पलट कर ड्राइंग रूम के गेट पर अपनी नजरें टिका दीं। चंद क्षण उसे लगा कि उसकी आँखें ड्राइंग रूम के गेट के आर-पार देख सकती हैं। गेट के पीछे घबराई हुए मेम साब और उन्हें सान्त्वना देते देगा साब कितने निरीह लग रहे थे। कितने डरपोक होते हैं यह साब जैसे लोग उसे अपने साहब पर एक अजीब-सा रोमांच हो आया।

भीड़ का शोर अब उसके कानों में जबरदस्ती घुसा पड़ रहा था, उसकी निगाहें एक एक चेहरे पर घूम गयीं वे चहेरे अब इतने पास थे कि वो उनकी आँखों को साफ-साफ पढ़ सकता था लेकिन उस भीड़ में उस जैसे लोग कहाँ थे, ये तो अजीब से जंगली खूँखार व वहशी लोगों का समूह था, जिन्हें न अपना होश था, न परायों का, बस उनके गलों से निकलते नारे ही शायद उन्हें बाँधे हुए थे।

''क्यों वे! कौन रहता है इस बंगले में।'' अचानक एक मजबूत हाथ उसके कॉलर पर आ कर गिरा। उसने पलट वार कर फिर बंगले की ओर देखा। बँगले का सुनसान सन्नाटा कुछ और ही बढ़ गया था, कहीं कोई हलचल नहीं, जीवन का कोई चिह्न नहीं।

''साले! बताता क्यूँ नहीं'' इस बार एक जोरदार घूँसा उसके चेहरे पर पड़ा। ''अबे तू तो हमारी जात का लगता है, बोलता क्यूँ नहीं''। इस बार एक दूसरी आवाज ने उस पर नजरें गढ़ा दीं।

एक पल में ही उसके सामने देगा साब के सारे चेहरे घूम गये। पम्मी बेबी की ओर देखता चेहरा, मेम साब की धुनाई कता चेहरा, अपने फॉरेन वाले साले के आगे-पीछे भागता चेहरा, किचन में ''तुम अपना काम करो'' कहता चेहरा। लेकिन फिर जो चेहरा आकर उसकी आँखों के सामने टिक गया, वो ड्राइंग रूम के अंदर छिपे देगा साब का निरीह चेहरा था।

''इस घर में देगा रहता है, मेरा दूर का रिश्ते का बड़ा भाई, छोड़ो मुझे'', कहकर उसने झटके से अपना गला छुड़ा लिया।

''चलो अगले बंगले की तरफ चलो ये तो अपना ही भाई है।'' भीड़ में से किसी ने कहा हुँह अपना भाई। सब साले एक जैसे हैं।'' भीड़ में से एक आवाज उभरी। खच्च, उसे लगा दर्द की एक लकीर उसके बायें हाथ में दाखिल हो गई है। भीड़ आगे बढ़ गयी वह वहीं गेट पर खड़ा रहा। ''चलो इस छोटे से कस्बे में कुछ रौनक तो हुई'' वह बुदबुदाया और ड्राइंग रूम की ओर मुड़ गया।

भीड़ अब दूर जा चुकी थी। देगा साब ने डरते-डरते दरवाजा खोला। ''अरे ये तेरे हाथ में चोट कैसे लगी'' देगा साब की आवाज थरथरा गई।

''कुछ नहीं। बस!'' उसे जैसे होश ही न था। ''चल अन्दर चल तेरी ड्रेसिंग कर देता हूँ।'' देगा साब की आवाज भीग गयी। उस घड़ी उसे लगा कि देगा साब का चेहरा बिलकुल बदल गया है। चालीस-बयालीस साल के कठोर चेहरे की जगह पाँच-छह साल के मासूम बच्चे का चेहरा।

36, अयोध्या कुंज 'ए', आगरा-1

लघु कथाएँ

किशन लाल शर्मा

'प्रतिनिधि लघुकथाएँ' पत्रिका का चार वर्षों से सम्पादन। 1978 से लगभग सभी विधाओं में लेखन। साहित्य के विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित। कुल पाँच पुस्तकें प्रकाशित जिनमें एक उपन्यास है।

अकेला

रामलाल की सरला से मुलाकात प्लेटफॉर्म पर हुई थी। रामलाल को बहू ने घर से बाहर निकाल दिया था। बहू बेटों को सरला बोझ लगने लगी थी। वे उसे वृद्धाश्रम में भेजने पर विचार करने लगे थे। लेकिन वे ऐसा करते, उससे पहले सरला स्वयं ही घर छोड़ आई थी। रामलाल और सरला यह सोच कर स्टेशन आए थे कि इस शहर को छोड़कर कहीं दूर चले जाएंगे। सरला से मुलाकात होने के बाद उसके मन में एक विचार आया। उसने मन में आये विचार पर कुछ देर तक सोचा, फिर सरला से बोला था, ''क्यों न हम दोनों साथ रहें?'' रामलाल की यह बात सुनकर सरला बोली, ''हमारे बीच कोई रिश्ता नहीं है, भले ही हम बूढ़े हों, लेकिन हमारे साथ रहने पर लोग तरह-तरह की बातें बनायेंगे। हम पर कटाक्ष करेंगे।''

''चिन्ता मत करो। हम लोगों को बातें बनाने का मौका बिल्कुल नहीं देंगे। हम लिव इन रिलेशनशिप में रहेंगे।'' रामलाल सरला की बात सुनकर बोला, ''हम शादी करके पति-पत्नी बन कर साथ रहेंगे।''

''शादी और इस उम्र में?'' रामलाल की बात सुनकर सरला आश्चर्य से बोली थी।

''साथी की जरूरत तो इसी उम्र में होती है। अगर हमारे बेटे हमारा सहारा बने रहते तो बुढ़ापे में हमें साथी की जरूरत क्यों पड़ती? शादी के बारे में हम क्यों सोचते?'' रामलाल सरला को समझाते हुए बोला। ''जवानी में आदमी खुद सक्षम होता है। उसे किसी सहारे की जरूरत नहीं पड़ती। परन्तु बुढ़ापे में वह असक्षम हो जाता है। हम साथ रहेंगे, तो जीवन आसानी से कट जाएगा। अकेले रहने पर हम दोनों के लिए जिन्दगी के शेष दिन काटना मुश्किल हो जाएगा।''

सरला पुराने विचारों की थी। उसका मानना था कि जिस घर में औरत की डोली जाती है, उस घर से उसकी अर्थी ही उठती है। वह विधवा विवाह के पक्ष में नहीं थी। पति की यादों के सहारे जीवन काट देना चाहती थी। काट भी रही थी, लेकिन जिस उम्र में बेटा सहारा बनता है, उस उम्र में उसे घर छोड़ना पड़ रहा था। इस उम्र में वह अकेली औरत कहाँ जायेगी? अपना बेटा ही जब उसे बोझ समझ रहा था, तब कोई दूसरा क्यों सहारा देगा? अकेले रहने पर जिन्दगी काटना मुश्किल हो जाएगा। अगर कोई साथ होगा तो शेष जिन्दगी आसानी से कट जाएगा। वह रामलाल का प्रस्ताव अनमने मन से स्वीकार करते हुए बोली, ''इन हालातों में तुम्हारी बात मान लेने में ही समझदारी है।''

''तो आओ।'' रामलाल ने सरला की तरफ हाथ बढ़ाया था। सरला ने रामलाल का हाथ पकड़ लिया। दोनों जिन्दगी का शेष सफर मिलकर तय करने को चल पड़े। प्लेटफॉर्म पार करके वे धीरे-धीरे पुल चढ़ने लगे थे। घर से आये थे तब उन्हें अपनी मंजिल मालूम नहीं थी। लेकिन अब उन्हें मंजिल गई थी। एक नई जिन्दगी की शुरुआत करने के लिये वे बढे। जा रहे थे। अचानक सरला का पैर लड़खड़ाया और रामलाल का हाथ छूट गया। वह पुल से लुढ़कते हुए नीचे आ गई।

''क्या हुआ?'' रामलाल फुर्ती से नीचे आया था। उसने सरला का हाथ पकड़ कर उठाना चाहा। लेकिन सरला रामलाल के साथ जिन्दगी का सफर शुरू करने से पहले ही यह दुनिया छोड़कर जा चुकी थी।

प्यार का नशा

सर्वेश की सादगी और व्यक्तित्व से उमा ऐसी प्रभावित हुई कि उससे प्यार करने लगी। उसके पिता नहीं चाहते थे कि करोड़पति की बेटी मामूली क्लर्क से प्यार करे। उन्होंने बेटी को समझाया, पर व्यर्थ। उमा ने सर्वेश से शादी कर ली। प्रेमिका से पत्नी बनते ही उमा का असलियत से सामना हुआ।

पिता की शानदार कोठी थी। पति के पास दो कमरों का छोटा सा किराये का मकान था। पिता की शानदार कोठी में एक कमरा उसका था। ससुराल में एक कमरे में पति-पत्नी और दूसरे में सास-श्वसुर और ननद रहते थे। मायके में नौकरों की फौज थी। ससुराल में उमा को सारे काम अपने हाथ से करने पड़ते थे। पिता के पास वह चाहे जितने पैसे खर्च कर सकती थी। पति को बीस हजार रुपए तनख्वाह मिलती थी, जो वह पत्नी को पकड़ा देता था। इसमें मकान का किराया, सास-श्वसुर की दवा, ननद की स्कूल की फीस और पूरे महीने का खर्च चलाना पड़ता था।

साथ जीने-मरने की कसम खाने वाली उमा के सिर से प्यार का नशा छह महीने में ही उतर गया और वह तलाक के लिए कोर्ट जा पहुँची।

103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10

गज़लें

रमन लाल अग्रवाल 'रम्मन'

देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन। अब तक एक दर्जन से अधिक कृतियाँ प्रकाशित।

(1)

तेरे नजदीक हम हो गये।
दूर सब रंजो गम हो गये।।

तुझ से वाबस्ता[1] हम हो गये।
किस कद्र मोहतरम[2] हो गये।।

अपनी है कामयाबी यही।
तेरे दीवाने हम हो गये।।

तेरी तस्वीर जब बन गयी।
हाथ अपने कलम हो गये।।

माल दौलत की सब को हवस।
हम असीरे[3] कलम हो गये।।

उनको 'रम्मन' है हमसे हसद[4]।
जब से मकबूल हम हो गये।।

(2)

कौन है अपना हम कदम कहिये।
किस से हालात के सितम कहिये।।

किस कद्र मुख्तसर है सुबहे खुशी।
कितनी लम्बी है शामे गम कहिये।।

आ गयी और पुख्तगी हम में।
दोस्तों का इसे करम कहिये।।

कौन गमख्वार है जमाने में।
किस से बेचारगी का गम कहिये।।

हम ने खोली नहीं जुबाँ 'रम्मन'।
रह गया आप का भरम कहिये।।

(3)

दर्द बसता नहीं जो सीने में।
खाक मिलता मजा न जीने में।।

हम नजर से ही उनकी पीते हैं।
फायदा क्या है जाम पीने में।।

पार करना है इश्क का दरिया।
बैठिये दिल के इस सफीने[4] में।।

याद आती है उनकी बारिश में।
दिल मचलता है इस महीने में।।

सामने आ के हुस्न के 'रम्मन'।
होश रखिये जरा सा पीने में।।

(4)

उनकी किस्मत[5] में सिर्फ शोले हैं।
वजन को जो न ठीक तोले हैं।।

दिल हमारा है ये तुम्हारा घर।
कब से दरवाजा दिल का खोले हैं।।

हिन्दु मुस्लिम की इस सियासत में।
सब फिजाओं में जहर[6] घोले हैं।।

वस्ल की शब[7] ये हाल है अपना।
जैसे इस दिल में शोले शोले हैं।।

दिल चुराकर हमारा वो 'रम्मन'।
देखिये बनते कितने भोले हैं।।

1. सम्बन्ध, 2. गणमान्य, 3. कैदी, 4. जलन, 4. सफीने (नौका), 5. भाग्य, 6. विष, 7. रात्रि-मिलन

7, नजीराबाद, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

कविता

निर्भय कुमार

निर्भय कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पीएच.डी. शोधरत। लेखक की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित।

होने न होने की जद्दोजहद

होता अगर
हूँ नहीं मगर
होता भी तो क्या?
हो जाता जो चाहता?

चाहने से कुछ नहीं होता
जो चाहता है
होता उसी का है।
फिर मेरे चाहने से क्या होता?

होकर भी जब नहीं होता है
तब क्या होता है?
उदासी, बेचैनी, तड़प, झुंझलाहट
बस यही होता है
मगर इससे क्या होता है?
कुछ भी तो नहीं।

फिर?
उम्मीद, सपने, तसल्ली होता है।
मगर फिर वही होता है
जो अकसर होता रहता है
इस होने न होने की उम्मीद
में ही तो सब होता है
हम भी होते हैं
वे भी होते हैं
और भी होते हैं,
मगर वही होता है
जो पहले से तय होता है...।

द्वारा डॉ. जयपाल सिंह
36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
नजदीक एम.सी.डी. स्कूल,
गुड़मण्डी, दिल्ली-110007

कविताएँ

शिव डोयले

चालीस वर्षों से लेखन में सक्रिय। सोलह-सत्रह संस्थाओं द्वारा सम्मानित। कविता, व्यंग्य (गद्य, पद्य), लघुकथा, गीत, गज़ल, मुक्तक, लेख, प्रहसन आदि विधाओं में प्रकाशन।

(1) फैसला

वो जब से
अदालत में जज बनकर
फैसले सुनाने लगे हैं
जी चाहता है
हर बार गुनाह करता रहूँ
वो हर बार
सजा देते रहें।

(2) भविष्य

क्या करूँगी रखकर
लौटा रही हूँ
कल तक के
तेरे लिखे खत
मेरी जिन्दगी की
किताब पर
भूमिका लिखते हुए
अब किसी और ने
कर दिये हैं दस्तखत।

(3) मिसरा

रेत पर
बने कुछ निशान
वहीं पर था
गुलाब का फूल बिखरा
देखकर ऐसा लगा
किसी टूटे दिल ने
लिख दिया हो
गजल का कोई मिसरा।

(4) हँसी

मैं ढूँढ रहा हूँ
गुलमोहर तले
कल की गुम हुई
हँसी
मिल जाये तो
लौटा देना।

(5) जिक्र

ब्याह की
पहली रात को
खिड़की से
झाँका था चाँद ने
तब तेरा जिक्र
जरूर किया था मैंने।

तस्वीर

स्टेडियम की
दीवार पर
हाथ में लेकर ब्रश
पागल ने बनाया
आदमी का चित्र
नाक की जगह आँख
सिर पर कर सींग
जोर से
हँसता हुआ
दौड़ गया सड़क पर
मैं डर गया
उसकी हँसी
और आदमी का
भविष्य देखकर।

याद आती माँ

हिदायतें माँ की
ज़मीन पर बैठकर खाना
दरवाजे के बाहर
उतारना जूते-चप्पल
ऐसा करना...
ऐसा मत करना
आदि... आदि

आज समय
परिस्थितिवश
दूर हूँ माँ से
परंतु हिदायतों के बहाने
याद आती है माँ।

**झूलेलाल कालोनी, हरिपुरा,
विदिशा-464001 (म.प्र.)**

गज़लें/कविताएँ

राकेश भ्रमर

'प्राची' पत्रिका का संपादन। देश की जानी-मानी हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में चार सौ से अधिक कहानियाँ, कविताएँ, गज़लें, लेख आदि का प्रकाशन। सम्प्रति केन्द्र सरकार में अधिकारी और समानांतर रूप से लेखन।

(1)

वक्त की दुश्वारियों के साथ चलते
तुम कभी रुसवाइयों के साथ चलते

इस तरह तुमको हवाएं क्यों जलातीं
तुम अगर पुरवाइयों के साथ चलते

जेठ की तपती दुपहरी क्यों सताती
धूप में अमराइयों के साथ चलते

हर तरफ क्यों झूठ की गंगा बहाई
दो घड़ी सच्चाइयों के साथ चलते

मुल्क को पैगाम देते फिर रहे हो
मुल्क की बरबादियों के साथ चलते

बज़्म में बैठे शगूफे छोड़ते हैं
क्यों 'भ्रमर' तनहाइयों के साथ चलते।

(2)

ये अंधेरे जब डराते हैं बहुत
ख्वाब नीदों में सताते हैं बहुत

बे-दरो-दीवार के घर हैं यहाँ
गाँव के घर याद आते हैं बहुत

आज के नेता मदारी हो गए
खुशनुमा मंज़र दिखाते हैं बहुत

देख लो कैसा अनोखा खेल है
हम स्वयं को ही नचाते हैं बहुत

आँधियों से डर मुझे लगता नहीं
मेरे घर तूफान आते हैं बहुत

प्यास इतनी क्यूं 'भ्रमर' देकर गए
आंख में जब अश्क आते हैं बहुत।

धूप में सोया हुआ आदमी

पार्क के एक कोने में
धूप में सो रहा है एक आदमी
गर्मी है, धूप बड़ी तेज है
और सूरज अपनी सारी शक्ति
किरणों के माध्यम से
उड़ेल रहा है धरती पर
किन्तु धूप में सोया हुआ आदमी
बेखबर है तेज धूप की गर्मी से
वह खोया है सपनों में।

जब वह सोया था
तब छाया थी उसके सिर पर
परन्तु सो जाने के बाद
सूरज ने चतुराई से छीन ली
उसके सिर की छाया
खुद थोड़ा खिसककर देखने लगा
सोते हुए आदमी को
और फैला दी उसके ऊपर
धूप की कड़ी चादर!

किन्तु जिसके पास कोई घर नहीं होता
सोता है वह पार्क या फुटपाथ पर
उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है
धूप और छाया से
दोनों में खुश रहता है वह
परन्तु कुछ लोग छीन लेते हैं
सुख की गठरी गरीब के हाथों से
और फैला देते हैं उसके ऊपर
दुख की मोटी चादर
जिस प्रकार छीन लेता है सूरज
बेसहारा मनुष्य के सिर की छाया
और फैला देता है उसके ऊपर
धूप की गर्म चादर
गरीब और बेसहारा मनुष्य
फिर भी खो जाता है नींद में
और देख लेता है कुछ टूटे सपने
कहीं भी, कभी भी
धूप हो या छाँव!

ई-15, प्रगति विहार हॉस्टेल, लोधी रोड,
नई दिल्ली-110003

कविता/गीत/ग़ज़ल/दोहे/नवगीत

कविताएँ

राजेन्द्र निशेश

कविता, व्यंग्य एवं बाल-गीत संग्रह प्रकाशित। डेढ़ हजार से अधिक रचनाओं का प्रकाशन। 'अम्बपालिका' एवं 'अंकुर' पत्रिकाओं का सम्पादन। राज्य एवं अकादमी के अनेक पुरस्कारों से सम्मानित तथा विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध। सम्प्रति भारत सरकार के कार्यालय से सेवानिवृत्त व स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

एक लहर भीतर

सुबह लालिमा के घेरे में
सूरज के उगने से पूर्व
सागर के किनारे खड़ा
निहार रहा हूँ
किनारों को आती लहरों को।

यकायक एक लहर उछली
और साथ में एक मछली भी
मछली लहर बन चुकी है
या उगता सूरज?
मगर मेरे भीतर के सागर में
एक लहर मचल रही है
एक मछली की तरह!

अलविदा

नदी के झिलमिलाते तारों को
अपनी गोदी में समेटा
और चाँद को लोरी गाने को कहां
आसमान का चाँद धरती पर उतर आया
और रूहानी हवा के संग गाने लगा
अपनी नींद से पूर्व
सितारों ने उस सुरों को आत्मसात कर लिया।

नदी हँसी
और चाँद भी हँसा
और अल-सुबह धरती को
अलविदा कह आसमान पर जा चिपका!

आहट

मेघधनुष फूलों का मौसम आ चुका है
एक मासूम गौरैया ने
प्यारा-सा एक घोंसला बनाया है
अपनी नन्हीं चोंच के संग
शायद आशा और विश्वास का
जन्म होने वाला है
नन्हे फरिश्तों के रूप में।

सुबह का नारंगी सूरज
अपनी अलसायी पलकों को खोल रहा है
और दे रहा है
ठिठोली का प्रसाद
सम्भावनाओं की धूप में।

प्रेम और प्रार्थना के स्वरों से गूँज रहा है
पूजा-घर
समय की साँसों में उतर आया है
वेद-मन्त्रों का स्वर।

डरता हूँ
कोई अनाम हादसा न कर दे
खूबसूरत फूलों को बदरंग
अपनी रूह में उतारना चाहता हूँ
इठलाती तितलियों के रंग!

समय के पन्नों पर

समय के पन्नों पर
सुख और दुख की इबारत किसने लिख दी।

खुली खिड़की से मद्धम हवा का अहसास
बन्द मुट्ठी में जुगनू की नन्ही सी आभा
काँटों के जंगल में गुलाब का उगना
भोर की लालिमा में सूरज का जगना
शरारत के आँगन में हँसी की गूँज
प्रेम और नफरत की कशमकश
उतार और चढ़ावों का
साँप और सीढ़ी का खेल
ऐ जिन्दगी
तुझे मैं और क्या नाम दूँ!

2698, सैक्टर-40-सी, चण्डीगढ़-160036

गज़लें

ज़हीर कुरेशी

सात गज़ल संग्रह प्रकाशित। गज़लकार के गज़ल रचना अवदान पर दो आलोचना पुस्तकें हैं। हिन्दुस्तान के पहले गज़लकार, जिनकी कुल 25 गज़लें देश के दो अलग-अलग विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर एम.ए. (हिन्दी) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत निर्धारित हैं। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

(1)

न डर लगे हमें आकाश के सितारों से,
हमें डर है हमारे ही दोस्त-यारों से।

उधार ले के चुकाता है पिछले कर्जों को,
वो मुक्त हो नहीं पाया कभी उधारों से।

पिता से, भाई से, माँ से, बहिन से दादी तक,
उसे मिली है मुहब्बत कई प्रकारों से।

ये बात और कि टूटेगा देर से पत्थर,
हमारी दोस्ती निभती रही सुनारों से।

जो बोल पाता नहीं और सुन नहीं पाता,
वो अपनी बात को कहता रहा इशारों से।

'नगरवधू'-सा जो मानस बना नहीं पाई,
बची हुई है अभी तक वो लूट-मारों से!

हमारी शिक्षा से जन्मी न आत्म-निर्भरता,
हमारी शिक्षा न जुड़ पाई रोजगारों से।

(2)

काश... खुशबू को कसौटी पे न परखा जाता,
प्यार को प्यार की नजरों से निहारा जाता।

कच्ची दीवारों पे छप्पर ही रखा जाता है,
कच्ची दीवारों पे छत को नहीं रक्खा जाता।

तन का सौदा था तो फिर तन को परोसा उसने,
तन के सौदे में नहीं मन को परोसा जाता!

वो बदल सकते हैं खुद को, जो अमल करते हैं,
सिर्फ उपदेश को सुन के नहीं बदला जाता।

स्वप्न साकार न हो पाया तो बदला उसने,
एक ही स्वप्न हमेशा नहीं देखा जाता!

शक... परन्दि के परों को भी थका देता है,
आसमानों की तरफ फिर नहीं निकला जाता।

एक दिन में नहीं विश्वास-बहाली होगी,
एक दिन में नहीं लोगों का भरोसा जाता।

108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने,
गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ,
भोपाल-462001 (म.प्र.)

किताबें कभी दबकर नहीं मरती

वसंत सकरगाए

हमारे समय के महत्वपूर्ण कवि वसंत सकरगाए का पहला काव्य संग्रह 'निगहबानी में फूल' सन् 2011 में प्रकाशित हुआ। इन्हें वागीश्वरी और दुष्यंत कुमार सम्मान प्राप्त हो चुका है। इनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

अकड़कर खड़ी तमाम दीवारों को
पैदाइशी गलतफहमी यह होती है
कि किताबों की कोई औकात नहीं होती
उनके मुकाबिल

जमीन में गहरी पैठ के बावजूद
हिलडुल डराती हैं बारहा
उलजुलूल सतही दलीलें
होती हैं दीवारों के पास—
कि जिन्दगियों की बुनियाद
मजबूत करने वाली किताबें
कभी खड़ी नही हो पाती हैं अपने बूते
कि टेबल पर तितर बितर
मुर्दा पड़ी रहती हैं आल्मारियों में सालों साल
कि पसंद न आने पर अक्सर
फैंक दी जाती हैं भागती हुई ट्रेन से
और ज़ख्मी किसी परिन्दे की तरह
फड़फड़ा कर गिरती हैं पटरियों के आस-पास
कि रद्दी के मोल बिकती हैं ठेलों पर
फुटपाथ पर धूल फाँकती हैं सेकेण्ड हैंड किताबें
कि ज्यादा दमखम नहीं होता किताबों में
चिथड़ा चिथड़ा करने में ज्यादा ताकत जरूरी नहीं

उधर एक ईंट तो हिलाकर देखिए हम दीवारों
की
पसीने छूट जाते हैं आदमी के
कि दीवारें पाबंद करती हैं,
किसी किताब की तरह
किसी दीवार पर कभी लगती नहीं पाबंदी
दीवारों की इन कुढ़ापन भरी दलीलों को
जब तवज्जो नहीं मिलती कहीं
तब हाथों में हाथ लिए अक्सर
दीवारें ढह जाती हैं किताबों पर,
लेकिन किताबें कभी नहीं मरती किसी से
दबकर

होता है बल्कि यूँ
कि किताबों को सजदा कर रहे
लहूलुहान कुछ लोग
ढही हुई दीवारों के मलबे से
किताबों को निकाल लेते हैं बाखैरियत

फिर, अकड़कर खड़ी हुई किसी दीवार पर
सुनहले लफ्जों में लिख देते हैं
किताबों की
कुछ जरूरी नसीहतें!

ए/5, कमला नगर, कोटरा, सुल्तानाबाद,
भोपाल-460 003 (म.प्र.)

कविता/गीत/गज़ल/दोहे/नवगीत

गज़लें

रामदरश मिश्र

हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार। हाल ही में 'व्यास सम्मान' से सम्मानित।

(1)

मंजिलें बढ़ती रहीं वह राह में चलता रहा
आँधियों में भी दिया-सा रात भर जलता रहा

साथ चलने की समय के उसने पाई थी नजर
भोर संग उगता रहा औ' शाम संग ढलता रहा

थी हकीकत की चुभन पाँवों में उसके बेपनाह
किन्तु आँखों में कोई सपना सदा पलता रहा

दूसरों के दर्द उसके अश्क बन जाते रहे
और वह हँस-हँस के अपने दर्द को छलता रहा

खुश रहा खाकर हवाओं, पत्थरों के चोट भी
पेड़ था वह दूसरों के वास्ते फलता रहा

आदमी तो आदमी है, पर हजारों खंड में-
है उसे बाँटा गया, यह सच उसे खलता रहा

जुल्म देखा तो अचानक बन गया ज्वालामुखी
प्यार देखा तो हँसी दे मोम-सा गलता रहा।

(2)

साथ आखिर न मुआ जाम आया
दर्द ही दोस्त दिल के काम आया

लग रहा मुझसे कह रही है हवा
उसका खत है तुम्हारे नाम आया

रो रहे फूल, हँस रहे काँटे
कौन से लोक में है राम आया

देख करके हँसी हँसी डरती
राह में कौन सा मुकाम आया

आज दुख में मेरे हुआ गायब
यों तो वह रोज सुबहो शाम आया

शोर में इस बजार के आखिर
एक शायर का है कलाम आया

कौन है चुप्पियों की दहशत में
गीत गाता जो सरेआम आया

मत डरो रात के अँधेरे से
लो सुनो भोर का पयाम आया

अब भी बैठा हूँ टूटकर खुद से
जिन्दगी का हँसी 'सलाम' आया।

**आर-38, वाणी विहार, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-110059**

गज़ल

डॉ. कैलाश निगम

जाने-माने गज़लकार एवं कवि। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कवि सम्मेलनों में भागीदारी तथा लेखन में सक्रिय।

दिल के दागों को मिटाने की बहुत कोशिश की।
ज़िन्दगी तुझको सजाने की बहुत कोशिश की।

कर सके उसको मखातिब न कभी अपनी तरफ,
हाले ग़म फिर भी सुनाने की बहुत कोशिश की।

जिसके जलते ही बुराई का निशाँ मिट जाये,
इक दिया ऐसा जलाने की बहुत कोशिश की।

पीढ़ियों से जो अदावत का चलन तारी है,
रंजिशें ऐसी मिटाने की बहुत कोशिश की।

हमसे देखे न गये आँखों में आँसू उनके,
रोने वालों को हँसाने की बहुत कोशिश की।

जिसने रखा ही नहीं अपना सलीक़े से कदम,
राह पर उसको भी लाने की बहुत कोशिश की।

हुस्न पर अपने जो मग़रूर बहुत है 'कैलाश',
आइना उसको दिखाने की बहुत कोशिश की।

**4/522, विवेक खण्ड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010 (उ.प्र.)**

कविताएँ

ग्यारसीलाल सेन

सन् 1995 में कार्यालय अधीक्षक के पद से सेवानिवृत्त। तदोपरांत नगर पार्षद का चुनाव जीत कर सन् 2000 तक इस पद पर रहे। सन् 1998 में सुधाकर साहित्य समिति के अध्यक्ष। सम्प्रति स्वतंत्र लेखन, अध्ययन एवं समाज सेवा।

आकाश कुसुम

आती ही नहीं,
चेहरे पे कभी
अब वो फूलों सी मुस्कान
लाख कोशिश करें
मन भरता ही नहीं
अब पंछी सी उड़ान
वो अमलतास व टेसू का
अपने रंगों में
रंग जाना
महकना महुए का
और अँबिया तोड़
तितली उड़ाना
ये सब ही हो गई कल की बात।

वो नदी में साथ तैरना
पीपल की छाँव में
ढोरों का पगुराना
नाच मोर का
और मोरनी का गाना
दिखती नहीं पर अब गौरैया से पहले सी पहचान
खपरैलों से आच्छादित
झोंपड़ियों
के
बढ़ते-घटते साये
और भोर की
विचलित करती
मदमाती मस्त हवाएँ
आ जाती है याद कभी भी कोयल की मीठी तान।

अल सुबह ही
महावट के पीछे से
अंकुरित हो
रवि का धीमे-धीमे ऊपर उठना
हरी दूब पर
ओस कणों का
मोती लुटाना
सुन्दर करौंदी के फूलों की
अब भी जाती नहीं सुवास।

जीवन में थे
जो कुछ भी
अब तो
ये सबके सब
पीछे छूट गये
आकाश कुसुम बन
पाना चाहता हूँ अब भी
पर छोटे पड़ गये हाथ।

दीपक

झूम झूम झिलमिल झिलमिल
मेरे प्यारे दीपक तू जल
तम असीम जहाँ छाया घनेरा
उन झोंपड़ियों में भी तो चल।

है करुणा का कलरव जहाँ पर
पग पग पर है असह्य वेदना
पारावार नहीं दरिद्रता का
निज नयनों से स्वयं देखना।

कहीं बिलखते भूखे नंगे बच्चे
कहीं रुग्नता से है बेकल
तम असीम जहाँ छाया घनेरा
उन झोंपड़ियों में भी तो चल।

भटक रहे जो अब तक दर दर
रहने को नहीं जिनके कोई घर
बरसे आग या नभ फट जाये
भीषण शीत में जाते ठिठुर ठिठुर।

फुटपाथ पर जिनकी कटती रातें
होता कहीं किसी का मैला आँचल
तम असीम जहाँ छाया घनेरा
उन झोंपड़ियों में भी तो चल।

कुचल कामना कितनों की ही
जीवन नरक बना चल देते
चाँदी के चंद सिक्कों की खातिर
फूल धूल के पलते रहते।

भीख माँगते कचरा बीनते
खाते झूठा भोजन और फल
तम असीम जहाँ छाया घनेरा
उन झोंपड़ियों में भी तो चल।

कौन बाप है इन बच्चों का
नहीं जानती माँ स्वयं बेचारी
सिपाही गश्त का या पनवाड़ी
ठेले वाला था या वो पुजारी।

जीवन भर दर्द उभरता रहता
भाग्यहीन के अब ये ही संबल
तम असीम जहाँ छाया घनेरा
उन झोंपड़ियों में भी तो चल।

यही कामना है मेरी तो
वह दिन शीघ्र ही आ जाये
ऐसी कविता लिखने की फिर
आवश्यकता ही न रह जाये।

घर घर चमके चाँद सितारे
घर घर आँगन गायें मंगल
तम असीम जहाँ छाया घनेरा
उन झोंपड़ियों में भी तो चल।

पोस्ट आफिस के पास, मंगलपुरा,
झालावाड़-326001 (राजस्थान)

कविता/गीत/मुक्तक/गज़ल/दोहे/नवगीत

गीत

डॉ. अशोक 'गुलशन'

कवि, साहित्यकार, शायर एवं आयुर्वेदिक चिकित्साधिकारी डॉ. अशोक 'गुलशन' की कई पुस्तकें प्रकाशित। अन्तर्राष्ट्रीय परिकल्पना गज़ल सम्मान-2015 एवं उ.प्र. सरकार द्वारा अमृतलाल नागर पुरस्कार सहित भूटान एवं नेपाल में सम्मानित। देश-विदेश में पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों में लगभग पाँच हजार के करीब रचनाएं प्रकाशित।

मुझसे मिलन नहीं हो पाए तो मुझको तुम भूल न जाना,
मेरा वही पुराना घर है जब चाहो तब तुम आ जाना।
आना अगर नहीं हो संभव तो मुझको खत ही भिजवाना।।

तुम अपने खत में यह लिखना कब-कब मेरी याद सतायी,
कब-कब धीरज तुमने खोया, कब-कब तुमने आँख रुलायी।
अपने मन की बातें लिखना, कुशल-क्षेम भी लिख देना तुम।
कुछ बातें यदि भूल गए तो दुख की कोई बात नहीं है,
नहीं समझना बुद्धू हूँ मैं, मुझको कुछ भी ज्ञात नहीं है।
लिखने में जल्दी मत करना, पता अधूरा मत लिख जाना।।1।।

गाँव-गली की बातें लिखना, लिखना अम्मा जी कैसी हैं,
लिखना अपनी बूढ़ी दादी, जैसी थीं अब भी वैसी हैं।
लिखना अभी नीम का बिरवा, उसी तरह से द्वार खड़ा है।
लिखना दादा की हालत में, थोड़ा बहुत सुधार हुआ है,
बप्पा के सर पर बिटिया का, थोड़ा कुछ कम भार हुआ है।
मुन्नी के पीहर की बातें, झूठ-झूठ तुम मत लिख जाना।।2।।

जितना दूध दे रही गैया, सब बछिया पी जाती है,
लिखना रोज मुंडेरे आकर, कोयल गीत सुनाती है।
लिखना जन्म अष्टमी वाला, मेला अब भी लगता है।
लिखना अभी उन्हीं बैलों से, घर की खेती होती है,
लिखना वही पुरानी धोबन, घर के कपड़े धोती है।
कभी लड़ाई भी होती है, भूले से तुम मत लिख जाना।।3।।

लिखना अब भी जुम्मन काका अलगू के घर जाते हैं,
हँसी-खुशी से ईद-दिवाली, दोनों साथ मनाते हैं।
बूढ़े बरगद के नीचे चौपाल अभी भी लगती है।
बांझिन चाची के घर में, भी बच्चा होने वाला है,
और निठल्लू के मुँह में भी, पड़ता रोज निवाला है।
घर-बाहर की सारी बातें लिखते-लिखते तुम लिख जाना।।4।।

लिखना अभी द्वार की तुलसी, नाच-नाच कर गाती है,
लिखना सबकी फसल आज भी खेतों में लहराती है।
बाग-बाग की डाली-डाली फूलों से लद जाती है।
सबकी प्यारी मुनिया रानी विद्यालय को जाती है,
और गाँव की कानी कुतिया, दिन भर पूँछ हिलाती है।
लिखना तो सब लिख ही देना, पढ़ने लायक सब लिख जाना।।5।।

लिखना काकी-मौसी दोनों, अब भी झगड़ा करती हैं,
अपनी प्यारी नाउन चाची, सबको पूछा करती हैं।
वही पुराने चिरकुट काका खेत जोतने जाते हैं।
गोगे काका वाली गैया, बछड़ा आज बियाई है,
एक साथ मिल करके सबने बाँट के इंजड़ी खाई है।
लिखना तो जी भर कर लिखना, बात पते की सब लिख जाना।।6।।

लिखना गाँव-गली में अब तक, कोई दंगा हुआ नहीं,
लिखना भला हुआ है सबका, बुरा किसी का हुआ नहीं।
खपड़े और फूस वाले घर, महल सरीखे लगते हैं।
लिखना बुरे वक्त में अब तक, कोई भी सर झुका नहीं,
हत्या, लूट, डकैती का भी, दूर-दूर तक पता नहीं।
सोच-सोच करके सब लिखना, लिखते-लिखते सब लिख जाना।।7।।

लिखना मन्दिर में रामायण, कथा-भागवत चलता है,
लिखना दोनों वक्त गाँव में, अभी मदरसा खुलता है।
लिखना बूढ़े शौकत चाचा, हज पर जाने वाले हैं।
लिखना अब्दुल काका सबके बाल काटने आते हैं,
लिखना दौला भैया आकर सबको अभी पढ़ाते हैं।
लिखने में कुछ भूल न करना, सच-सच बातें तुम लिख जाना।।8।।

लिखना आपस में मिल कर सब बड़े प्रेम से रहते हैं,
लिखना एक साथ मिल कर ही सारे सुख-दुःख सहते हैं।
लिखना आँगन में आकर गौरैया नाच दिखाती है।
लिखना मुझसे मिलने खातिर, अब भी लोग तड़पते हैं,
रात-रात भर यादों में सब, करवट अभी बदलते हैं।
लिखना प्रेम भरे गीतों को, विरह गीत तुम मत लिख जाना।।9।।

होली पर एक गज़ल

साथ तेरा यदि पा जाऊँ मैं कहीं भूल से टोली में,
सच मानो मैं कह डालूँगा नयी गज़ल फिर होली में।

दिल ही हसरत है बस तेरी यादों के ही रंग भरूँ,
और प्यार की गुझिया भर लूँ मैं भी अपनी झोली में।

प्रेम-भाव का तिलक लगाकर सबको गले लगाऊँ मैं,
और प्यार का चन्दन बनकर लिपटूँ अक्षत रोली में।

हँसी-खुशी से आओ सबको जम कर रंग लगाऊँ मैं,
छूट न जाए दिल में कोई रंग कभी हमजोली में।

दुखिया के भी आँसू पोंछूँ दुश्मन से भी प्यार करूँ,
भेद-भाव के सारे बन्धन गुलशन तोड़ूँ होली में।।

उत्तरी कानूनगोपुरा, बहराइच-271801 (उ.प्र.)

पुस्तक समीक्षा

नसीरूद्दीन शाह और सिनेमा

अविनाश कुमार

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में प्रोजेक्ट फेलो हैं। लेखन में रुचि एवं कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख, समीक्षा आदि प्रकाशित।

बहुत अरसा नहीं बीता अभी हाल-फिलहाल में हिन्दी सिनेमा ने अपने प्रस्थान बिंदु से सौ साल का समय पूरा किया है। इस सौ साल के सफर में हिन्दी सिनेमा ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। मूक फिल्मों से शुरू हुआ भारतीय सिनेमा का यह सफर आज थ्रीडी फिल्मों तक पहुँच चुका है।

सामान्य टॉकीज के स्थान पर मल्टीप्लेक्स कल्चर ने आज सिनेमा के इतिहास के साथ-साथ इसके भूगोल को भी बदल दिया है। दर्शक को भी अब अलग-अलग फिल्मों को देखने के लिए टॉकीज की यात्रा या छानबीन नहीं करनी पड़ती। मल्टीप्लेक्स अब यह सुविधा एक ही स्थान पर उपलब्ध कराती है।

अभिप्राय यह है कि इन सभी बदलाव के साथ ही सिनेमा की सफलता या असफलता के मानदंड भी बदल गए हैं। सिनेमा की सफलता-असफलता का मानदंड अब कितने दिन तक फिल्म टॉकीज में दिखाई गई इससे नहीं बल्कि कितने दिनों में उसने करोड़ की सीमा पार की, इससे आँका जाने लगा है।

बहरहाल सिनेमा के इस लम्बे कालखंड में सिनेमा पर अपनी पैनी निगाह एवं सशक्त कलम से निगरानी रखने वाले लोगों की भी कमी नही रही है। ये वो लोग हैं जो समय-समय पर अपनी लेखनी से सिनेमा तथा साहित्य में हस्तक्षेप करते रहे हैं। यही कारण है कि आज साहित्य और सिनेमा की दूरी काफी कम हो गई है। कई विश्वविद्यालयों में सिनेमा को साहित्य के अन्तर्गत तो कुछ जगह इसे स्वतंत्र विधा के रूप में पढ़ाया तथा इस पर शोध भी करवाया जा रहा है।

युवा कवयित्री एवं लेखिका डॉ. पूजा खिल्लन की शोधपरक पुस्तक 'समान्तर सिनेमा और नसीरूद्दीन शाह' इस क्रम में एक महत्वपूर्ण कृति है। 153 पृष्ठ की उनकी यह पुस्तक लेखिका की सिनेमा के प्रति गहरी रुचि एवं विस्तृत समझ का परिणाम है।

काव्य संग्रह 'हाशिए की आग' के लिए प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह के हाथ से वर्ष 2012 का 'राष्ट्रीय यशोधरा सम्मान' प्राप्त कवयित्री डॉ. पूजा खिल्लन की पुस्तक के विषय में पुस्तक के फ्लेप पर ही स्पष्ट है कि 'यह पुस्तक प्रश्नों और जिज्ञासाओं का संकलन है। इसमें निष्कर्ष की उम्मीद है, उत्तर की नही। जिन्हें उत्तर पाने की उत्सुकता या जिज्ञासा हो उनसे आग्रह किया जाता है कि बिना पूर्वग्रह के समांतर या नया सिनेमा के प्रति एक सकारात्मक राय बनाने की कोशिश करें।' लेकिन यह पुस्तक केवल समांतर सिनेमा की बहसों तक ही सीमित नहीं रह जाती बल्कि अपने समय के एक महान कलाकार नसीरूद्दीन शाह से भी पाठक का विस्तृत परिचय कराती है। पुस्तक समांतर सिनेमा के माध्यम से सदी के एक महान अभिनेता के साथ-साथ समांतर सिनेमा से उसके संबंधों एवं उसके समुचित योगदान की पड़ताल भी करती है। अपनी इसी विशेषता के साथ यह पुस्तक अपने पूर्व लिखित पुस्तकों से भिन्न है।

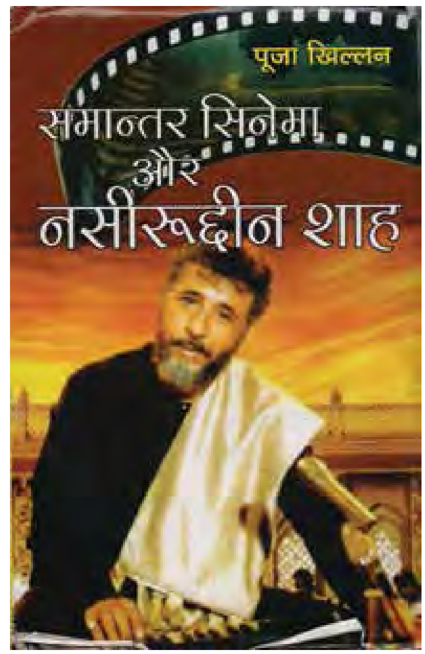

पुस्तक : समान्तर सिनेमा और नसीरूद्दीन शाह

लेखिका : डॉ. पूजा खिल्लन

प्रकाशक : शिवालिक प्रकाशन, 27/16, शक्ति नगर, दिल्ली-110007

मूल्य : 495 रुपये

सिनेमा तथा कलाकारों पर पहले भी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गई हैं। इसमें पहला

नाम डॉ. सी. भास्कर राव की पुस्तक 'दादा साहेब फाल्के पुरस्कार विजेता' का लिया जा सकता है। इस पुस्तक में पुरस्कार विजेताओं की जानकारी देने का प्रयास किया गया है, अस्तु कहीं न कहीं यह पुस्तक व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी मात्र बनकर रह जाती है।

उसी क्रम में प्रह्लाद अग्रवाल की पुस्तक 'हिन्दी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक' का उल्लेख भी किया जा सकता है, परन्तु 600 पृष्ठों की यह पुस्तक 600 फिल्मों की परिचयात्मक टिप्पणी करने में ही समाप्त हो गई है। सरन प्रताप सिंह द्वारा लिखित एवं प्रवीण सिंह द्वारा अनूदित पुस्तक 'गुरुदत्त के साथ एक दशक' इस क्रम की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है परन्तु प्रकाशित सभी पुस्तकें अपनी बनावट एवं बुनावट में कहीं व्यक्तित्व-कृतित्व, कहीं परिचयात्मक टिप्पणी तो कहीं जीवनी मात्र बनकर रह जाती हैं।

लेखिका डॉ. पूजा खिल्लन अपनी पुस्तक को लिखते हुए एक लेखक के साथ-साथ एक गंभीर शोधार्थी की भूमिका निभाती दिखायी पड़ती हैं। लगभग 150 पृष्ठ की अपनी इस पुस्तक में वह उपरोक्त सिनेमाई किताबों की रूढ़ियों से बचती हैं। पुस्तक अपनी रचनाशीलता में केवल सिनेमा तक ही सीमित न रह कर बार-बार साहित्य की तरफ आती है। इन अर्थों में यह पुस्तक साहित्य और सिनेमा के बीच एक पुल का काम भी करती है।

पाँच अध्यायों में बँटी इस पुस्तक में समांतर सिनेमा के परिचय के साथ-साथ मध्यवर्गीय समाज से उसके संबंधों की पड़ताल करते हुए नसीरूद्दीन शाह की फिल्मों के विभिन्न चरित्र, अभिनय एवं नसीर की फिल्मों की भाषा पर समाप्त होती है।

अपनी बनावट में इस पुस्तक को पढ़ने के बाद यह कहना मुश्किल हो जाता है कि लेखिका ने समांतर सिनेमा के माध्यम से नसीरूद्दीन शाह के चरित्र, अभिनय एवं भाषा को समझने का प्रयास किया है या नसीरूद्दीन शाह के चरित्र, अभिनय एवं भाषा के माध्यम से समांतर सिनेमा को। यही इस पुस्तक की विशेषता है। समांतर सिनेमा और फिल्म अभिनेता नसीरूद्दीन शाह नाभिनाल रूप से जुड़े हैं। यह पुस्तक इस सत्य को पूर्णतः स्थापित करती है तथा उसका विश्लेषण हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है।

शोध शैली में लिखी गई यह पुस्तक अपने आँकड़ों एवं विवरणों से कथ्य की पुष्टि करते हुए चलती है। भाषा ही सहजता इस पुस्तक की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता कही जा सकती है। सामान्य बोलचाल की भाषा में लिखी गई यह पुस्तक पाठकों को लगातार पुस्तक से जोड़ती है। लेखिका डॉ. पूजा खिल्लन की यह पुस्तक न केवल सिनेमा में दिलचस्पी रखने वाले लोगों के लिए अपितु साहित्य एवं सिनेमा पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए भी एक महत्वपूर्ण साधन है।

बी-15, द्वितीय तल, विजय नगर, सिंगल स्टोरी, नजदीक हनुमान मन्दिर, दिल्ली-110007

रुख : उनके विचारों का

डॉ. संतोष कुमार राय

युवा लेखक-आलोचक डॉ. संतोष कुमार राय ने महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय से पीएच.डी प्राप्त की है। दिल्ली विश्वविद्यालय के सत्यवती कॉलेज में पूर्व तदर्थ अध्यापक एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

'गनीमत है नज़रे-तग़ाफुल भी उनकी, बहुत देखते हैं जो कम देखते हैं।'' कुँवर नारायण ने दाग़ देहलवी का यह शेर शमशेर के लिए उद्धृत किया है। असल में इस शेर का महत्व जितना शमशेर के लिए है उतना कुँवर नारायण के लिए भी है। 'रुख़' कुँवर नारायण के गद्य लेखन का संग्रह है जिसका संपादन अनुराग वत्स ने किया है। कुँवर नारायण की कविताओं में अभिव्यक्त विचार जितना महीन और गहरा है उनके इस गद्य संग्रह में भी। इस पुस्तक को तीन भागों में संग्रहीत किया गया है। पहला भाग समीक्षा का है जिसमें 12 रचनाकारों पर कुँवर नारायण की समीक्षा है। दूसरा भाग संस्मरणों का है जो सात रचनाकारों के संबंध में है। तीसरा और अंतिम भाग टिप्पणियों का है जिसमें 11 समकालीन रचनाकारों को लेकर बहुत ही गंभीरता से कुँवर नारायण ने अपना विचार व्यक्त किया है।

जहाँ तक समीक्षा की बात है तो कुँवर नारायण की पहचान समीक्षक की नहीं बल्कि एक संवेदनशील कवि की है। लेकिन एक रचनाकार जब समीक्षा करता है तो उसके भावबोध की गहराई और समीक्षा दृष्टि में भी उसका कवि मन साफ-साफ दिखाई देता है। बानगी के तौर पर मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु कुरु स्वाहा' के संबध में उनके विचार को देख सकते हैं। लिखते हैं, ''अगर कहूँ की 'कुरु कुरु स्वाहा' में एक भाषायी चमत्कार है, तो इसका यह मतलब नहीं कि उसमें और कुछ नहीं है, न यही कि होशियार रहिएगा यह चमत्कार एक धोखा है। यों कहूँ तो बात शायद सही होगी कि यह एक ईजाद है, जोशी की अपनी ईजाद, अपनी दास्तां को बिल्कुल अपने ढंग से कहने की एक बड़ी ही दिलचस्प और अनूठी शैली की ईजाद, जिसका जादू सिर पर चढ़कर बोला है, उन तमाम समीक्षकों की भाषा के सिर पर चढ़कर, जिन्होंने 'कुरु कुरु स्वाहा' को थाहा है। इस भाषा की एक सफलता तो यही मानता हूँ कि इसके रंग से बचाकर लिखने में अनेक समीक्षक नाकामयाब रहे हैं।'' इसी तरह से दूसरा उदाहरण हम धर्मवीर भारती द्वारा संकलित और अनूदित 'देशांतर' के संदर्भ में देख कसते हैं, 'आधुनिक विश्व कविता के प्रति जो संवेदनशील पहचान इस संकलन से बनती है, उसमें व्यापकता, विविधता और उदारता है, किसी एक 'वाद' या मत का दुराग्रह नहीं। कविता की उत्कृष्टता पर प्रमुख दबाव है और यह अनुवादक की रुचि-संपन्नता और साहित्यिक समझ के पक्ष में सबसे बड़ी तस्दीक है कि आज संकलित कवियों में से अधिकांश विश्व स्तर के कवि माने जा चुके हैं।'' अगर समीक्षा की शर्तों की बात की जाए तो हम पाते हैं कि कुँवर नारायण का

पुस्तक : रुख

लेखक : डॉ. कुँवर नारायण

संपादक : अनुराग वत्स

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन

मूल्य : 300 रुपये

कवि मन एक पैनी समीक्षकीय दृष्टि से अपने समकालीन रचनाकारों को देखता है।

'रुख' का दूसरा भाग 'संस्मरण' का है। साहित्य जगत में 'संस्मरण' का महत्व एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित है। ये संस्मरण और अधिक सत्य, जीवंत और रुचिकर हो जाते हैं जब उनकी अभिव्यक्ति

किसी साहित्यकार द्वारा होती है। निर्मल वर्मा पर कुँवर नारायण ने जो संस्मरण लिखा है वह वाकई उनकी गहरी संवेदना का परिचायक है। लिखते हैं, ''बीसवीं सदी के चिंतन पर सामान्यतः वैज्ञानिक, तार्किक, आर्थिक और यथार्थवादी ढंग की सोच-पद्धति का दबाव रहा है—भावना—को लगभग एक अधिकांश या किशोर-उत्साह की तरह खारिज करता हुआ, निर्मल की दृष्टि एक समग्रता में दोनों को जरूरी मानती है, एक को दूसरे का दुश्मन नहीं। शायद यह जीवन-दृष्टि ही निर्मल के लेखन में भारतीयता की सबसे पक्की पहचान है।'' निर्मल वर्मा के साहित्य को लेकर इस तरह का बोध हिन्दी समीक्षा में बिरले दिखाई देता है। इसी तरह का एक उदाहरण नेमिचन्द्र जैन को लेकर लिखे गये संस्मरण में देखा जा सकता है, '' 'संस्कृति' शब्द से जो विभिन्न अभिप्राय ध्वनित होते हैं, उसकी सरल व्याख्या, अथवा उसके विभिन्न अर्थों का स्पष्ट विन्यास, कहीं 'संस्कृति' की बहुमुखी अवधारणा को यदि कुंठित नहीं, तो संकुचित जरूर करता है। 'संस्कृति' अपने आप में एक व्यापक और समावेशी मानसिकता का बोध कराती है, इसलिए जब हम 'संस्कृत' या 'सुसंस्कृत' जैसे विशेषण को किसी व्यक्ति के साथ जोड़कर उसके व्यक्तित्व या चरित्र को ठीक-ठाक समझना चाहते हैं, तो पहली दिक्कत जो सामने आती है वह बिल्कुल एक सैद्धांतिक स्तर का सवाल उठाती है : मूल्यांकन की हमारी अपनी दृष्टि नेमिचन्द्र जैन जैसे व्यक्ति को समझने के मामले में कितनी आजाद और खुली हुई है?'' इस पुस्तक में संकलित सभी संस्मरण कुँवर नारायण के साहित्य और समाज के बोध से हमें परिचित कराते हैं।

तीसरा और अंतिम भाग 'टिप्पणी' है जिसमें समकालीन रचनाकारों पर कुँवर नारायण ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। रघुवीर सहाय पर टिप्पणी में लिखते हैं, ''रघुवीर सहाय की कविताओं का अनुभव-संसार सीमित है, किन्तु उसमें तीव्रता और गहराई है, घरेलू और उससे हौदे निकट समाज को छूता हुआ। वह मर्मस्पर्शी है, लेकिन दूरदर्शी कम।'' इसी में आगे ''उनकी कविताओं में स्त्री की जो मध्यवर्गीय और निम्न-मध्यवर्गीय छवि उभरती है, उसमें दयनीयता है, पर चुनौतियाँ नहीं। स्त्री चरित्र का यह दूसरा पक्ष यदा-कदा उभरता भी है, तो धुँधला-सा ही।'' इन छोटी-छोटी टिप्पणियों में कुँवर नारायण ने जो बातें कही हैं वह उनके साहित्य बोध और सामाजिक दृष्टि से हमें अवगत कराती हैं।

कुल मिला कर 'रुख' कुँवर नारायण का ऐसा संग्रह है जो कविता से अलग उनकी व्यक्तिगत, सामाजिक और साहित्यिक अभिरुचि और विचार को गद्य में भी वैसे ही समाहित किया है जैसा कविताओं में मिलता है। उनकी कविताओं में जिस तरह की संवेदनात्मक गहराई और ऐतिहासिक प्रतीक मिलते हैं, वैसी ही संवेदनात्मक गहराई इस पुस्तक में भी हमें दिखाई देती है। एक-एक शब्द पूरे मनोयोग से तौलकर रखा गया है जिसका व्यापक साहित्यिक सरोकार है। यह संग्रह हमारे समय के रचनाकारों और पाठकों के लिए बहुत ही उपयोगी है।

द्वारा डॉ. जयपाल सिंह,
36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल, जोशन निवास,
गुड़मण्डी, दिल्ली-110007

पुस्तक समीक्षा

ममता कालिया : शहर और सपने

प्रेमपाल शर्मा

चिंतनशील लेखक-समीक्षक प्रेमपाल शर्मा की कई पुस्तकें प्रकाशित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सक्रिय लेखन, अवकाश प्राप्त रेलवे पदाधिकारी (रेल भवन, नई दिल्ली)।

ममता कालिया को हिन्दी के ज्यादातर पाठक एक कथाकार, उपन्यासकार के रूप में जानते हैं लेकिन 'कितने शहरों में कितनी बार' पढ़कर संस्मरणकार के रूप में उनका एक अलग रूप सामने आता है जिसका गद्य हिन्दी में बेमिसाल ही कहा जाएगा। एक-एक शब्द अनुभवों की पूरी पोटली लिए। कई परतें हैं ऐसी यादों की। एक लेखक के बनने में उसके परिवेश का असर, चुनौतियाँ, अलग-अलग शहरों का समाजशास्त्र, लेखक या कलाकार की हैसियत, घर-परिवार सभी कुछ। ऐसा अनुभव न किसी उपन्यास को पढ़ने पर मिलता न कविता से और भाषा भी इतनी मोहक, पारदर्शी हो तो सोने पे सुहागा।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के वृंदावन, मथुरा में पैदा, पली-बढ़ी ममता की शुरुआत मथुरा क्षेत्र से ही होती है। नाना-नानी पाकिस्तान के एबटाबाद से दिल्ली पहुँचे और मथुरा में बस गए। बड़ा परिवार, बुआ, चाची, मामा, मामी, जैसा कि उन दिनों होता था। तीनों बुआओ की अपनी-अपनी कष्टदायक जिन्दगी थी पर मिलने आतीं तो कैसी लहककर मिलतीं। वे हम सबको दुपहर में अधन्ने-अधन्ने की मलाई बरफ खिलातीं। हरे पत्ते पर चाकू से पतली-पतली परत काटकर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में रहने वाला हर आदमी मलाई बर्फ की इन स्मृतियों को पहचान सकता है। मथुरा की स्मृतियों में चार मामा, नाना-नानी के बहाने विभाजन, गाँधी की हत्या के प्रसंग भी इतिहास में ले जाते हैं। यह जानकर अच्छा लगा कि गाँधी बाबा की गोद में बैठने का सौभाग्य इस लेखिका को मिला।

पिता आकाशवाणी में थे और पढ़ने-लिखने के संस्कार, असर ममता जी पर आया। पढ़ाई में मेधावी। अंग्रेजी में एम.ए. करते ही दिल्ली विश्वविद्यालय में लेक्चरर की नौकरी मिल गई। उसी बीच कथाकार रवीन्द्र कालिया के साथ मुलाकात प्रेम प्रसंग और अंत में शादी में बदल गई। उन दिनों के कॉलेज को कैसे याद करती है ममता। 'रवीन्द्र कालिया से एक ही दिन के परिचय ने मेरे अंदर इतनी ऊर्जा, ऊष्मा और उमंग भर दी कि मैं एड़ी से चोटी तक हरी हो गई। दिल्ली के खरदिमाग ऑटोचालकों के प्रति मन कृतज्ञ हो आया। अगर वे सीधे से मुझे शक्तिनगर पहुँचा आए होते तो कहाँ आता जीवन में प्रेम। पड़ी रहती किसी मनहूस महिला कॉलेज में, लड़कियों की कॉपियाँ जाँचती। उम्र चौबीस से चौंतीस, चौंतीस से चवालीस होती जाती। रेगिस्तान रोज नजदीक आता जाता। कॉलेज में ऐसी सहकर्मियों की कमी नहीं थी जो लाल मिर्च की तरह तेज, पतली और रूखी दिखाई देतीं। वे अकेली मिकाडो में बैठी चाउमीन खातीं, ओडियन में फिल्म देख लेतीं और गर्मी की छुट्टियों में अकेली मसूरी घूमने चली जातीं। मेंहदी उनके हाथों की जगह बालों में लगती जाती और अपनी लाल केश राशि से वे अलग पहचान में आतीं। कॉमेडी पढ़ाते हुए भी उनकी मुखमुद्रा ट्रैजिक बनी रहती। इनके विपरीत विवाहित प्राध्यापिकाएँ ज्यादा सुगम्य और संतुलित थीं। किंचित मृदुल, किंचित पृथुल, ये एक आंतरिक लय से अपना काम संपादित करतीं। इन्हें क्लास में जाने की कोई जल्दी न होती। अलबत्ता घर पहुँचने की बेकली जरूर दिखाई देती। (पृष्ठ 106)

पापा थे पढ़ाकू, अध्ययनशील लेकिन अंग्रेजी के प्रति झुके हुए। उन्हें हिन्दी लेखक रवीन्द्र कालिया के प्रति शायद इसीलिए शुरुआती दुराग्रह रहा हो। ये हिन्दी वाले बड़े लापरवाह होते हैं। तुम्हें छह बजे तक वापस आना ही आना है। ममता भड़क गई। फिर जिस शब्द से मेरे अंदर उनके लिए खिलाफत आंदोलन भड़क उठता था वह था हिन्दीवाले। ''जाहिर

पुस्तक : कितने शहरों में कितनी बार

लेखिका : ममता कालिया

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मूल्य : 300/-

है पापा अपने आपको अंग्रेजीवाला समझकर फतवे जारी कर रहे थे। जबकि मैं इतने ही दिनों में सिर से पैर तक हिन्दीवाली हो गई थी। इंग्लिश मेरे लिए सिर्फ नौकरी की भाषा रह गई। मैं ढूँढ-ढूँढ कर हिन्दी की पुस्तकें पढ़ती। रवि ने मुझे सर्वेश्वर की एक कविता सुनाई—इधर आओ चाँदनी का एक स्कार्फ तुम्हारे चेहरे पर बाँध दूँ। बावली होकर मैं सर्वेश्वर का समस्त साहित्य पढ़ गई। रवि को मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन की कई पंक्तियां कंठस्थ थीं जिन्हें वे अक्सर दुहराया करते—लगता है तुमने अपनी आँखों

से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। ये पृष्ठ अब कोरे कहाँ हैं मल्लिका। इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है। अनंत सर्गो से एक महाकाव्य की। मैं राकेश साहित्य का पारायण कर डालती (पृष्ठ 110)।'' हमारे संस्कार कैसे एक-दूसरे की दोस्ती की छाँव में रूप लेते हैं इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण।

दो सौ पृष्ठों की किताबों के हजारों चित्र हैं जिन्हें आप भूले नहीं भूल सकते और ऐसी भाषा स्मृतियों की चाशनी में पगी-पुसी कि पूरी फिल्म ही सजीव हो उठे।

मथुरा से चलकर दिल्ली, पूना, इंदौर और फिर दिल्ली। 'उतनी खराब नहीं दिल्ली मुंबई' अध्याय में पत्रिकारिता, लेखक बनने के शुरुआती दिनों के संस्मरण हैं। फिर अचानक मुंबई छोड़ना पड़ा और पहुँच गई इलाहाबाद। लेखन की नींव, अश्क, ज्ञानरंजन, नंदन के सहारे सान्निध्य में। इलाहाबाद एक ऐसा शहर जो हम दोनों के मन में कबूतर की तरह फड़फड़ा रहा था। 'हॉस्टल का एक चित्र देखिए। हॉस्टल में शामें काटना आसान नहीं था। शाम से पहले हर कमरे से लड़कियाँ अपनी डेट के लिए तैयार होना शुरू करतीं। तरह-तरह की सुगंधें गलियारे में उड़तीं, टैलकम पाउडर, सैंट, डियोडरेंट, हेयर स्प्रे, छिपाकर रखे गए आयरन से कपड़े प्रेस किए जाते, ढीले कमीज तंग किए जाते, तंग चूड़ीदार ढीले किए जाते, मैचिंग चप्पलें अदली-बदली जातीं, दस बार आईना देखा जाता, बीस बार घड़ी। कमरे की खिड़की से झाँका जाता पर आठवें माले से महबूब की झलक मिलना उतना आसान भी न होता। सो कान दरवाजे की खट-खट पर होते, कब शांता बाई आकर आवाज लगाए और दरवाजा खड़काए—वर्षा, हर्षा तमारो विजिटर। जिसका विजिटर आ जाता वह तितली की तरह उड़ जाती (पृष्ठ 137)।

जब तक आपके पास एक संवेदनशील दृष्टि न हो तब तक समाज की इन बारीकियों को आप नहीं समझ सकते।

रग-रग में बसा यही इलाहाबाद नौकरी के अंतिम दिनों में ममता जी को सचमुच लहुलुहान कर देता है। हिन्दी पट्टी में कानून व्यवस्था, आचरण का जंगलीपन जो साल दर साल बढ़ता ही गया। 22 वर्षीय अरुण सिंह नामक नौजवान को अपनी बहन के प्रवेश, परीक्षा पर कुछ समझाने की कोशिश की तो काँच का भारी पेपरवेट लड़के ने ममता के सिर पर दे मारा और भाग लिया। खून की धार अफरा-तफरी। वे लिखती हैं—मुझ जैसी मूर्खा को अच्छा सबक मिला जिसके भावतन्तु कॉलेज के अस्तित्व के साथ ऐसे जुड़ गए थे कि मैं सर्दी-गर्मी चौमासा, टिक-टिक घड़ी की तरह अविराम नौकरी पर जाती रही। पति की पार्ट टाइम पत्नी, बच्चों की क्वार्टर टाइम माँ बनी लेकिन नौकरी फुलटाइम बजाती रही। छुट्टियों में बाहरी इम्तहान करवाती रही। 15 अगस्त, 26 जनवरी सब दिन कॉलेज को समर्पित कर दिए। कच्चे कॉलेज को पक्का बनाने के लिए मैंने इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, दिल्ली एक कर दिए। रचनाकार विभूति नारायण राय शायद इसलिए कहते हैं कि नौकरी को नौकरी की तरह करना चाहिए। उनका आशय होता है कि नौकरी में अपनी उम्मीदें, सपने और विश्वास नत्थी नहीं करने चाहिए, तीनों दुख देते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार में आए दिन ऐसा होता रहता है। कवि मानबहादुर सिंह की हत्या के पीछे वजह थी कि कॉलेज में 'ग' वर्ग की नियुक्तियों के मामले में एक असफल अभ्यर्थी ने उन्हें दिन दहाड़े तलवार से काटकर उनके अंग-प्रत्यंग कॉलेज परिसर में जगह-जगह उछाल दिए। उस कॉलेज में दो हजार छात्र पढ़ते थे, सौ से अधिक अध्यापक थे। दोपहर बारह बजे यह वारदात हुई जब सब उपस्थित थे। लेकिन पुलिस के यह पूछने पर कि क्या किसी ने हत्यारे को देखा, सब चुप्पी खींच गए।

कोलकाता के बिना पुस्तक कैसे पूरी होती 2003 के आसपास भारतीय भाषा परिषद के बुलावे पर कालिया दंपत्ति कोलकाता पहुंचे। शुरू के पृष्ठों में ही कोलकाता का रूप पहचाना जा सकता है। 'फिर भी इसमें शक नहीं कि कोलकाता में अपराध बहुत नगण्य है। सुबह का अखबार पढ़ने पर यह बात साफ हो जाती है। बांग्लाभाषी जनता आत्मोन्मुखी, बौद्धिक, अध्ययनप्रिय और भावुक होती है। उसके पास पढ़ने को आज का अखबार हो, पेट में चिंगड़ीभात हो और छोटी सी मासिक तनख्वाह हो तो उसे ज्यादा कुछ नहीं चाहिए।

कलकत्ते में नाट्यकर्म पुणे की तरह चलता है, नियमित, नित्य और नवीन। माइकेल मधुसूदन दत्त सभागार में उषा गांगुली का नाटक 'काशीनामा' देखा। सात सौ सीटों का हॉल खचाखच भरा था। अधिकांश दर्शक बांग्लाभाषी। अगर वह अपने बच्चों की सफलता पर गर्व नहीं कर सकता तो वह टैगोर और नजरूल पर गर्व कर संतोष कर लेता है। कभी-कभी लगता है कोलाकाता का बाबू मोशाय इतिहास में जितना मग्न रहता है उतना भूगोल में नहीं। अतीत के गौरव ग्रंथों से वह जरा-सा सिर उठाकर वर्तमान में झाँकता है और वापस गौरव ग्रंथों में डूब जाता है (पृष्ठ 193)।

हिन्दी लेखक की तुलना ममता जी ने ठीक ही किसान से की है। 'हिन्दी के लेखक की स्थिति का साम्य शायद किसान की वर्तमान दशा से सटीक बैठता है। जैसे किसान अपना खून पसीना एक कर खेत में लहलहाती फसल तैयार करता है उसी तरह लेखक महीनों बल्कि वर्षो की मेहनत से एक रचना अथवा पुस्तक पूरी करता है। दोनों ही मुँह अँधेरे उठते हैं, एक कुदाल-फावड़ा लेकर खेत पर जाता है, दूसरा कलम कागज लेकर मेज पर जुट जाता है। खेती का मूल्य किसान की मेहनत, उम्मीद और लागत तीनों से कम आँका जाता है। एक पुस्तक पूरी लिख लेने में लेखक की मेहनत का भी मूल्यांकन कुछ इसी प्रकार होता है। जीवन के सभी मनोरंजन से स्वयं को काटकर, विचारों को केन्द्रीभूत कर, आँखों में आईड्रॉप टपकाकर, एक नन्हीं कलम या कम्प्यूटर के सहारे रात-रात जाग कर लेखक जो लिखता है, उसके पास कोई आश्वासन नहीं होता यह किताब छप कर बाजार में कब आएगी या आएगी भी या नहीं। प्रकाशक की खाँटी शब्दावली में किताबें बिकती ही नहीं हैं।

यह किताब न केवल शहरों बल्कि पूरे चालीस साल की लेखक की यात्रा का जिंदा चलचित्र है और ऐसे नायाब गद्य के जो उनके कथाकार पर भी इक्कीस ही ठहरेगा। हिन्दी पाठकों के लिए जरूरी किताब।

96, कला विहार, मयूर विहार फेज-1 एक्सटेंशन, दिल्ली-110091

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता
....
....
....
....

पत्रिका भिजवाने का पता
....
....
....
....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.................	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.. दिनांक..................................
रु./US$.................................... बैंक..भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप ....
नाम...
पद...
दिनांक...

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

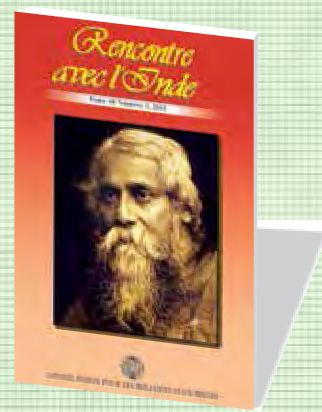

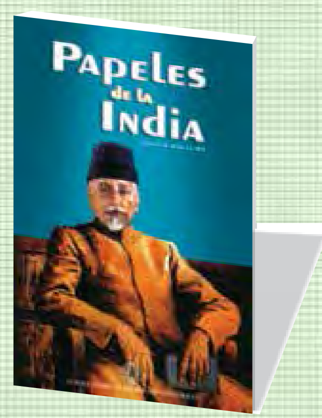

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

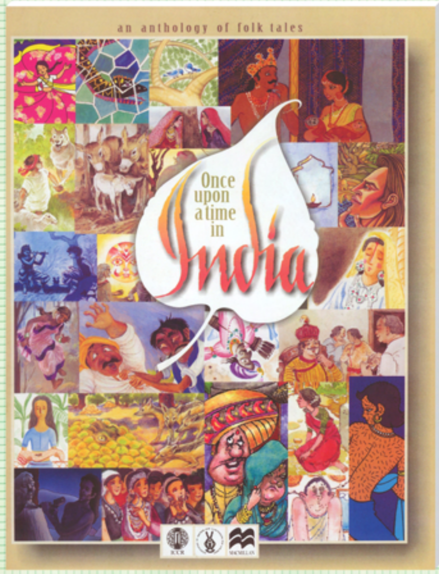

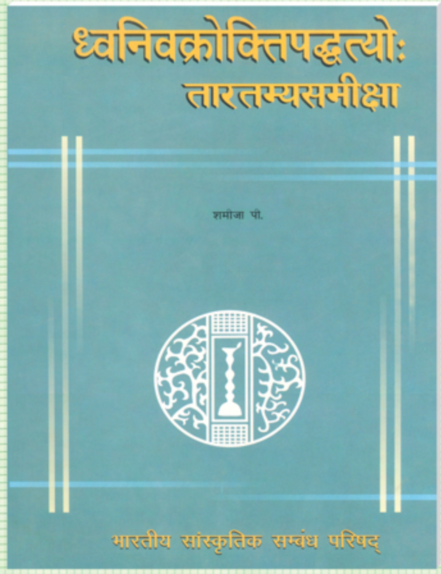

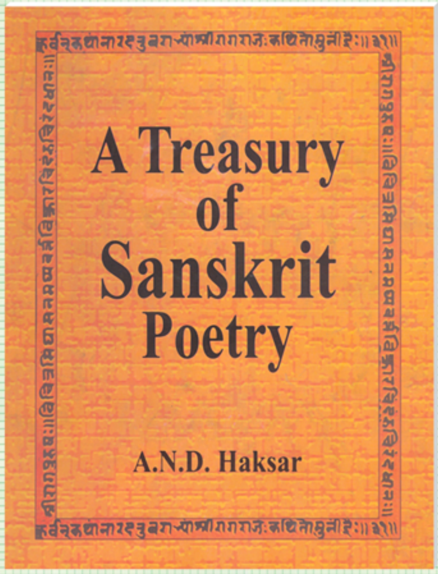

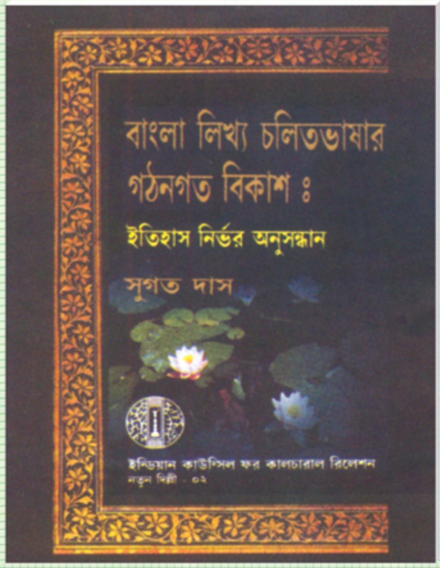

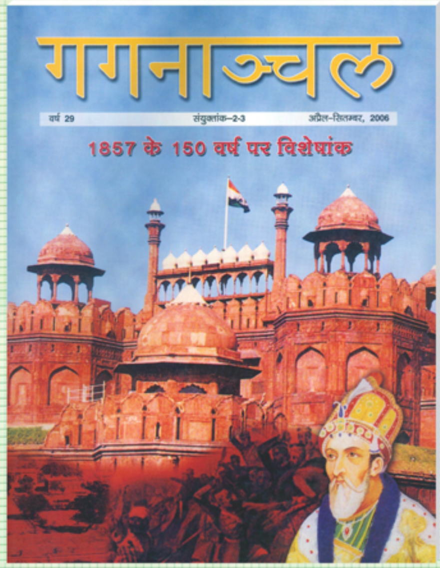

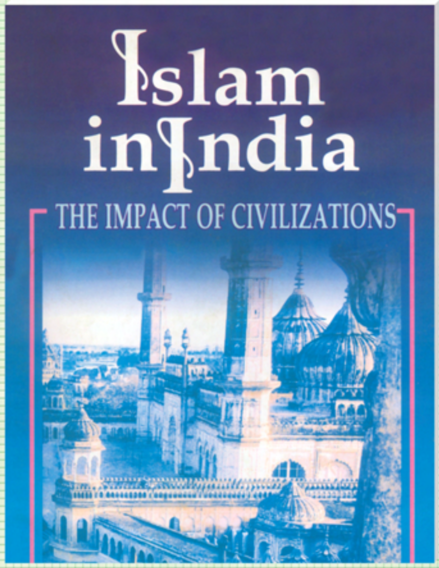

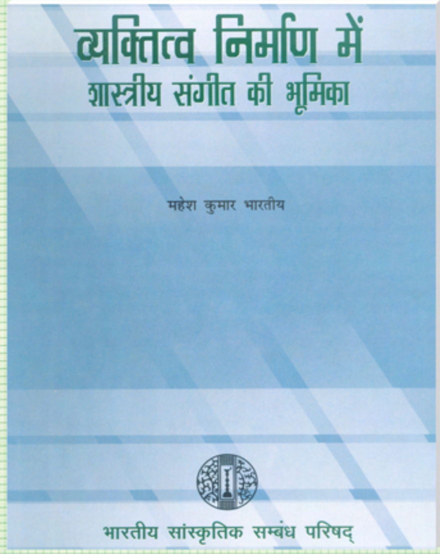

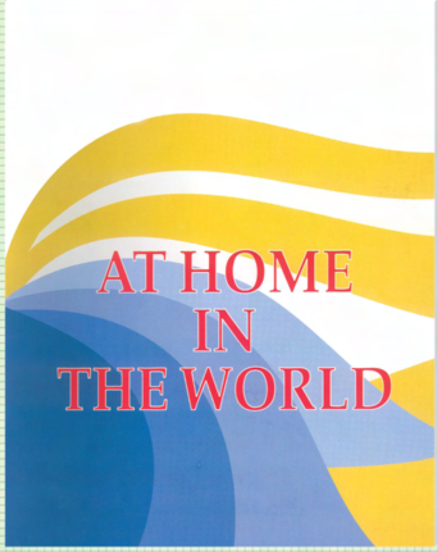

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

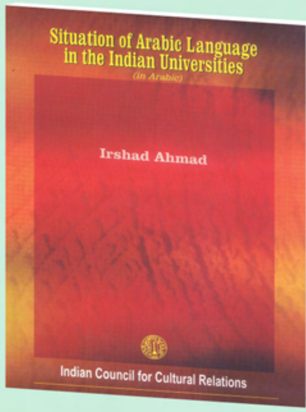

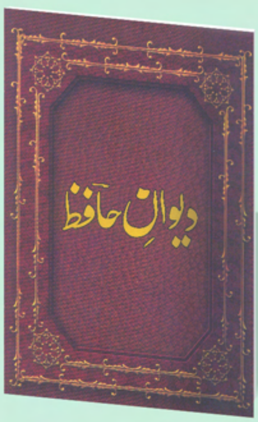

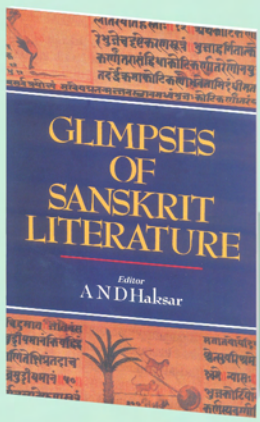

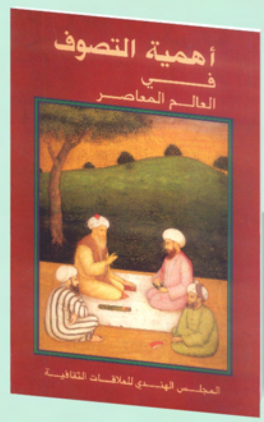

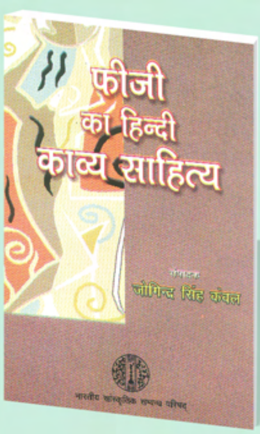

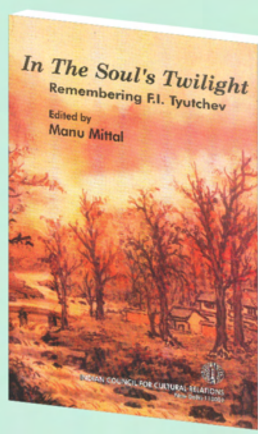

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310
फैक्स: 23378639, 23378647, 23378783
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in